THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_176235
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H349.545 T91R. Accession No. G.H.75

Author तुलसीदास.

Title रामायण.

This book should be returned on or before the date last marked below.

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यांनमः ॥

श्रीयुत गोस्वामी तुलसीदास कृत

रामायण

अयोध्याकाण्ड

प्रयागप्रवासी

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा कृत

"भावार्थदीपिका"

टीका सहित।

प्रकाशक,

लाला रामनरायन लाल

बुकसेलर तथा अध्यक्ष

नेशनल प्रेस, कटरा, इलाहाबाद।

१९१६।

प्रथम संस्करण २,५००]

[मूल्य ।।।)

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

सूचीपत्र रामायण तुलसीदासकृत

अयोध्याकाण्ड

—:*:—

विषय	पृष्ठ
श्रीरामाभिषेक की तैयारियाँ	२
वनवास का बखेड़ा	१२
सीता और लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी की गङ्गा के तट पर केवट से बातचीत	८१
श्रीराम जी का प्रयाग में भारद्वाजाश्रम में प्रवेश ...	९९
श्रीरामचन्द्र और महर्षि वाल्मीकि, तथा श्रीरामचन्द्र जी का चित्रकूट—वास	११५
महाराज दशरथ का स्वर्गगमन	१४१
महाराज की भरत द्वारा अन्त्येष्टि-क्रिया तथा पुरवासियों एवं कुलगुरु सहित भरत की चित्रकूट-यात्रा ...	१५६
भरत जी और महर्षि भारद्वाज	१८९
चित्रकूट में श्रीरामचन्द्र और भरत	२२१
श्रीराम जी की पादुका लेकर भरत जी का अयोध्या में प्रत्यागमन	२९२

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

तुलसीदासकृत रामायण

भावार्थ-दीपिका

टीका सहित

अयोध्याकाण्ड

श्लोक

वामाङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके,
भाले बालबिधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा,
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम् ॥ १ ॥
प्रसन्नतां या न गतोभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजं श्रीरघुनन्दनस्य मे सदास्तु तन्मञ्जुलमङ्गलप्रदम् ॥२॥
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महाशायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥ ३ ॥

जिनकी बायीं ओर पार्वती जी, मस्तक पर गङ्गा जी, ललाट पर बालचन्द्र, र में विष, कन्धे पर सर्पराज का यज्ञोपवीत, शरीर में विभूति लपेटे, देवों के , सदा सब के नाथ, अविनाशी, संहार करने वाले, सर्वव्यापी, कल्याणस्वरूप र चन्द्रमा के समान शुक्ल वर्ण वाले, जो महादेवजी महाराज हैं, वे मेरी रक्षा । जो न तो राज्याभिषेक के कारण प्रसन्न हुए और न वनवास के कारण ास ही हुए, उन्हीं श्रीरामचन्द्र जी के मुखारविन्द की कान्ति मेरे लिये सुन्दर

कल्याणप्रद हो। जो नील कमल जैसे सुन्दर कोमल अङ्गों वाले हैं और वामभाग में जिनके श्रीजानकी जी सुशोभित हैं, जो हाथों में सुन्दर धनुष बाण लिये हुए हैं, उन श्रीरघुवंश के स्वामी श्रीरघुवीर को मैं अभिवादन करता हूँ।

दो०—श्रीगुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।
बरणौं रघुबर विमल यश, जो दायक फल चारि॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं श्रीगुरुदेव के चरणकमल की रज से अपने मन रूपी दर्पण को विमल बना, श्रीराम जी की विमल कीर्ति का वर्णन करता हूँ। वह श्रीरामजी की कीर्ति चारों फलों (अर्थात् अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) को, देने वाली है।

जब तें राम ब्याहि घर आये। नित नव मङ्गल मोद बधाये॥
भुवन चारि दश भूधर भारी। सुकृत मेघ बर्षहिं सुखवारी॥
ऋधि सिधि सम्पति नदी सुहाई। उमँगि अवध अम्बुधि कहँ आई॥
मणि गण पुर नर नारि सुजाती। शुचि अमोल सुन्दर सब भाँती॥
कहि न जाइ कछु नगर विभूती। जनु इतनी विरंचि करतूती॥
सब विधि सब पुर लोग सुखारी। रामचन्द्र मुखचन्द्र निहारी॥
मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित विलोकि मनोरथ बेली॥
रामरूप गुण शील स्वभाऊ। प्रमुदित होहिं देखि सुनि राऊ॥

जब से श्रीरामचन्द्र जी विवाह करके घर आये हैं, तब से नित्य नये आनन्द मङ्गल की बधाइयाँ बजती हैं। चौदहों भुवन मानों भारी पर्वत हैं, उन पर सुकृत रूपी मेघ सुख रूपी जल की वर्षा करते हैं। ऋद्धि सिद्धि मानों सम्पत्ति की सुहावनी नदियाँ हैं, जो उमड़ कर, अयोध्या रूपी सागर की ओर आ रही हैं। फिर अयोध्यावासी नर नारी मानों मणियों के समूह हैं और ये मणियाँ निर्मल अमूल्य और सब प्रकार से सुन्दर हैं। बुरी इनमें एक भी नहीं हैं। नगर का विभव नहीं कहा जाता, मानों ब्रह्मा की करतूत को यहीं इतिश्री हो गयी है। श्रीरामचन्द्र जी के मुखारविन्द का दर्शन कर, सब पुरवासी लोग, सब प्रकार से सुखी हैं। अपनी मनोरथरूपी बेल को फलती देख, राजकुमारों की माताएं और

उनकी सब सखियाँ सहेलियाँ भी प्रसन्न हैं। श्रीरामचन्द्र जी का रूप, गुण, शील और स्वभाव देख सुन कर महाराज प्रसन्न होते हैं।

दो०—सब के उर अभिलाष अस, कहहिं मनाइ महेश।
आप अछत युवराजपद, रामहिं देहिं नरेश॥

सब लोगों की यह इच्छा है और इसके पूर्ण होने के लिये वे महादेव जी को मना कर कहते हैं कि महाराज अपने सामने श्रीरामचन्द्र जी को युवराजपद पर अभिषिक्त कर दें?

एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराज विराजा॥
सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुयश सुनि अतिहि उछाहू॥
नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखे। लोकप रहहिं प्रीति रुख राखे॥
त्रिभुवन तीनि काल जग माहीं। भूरि भाग्य दशरथ सम नाहीं॥
मङ्गलमूल रामसुत जासू। जो कछु कहिय थोर सब तासू॥
राव स्वभाव मुकुर कर लीन्हा। बदनु विलोकिमुकुटसमकीन्हा॥
श्रवण समीप भये सित केशा। मनहुँ जठरपन अस उपदेशा॥
नृप युवराज राम कहँ देहू। जीवन जन्म लाभ किन लेहू॥

एक दिन महाराज दशरथ सब दरबारियों के साथ राजसभा में बैठे थे। और सब उत्तम कर्मों की मूर्ति महाराज दशरथ, श्रीराम जी के सुयश को बड़े उत्साह के साथ सुन रहे थे। जिन महाराज दशरथ की कृपा के सब राजा अभिलाषी हैं और जिनकी प्रीति के लिये लोकपाल भी उनके मुँह की ओर निहारा करते हैं, उन महाराज दशरथ के समान भाग्यवान् तीनों लोकों में और तीनों कालों में कोई नहीं हुआ; क्योंकि मङ्गलों के मूल श्रीराम जी जिसके पुत्र हैं—उसके सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाय—थोड़ा है। महाराज दशरथ ने साधारण रीति से दर्पण हाथ में ले अपने मकुट को ठीक किया। उस समय उनकी दृष्टि कनपुटी के सफ़ेद बालों की ओर गयी, जो मानों उन्हें उपदेश कर रहे थे कि हे राजन्! अब बुढ़ापा आ गया—आप श्रीराम जी को युवराज पद दें, अपना जीवन सफल कर लें।

दो०—अस विचारि उर आनि नृप, सुदिन सुअवसर पाइ।
प्रेम पुलकि तनु मुदित मन, गुरुहिं सुनायउ जाइ॥

महाराज दशरथ ने ऐसा मन में विचार, सुन्दर दिन और अच्छा अवसर देख, प्रेम से पुलकित शरीर, और अति प्रसन्न चित्त से अपना विचार जा कर श्रीगुरुदेव से कहा।

कह्यो भुआल सुनिय मुनिनायक। भये राम सब विधि सब लायक॥
सेवक सचिव सकल पुरवासी। जे हमार अरि मित्र उदासी॥
सबहिं राम प्रिय जेहि विधि मोहीं। प्रभु अशीश जनु तनु धरि सोहीं॥
विप्र सहित परिवार गुसाईं। करहिं छोह सब रौरेहि नाईं॥
जे गुरु-चरण-रेणु शिर धरहीं। ते जनु सकल विभव वश करहीं॥
मोहिं सम यहि जग भयउ न दूजा। सब पायउँ प्रभुपदरज पूजा॥
अब अभिलाष एक मन मोरे। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कह्यो नरेश रजायसु देहू॥

महाराज बोले—हे मुनिराज! सुनिये, अब श्रीरामचन्द्र सब योग्य हो गये हैं। मेरे नौकर चाकर, मन्त्री तथा नगर निवासी–जो हमारे मित्र हैं या शत्रु हैं या हमारी ओर से जो उदासीन हैं–उन सब को श्रीराम जी–मेरी ही तरह प्रिय हैं। हे नाथ! मानों आपका आशीर्वाद ही शरीर धारण कर शोभायमान है। हे स्वामिन्! ब्राह्मणों सहित सारा परिवार आप ही की तरह उनको प्यार करता है। जो गुरु के चरणों की रज को मस्तक पर रखते हैं, वे मानों सकल वैभव को अपने वश में कर लेते हैं। हे स्वामिन्! आपके चरणों की रज के प्रसाद से मेरे समान दूसरा कोई नहीं हुआ, मैंने सब कुछ पाया है। अब मेरे मन में एक अभिलाषा और रह गयी है, सो वह भी हे नाथ! आपके अनुग्रह से पूरी हो जायगी मुनि को प्रसन्न और सहज सनेही देख महाराज ने कहा—"आप आज्ञा दें" (तो कहूँ)।

दो०—राजन राउर नाम यश, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिप मणि, मन अभिलाष तुम्हार॥

वसिष्ठ जी बोले—हे राजन् ! आपका नाम और यश सब मनोरथों का देने वाला है, और हे राजशिरोमणि ! आपकी अभिलाषा का फल आपकी अभिलाषा का अनुगामी है । अर्थात् जो तुम चाहते हो सो तुरन्त होता है ।

सब विधि गुरु प्रसन्न जिय जानो । बोल्यो राव हरषि मृदु बानी ॥
नाथ राम करिये युवराजू । कहिय कृपा करि करिय समाजू ॥
मोहिं अछत यह होइ उछाहू । लहहिं लोग सब लोचन लाहू ॥
प्रभु प्रसाद शिव सबै निबाहीं । यह लालसा एक मन माहीं ॥
पुनि न सोच तनु रहौ कि जाहू । जेहि न होइ पाछे पछिताऊ ॥
सुनि मुनि दशरथ वचन सुहाये । मङ्गल-मूल मोद मन भाये ॥
सुनु नृप जासु विमुखपछिताहीं । जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं ॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी । राम पुनीत प्रेम अनुगामी ॥

गुरुदेव को सब प्रकार से प्रसन्न देख, महाराज ने हँस कर कोमल वचन कहे—हे नाथ ! श्रीरामचन्द्र जी को युवराज बनावें और यदि आप कृपा कर कहें तो उसकी तैयारी की जाय । (मेरा इच्छा है कि) मेरे जीते जी यह भी उत्सव हो जाय और सब लोग नेत्र होने का लाभ उठावें । हे नाथ ! आपके अनुग्रह से श्रीशिव जी ने अभी तक सब निबाह दिया है, अब केवल यही एक अभिलाषा मन में और रह गयी है । फिर चिन्ता नहीं—यह शरीर रहे या जाय—पीछे मुझे पछतावा न होगा । आनन्द मङ्गल देने वाले महाराज दशरथ के सुन्दर वचन मुनि को अच्छे लगे और वे कहने लगे—हे राजन् ! सुनिये, जिसके विमुख होने से पछताना पड़ता है और जिसके भजन बिना जी की जलन नहीं मिटती है, वे ही प्रभु श्रीरामचन्द्र जी आपके सच्चे प्रेम के वशवर्ती हो आपके पुत्र हुए हैं ।

दो०—बेगि विलम्ब न करिय नृप, साजिय सकल समाज ।
सुदिन सुमङ्गल तबहिं जब, राम होहिं युवराज ॥

हे राजन् ! तुरन्त जाकर सारी तैयारियाँ कीजिये—वही सुदिन और मङ्गल का समय होगा जिस दिन और जिस समय श्रीरामचन्द्र जी युवराज होवेंगे ।

मुदित महीपति मन्दिर आये । सेवक सचिव सुमन्त बुलाये ॥
कहि जय जीव शीश तिन नाये । भूप सुमङ्गल वचन सुनाये ॥
प्रमुदित मोहिं कह्यो गुरु आजू । रामहिं राव देहु युवराजू ॥
जो पाँचहि मत लागै नीका । करहु हरषि हिय रामहिं टीका ॥
मन्त्री मुदित सुनत प्रिय बानी । अभिमत बिरव परेउ जनु पानी ॥
विनती सचिव करहिं करजोरी । जियहु जगतपति वर्ष करोरी ॥
जग मङ्गल भल काज विचारा । वेगि नाथ नहिं लाइय वारा ॥
नृपहिं मोद मन सचिव सुभाखा । बढ़त बौंड जनु लही सुशाखा ॥

प्रसन्न हो महाराज अपने भवन में आये और सेवक सुमन्त्र तथा अन्य मन्त्रियों को बुलवाया । "महाराज की जय हो"—कह कर सब ने प्रणाम किया, तब राजा ने उनके सुमङ्गल वचन कहे । (वे बोले) गुरु ने आज प्रसन्न हो मुझसे कहा है कि श्रीराम जी को युवराज करो । यदि यह सलाह सब पञ्चों को अच्छी लगे, तो श्रीरामचन्द्र जी को अभिषिक्त कर दो । मन्त्री इस प्रिय वचन को सुन ऐसे प्रसन्न हुए, मानों मनोरथ रूपी पौधे में, जल पड़ा हो । तदनन्तर मन्त्री ने हाथ जोड़ कर बिनती की कि—"हे जगत्पति ! आप करोड़ों वर्ष जीते रहें । आप ने सब को सुख देने वाला यह भला काम सोचा है–यह शीघ्र होना चाहिये । इसमें देर न लगनी चाहिये । मन्त्री के इन सुन्दर वचनों को सुन महाराज वैसे ही प्रसन्न हुए मानों बढ़ते हुए पेड़ में सुन्दर डालियाँ निकल आयीं हों ।

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ ।
राम राज्य अभिषेक हित, वेगि करिय सोइ सोइ ॥

तब महाराज दशरथ ने मन्त्री से कहा कि—श्रीरामचन्द्र जी के पदाभिषेक के लिये वसिष्ठ जी महाराज जो जो कहें—वही वही तुरन्त होना चाहिये ।

हरषि मुनीश कह्यो मृदुबानी । आनहु सकल सुतीरथ पानी ॥
ओषध मूल फूल फल पाना । कहे नाम गनि मङ्गल नाना ॥
चामर चर्म वसन बहु भाँती । रोम पाट पट अगणित जाती ॥

मणिगण मङ्गल वस्तु अनेका । जो जग योग भूर अभिषेका ॥
वेद विहित कहि सकल विधाना । कह्यो रचहु पुरविविध विताना ॥
सफल रसाल पुंग फल केरा । रोपहु वीथिन पुर चहुँ फेरा ॥
रचहु मञ्जु मणि चौकैं चारू । कहेउ बनावन वेगि बजारू ॥
पूजहु गणपति कुल गुरु देवा । सब विधिकरहु भूमिसुर सेवा ॥

वसिष्ठ जी ने प्रसन्न हो मृदु शब्दों में कहा है कि—सब तीर्थों का जल मँगवाओं । तदनन्तर मुनिराज ने अनेक मङ्गल ओषधियों के नाम गिन कर, बतलाये। चँवर, मृगचर्म, अनेक प्रकार के कपड़े, ऊनी शाल दुशाले तथा अनेक भाँति के रेशमी वस्त्र नाना रूप रङ्ग की मणियाँ, अनेक प्रकार की मङ्गल करने वाली वस्तुएं जो इस संसार में अभिषेक के काम में आती हैं—(उन सब को इकट्ठी करो)। फिर वैदिक रीति से सारी विधि बतला कर कहा कि नगर में बहुत से मण्डप बनवाओ, गलियों में सर्वत्र कटहर, आम, सुपारी और केले के वृक्षों के खम्भे खड़े करवाओ. सुन्दर मणियों के अच्छे चौक पुरवाओ और हाट बाट सजाने की सब को आज्ञा दो । गणेश, गुरु और कुलदेव की पूजा करो और सब प्रकार से ब्राह्मणों की सेवा करो ।

दो०—ध्वज पताक तोरण कलश, सजहु तुरग रथ नाग ।
शिर धरि मुनिवर वचन सब, निज निज काजहिं लाग ॥

ध्वजा, पताका, बन्दनवार, कलस, घोड़े, हाथी तथा रथों को सजवाओ। मुनि की इन आज्ञाओं को सीस पर रख—सब लोग अपने अपने कामों में लगे ।

जेहि मुनीश जो आयसु दीन्हा । सो जनु काज प्रथम तेइ कीन्हा ॥
विप्र साधु सुर पूजत राजा । करत राम हित मङ्गल काजा ॥
सुनत राम अभिषेक सुहावा । बाज गहगहे अवध बधावा ॥
राम सीय तनु शकुन जनाये । फरकहिं मङ्गल अङ्ग सुहाये ॥
पुलकि सप्रेम परस्पर कहहीं । भरत आगमन सूचक अहहीं ॥
भये बहुत दिन अति अवसेरी । शकुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी ॥

भरत सरिस प्रिय को जगमाहीं। यहै शकुन फल दूसर नाहीं ॥
रामहिं वन्धु सोच दिन राती। अण्डनि कमठ हृदय जेहि भाँती ॥

मुनि ने जिसको जो काम सौंपा-वह उसने सब से पहिले किया। महाराज ब्राह्मण, साधु और देवताओं का पूजन करते हैं और श्रीराम जी के लिये मङ्गलाचार करते हैं। श्रीरामचन्द्र जी के अभिषेक की चर्चा फैलते ही, नगर भर में गहगहे बाजे बजने लगे और बधाइयाँ होने लगीं। सीता जी और श्रीराम जी के शुभ अङ्ग फड़क कर शुभ की सूचना देने लगे। वे दोनों प्रसन्न हो इन शकुनों का यह फल अनुमान करते और परस्पर कहते हैं कि जान पड़ता है, भरत जी आने वाले हैं। उनको बहुत दिनों से न देखने के कारण मन बहुत चिन्तित है: किन्तु आज इन शकुनों से तो प्रिय भाई के शीघ्र मिलने का विश्वास उत्पन्न होता है, क्योंकि भरत जी के बराबर जगत् में मेरा और कौन प्रिय है। निश्चय ही इन शकुनों का यही फल है। दूसरा नहीं। श्रीरामचन्द्रजी के मन में रात दिन भाई के लिये वैसी ही चिन्ता बनी रहती है, जैसी कछुवी के मन में अपने अण्डों की।

दो०—तेहि अवसर मङ्गल परम, सुनि हरषीं रनिवास।
शोभित लखि विधु बढ़त जनु, वारिधि बोचिविलास ॥

उस समय इस परम मङ्गलमय उत्सव की सूचना जान, रनिवास में रहने वाले ऐसे प्रसन्न हुए जैसे पूर्ण चन्द्र को देख समुद्र प्रसन्न होता है।

प्रथम जाइ जेहि वचन सुनावा। भूषण वसन भूरि तिन पावा ॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागी। मङ्गल कलश सजन सब लागी ॥
चौकैं चारु सुमित्रा पूरी। मणिमय विविधभाँतिअति रूरी ॥
आनँद मगन राम महतारी। दिये दान बहु विप्र हँकारी ॥
पूजेउ ग्रामदेव सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलि भागा ॥
जेहि विधि होइ राम कल्याना। देहु दया करि सो वरदाना ॥
गावहिं मङ्गल कोकिल-बयनी। विधुवदनी मृग-शावक-नयनी ॥

जिन लोगों ने सब से पहले रनवास में यह सुसंवाद दिया था—उन्हें बहुत से गहने और कपड़े मिले। सब रानियाँ बहुत प्रसन्न हुईं और मङ्गल साज सजाने

लगीं। सुमित्रा जी ने मणियों के रङ्ग बिरङ्गे सुन्दर चौक पूरे, राम जी की माता कौशल्या जी तो आनन्द में मग्न हो गयीं और ब्राह्मणों को बुला कर बहुत सा दान दिया। उन्होंने ग्रामदेव, देवता और नाग की पूजा कर, बलिदान का भाग देने की मनौती मानी और कहा--कृपा कर ऐसा वर दीजिये जिससे श्रीरामचन्द्र जी का भला हो। साथ ही चन्द्रमुखी, कोकिलबयनी और मृग-शावक-नयनी नारियाँ मङ्गलाचार गाने लगीं।

दो०—राम राज्य अभिषेक सुनि, हिय हर्षे नरनारि।
लगे सुमङ्गल सजन सब, विधि अनुकूल विचारि॥

सब स्त्री पुरुष श्रीरामचन्द्र जी के अभिषेक का समाचार सुन, बहुत प्रसन्न हुए और भाग्य को अनुकूल जान, इस मङ्गलमय महोत्सव को मनाने की तैयारियाँ करने लगे।

तब नरनाह वशिष्ठ बुलाये। राम धाम सिख देन पठाये॥
गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आय नायउ पद माथा॥
सादर अर्घ्य देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥
गहे चरण सिय सहित बहोरी। बोले राम कमल करजोरी॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मङ्गल मूल अमङ्गल दमनू॥
यदपि उचित अस बोलि सप्रीती। पठइय काज नाथ अस नीती॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु मम गेहू॥
आयसु होय सो करिय गुसाईं। सेवक लहै स्वामि सेवकाईं॥

तब दशरथ जी ने वसिष्ठ जी को बुलाया और शिक्षा देने के लिये उन्हें उस भवन में भेजा जिसमें श्रीरामचन्द्र जी रहते थे। गुरुदेव के आने का समाचार पाकर, रघुनाथ जी ने ड्योढ़ी पर पहुँच कर प्रणाम किया। घर के भीतर ले जाकर उन्हें आदरपूर्वक अर्घ्य दे उनका षोड़शोपचार पूजन किया। फिर सीता सहित श्रीरामचन्द्रजी वशिष्ठ जी के चरण छू कर और कमल समान हाथ जोड़ कर, कहने लगे—"दास के घर, स्वामी का आगमन, आनन्द का देने वाला और अमङ्गलों को दूर करने वाला होता है तथापि नीति के अनुसार उचित था कि मुझे आप

अपने घर बुला भेजते। हे नाथ! आपने अपनी पद मर्य्यादा का विचार न कर, मुझ पर बड़ा स्नेह किया है, अतः आज मेरा घर पवित्र हुआ। हे स्वामिन्! अब जो आज्ञा हो कहिये, यह दास उसका पालन करने को सेवा में उपस्थित है।

दो०—सुनि सनेह साने वचन, मुनि रघुवरहि प्रशंस।
राम न कस तुम कहहु अस, हंसबंसअवतंस॥

श्रीरामचन्द्रजी के ऐसे स्नेह से सने वचन सुन वसिष्ठ जी उनकी प्रशंसा करने लगे और बोले हे श्रीरामचन्द्रजी! तुम ऐसे वचन क्यों न कहोगे--क्योंकि तुम हो भी तो सूर्यवंश के भूषण।

बरणि रामगुण शील स्वभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुमहिं युवराजू॥
राम करहु सब संयम आजू। जो विधि कुशल निबाहैं काजू॥
गुरु सिख देइ राव पहँ गयऊ। राम हृदय अस विस्मय भयऊ॥
जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
कर्ण वेध उपवीत निबाहा। संग संग सब भयउ उछाहा॥
विमल वंश यह अनुचित एका। अनुज विहाय बड़े अभिषेका॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरत भक्त मन की कुटिलाई॥

वसिष्ठजी ने श्रीरामचन्द्र जी के गुण, शील और स्वभाव का बखान करते हुए प्रेम से पुलकित हो कहा--महाराज, तुम्हारे अभिषेक की तैयारियाँ कर रहे हैं, वे तुम्हें युवराज का पद देना चाहते हैं। अतः हे श्रीराम जी! आजतुम ब्रह्मचर्य धारण कर संयम से रहो, जिससे सारा काम निर्विघ्न पूरा हो जाय। यह शिक्षा दे वसिष्ठ जी महाराज के पास लौट गये। किन्तु यह सुन श्रीरामचन्द्र जी विस्मित हुए। वे कहने लगे हम सब भाई एक ही साथ तो उत्पन्न हुए और लड़कपन ही से, खाना, पीना, सोना, खेलना, कनछेदन, जनेऊ और विवाह साथ ही साथ सब काम हुए। किन्तु इस विमल वंश में यह प्रथा ठीक नहीं कि छोटे भाइयों को छोड़ कर, बड़ा राजगद्दी पावे। प्रभु का स्नेहयुक्त, यह सुन्दर पश्चात्ताप भक्तों के मन की कुटिलता को हरे।

दो०—तेहि अवसर आये लषण, मगन प्रेम आनन्द।
सनमाने प्रिय वचन कहि, रघुकुल कैरवचन्द॥

उस समय प्रेम में मग्न लक्ष्मण जी आये और श्रीरामचन्द्र जी ने प्रिय वचन कह कर उनका सन्मान किया।

बाजहिं बाजन विविध विधाना। पुर प्रमोद नहिं जाइ बखाना॥
भरत आगमन सकल मनावहिं। आवहिं वेगि नयन फल पावहिं॥
हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परस्पर लोग लुगाई॥
कालिह लगन भल केतिक बारा। पूजिहि विधि अभिलाष हमारा॥
कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं राम होइ चित चेता॥
सकल कहहिं कब होइहि काली। विघ्न मनावहिं देव कुचाली॥
तिनहिं सुहाय न अवध बधावा। चोरहिं चाँदनि रात न भावा॥
शारद बोलि विनय सुर करहीं। बारहिं बार पायँ लै परहीं॥

अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। उस समय नगर में जो आनन्द छाया हुआ था—उसका वर्णन नहीं हो सकता। सब लोग यह मनाने लगे कि भरत जी भी शीघ्र आकर अपने नेत्रों को सफल करें। क्या हाट, क्या बाट, क्या गली और क्या अथाई-(चौपाल जहाँ नगरवासी एकत्रित होते हैं) सब जगह लोग और लुगाइयां आपस में यही पूँछती थीं कि कल किस समय सुन्दर लग्न आवेगी, जब ब्रह्मा हमारी अभिलाष पुरवेंगे। सीता जी समेत श्रीरामचन्द्र जी सुवर्ण के सिंहासन पर जब बैठें, तब मन प्रसन्न हो। सब लोग कह रहे हैं कि कल कब होगा-किन्तु कुटिल देवता विघ्न डालना चाहते हैं। उनको अयोध्या में यह उत्सव उसी प्रकार अच्छा नहीं लगता जिस प्रकार चोर को चाँदनी रात अच्छी नहीं लगती। देवता लोग, सरस्वती को बुला कर बार बार विनती करते हैं और चरणों में सीस धरते हैं।

दो०—विपति हमारि विलोकि बड़ि, मातु करिय सोइ काज।
राम जाहिं बन राज तजि, होइ सकल सुरकाज॥

देवतागण कहते हैं कि हमारी बड़ी विपत्ति को देख, हे माता! आप वही

कीजिये, जिससे श्रीरामचन्द्र जी राज पाट छोड़ बन को जायँ और देवताओं के सब काम बनें।

सुनि सुर विनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोज विपिन हिमराती॥
देखि देव पुनि कहहिं बहोरी। मातु तोहिं नहिं थोरिउ खोरी॥
विस्मय हर्ष रहित रघुराऊ। तुम जानहु रघुवीर स्वभाऊ॥
जीव कर्म वश दुख सुख भागी। जाइय अवध देवहित लागी॥
बार बार गहि चरण सकोची। चली विचारि विबुध मति पोची॥
ऊंच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ विभूती॥
आगिल काज विचारि बहोरी। करिहै चाह कुशल कवि मोरी॥
हरषि हृदय दशरथ पुर आई। जनु ग्रह दशा दुसह दुखदाई॥

देवताओं की विनती सुन कर सरस्वती जी पछताती हैं और कहती हैं कि अयोध्या रूपी कमलवन के लिये मैं हिम ऋतु की रात (क्यों) बनूँ। तब देवता उनको देख कहते हैं—हे माता! इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। तुम तो श्रीरघुनाथ जी का स्वभाव जानती ही हो कि वे हर्ष विषादरहित हैं और जीव अपने कर्मानुसार सुखी अथवा दुःखी होता है, इसलिये तुम देवताओं की भलाई के लिये अयोध्या जाओ। देवताओं ने बारम्बार चरणों में गिर मानों सरस्वती को विवश कर डाला—तब मन में देवताओं की नीचता की निन्दा करती वे वहाँ से चल दीं। देवताओं की रहन ऊँचे पद पर होने पर भी, इनकी करतूत बड़ी नीच है। ये दूसरों की बढ़ती नहीं देख सकते। फिर आगे की घटनाओं पर दृष्टि डाल—सरस्वती मन ही मन कहने लगीं कि तभी तो कवि मेरी चाह करेंगे।* यह विचार वे प्रसन्न होती हुई अयोध्या में आयीं। मानों दुस्सह और दुःख-दायी कोई ग्रहदशा आती हो।

दो०—नाम मन्थरा मन्द मति, चेरि कैकयी केरि।
अयश पिटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि॥

---

* रावण के मारे जाने पर श्रीराम जी का यश वर्णन करने को कवि मेरा स्मरण करेंगे।

अयोध्या में सरस्वती आयीं और कैकेयी की एक दासी को, जिसका नाम मन्थरा था, मति फेर और उसे अपयश की पिटारी बना कर लौट गयीं।

दीख मन्थरा नगर बनावा। मञ्जुल मञ्जुल बाजु बधावा ॥
पूछिसि लोगन काह उछाहू। राम तिलक सुनि भा उरदाहू ॥
करै विचार कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाज कवन विधि राती ॥
देखि लाग मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भाँती ॥
भरत मातु पहँ गइ बिलखानी। का अनमनि हँसिहँसिकहरानी ॥
उतर न देइ सो लेइ उसाँसू। नारि चरित करि ढारति आँसू ॥
हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे। दीन्ह लषण शिष असमन मोरे ॥
तबहुँ न बोलि चेरि बड़िपापिनि। छाँड़ै श्वास कारि जनु साँपिनि ॥

नगर की सजावट और घर घर मङ्गलगान सुन कर मन्थरा ने लोगों से पूँछा कि यह कैसा उत्सव है। उत्तर में श्रीरामचन्द्र जी के अभिषेक की तैयारी सुन उसका हृदय जलने लगा। वह नीच बुद्धि और नीच जाति वाली विचारने लगी कि क्या उपाय करूँ जिससे आज ही रात में सारा काम मटियामेंट हो जाय, मन्थरा वैसे ही ताकने लगी जैसे भीलनी शहद के छत्ते को ताकती है। अन्त में वह बिलखती भरत जी की माता के पास गयी। कैकयी ने उससे हँस कर पूँछा कि तुम आज अनमनी क्यों हो? मन्थरा रानी के इस प्रश्न का उत्तर तो देती नहीं, किन्तु उसांसे लेती है और तिरिया चरित्र दिखाती आँसू ढरकाती है। तब रानी ने हंस कर उससे कहा—जान पड़ता है तू बकवादिन है इससे लक्ष्मण ने तुझे सीख दी होगी (अर्थात् दो चार चपत जमा दिये होंगे) वह बड़ी पापिन मन्थरा इस पर भी कुछ न बोली और कालरूपी साँपिन की तरह उसांसे लेने लगी।

दो०—समय रानि कह कहसि किन, कुशल राम महिपाल।
भरत लषण रिपुदमन सुनि, भा कुबरी उरशाल ॥

तब तो रानी कैकेयी डरीं और कहने लगीं—बतला तो सही, राजा, राम, भरत, लक्ष्मण शत्रुघ्न तो प्रसन्न हैं न। यह सुन वह कुबड़ी बहुत दुखी हुई।

कत सिख देहि हमहिं कोउ माई। गाल करब केहि कर बल पाई॥
रामहिं छाँड़ि कुशल केहि आजू। जिनहिं नरेश देत युवराजू॥
भा कौशल्यहि विधि अतिदाहिन। देखत गर्व रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ पुर शोभा। जो अवलोकि मोर मन छोभा॥
पूत विदेश न सोच तुम्हारे। जानति हौ वश नाह तुम्हारे॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥
सुनि प्रिय वचन मलिन मन जानी। झुकी रानि अवरहु अरगानी॥
पुनि असकबहुँ कहसि घरफोरी। तौ धरि जीह कढ़ावौ तोरी॥

हे महारानी! हमें भला कोई क्या सीख देगा? (पर दुःख की बात तो यह है कि) तुम्हारे निकट महाभय उपस्थित है और तब भी तुम नहीं डरतीं। आज श्रीराम को छोड़ और किस की कुशल है, जिन्हें राजा युवराजपद देने वाले हैं। आज कौशल्या के लिये विधाता बड़ा दहिना हो गया है। आजउसके गर्वका क्या ठिकाना है? जाकर नगर की सारी सजावट क्यों नहीं देख आतीं, जिसे देख मेरा मन क्षुब्ध हो रहा है। बेटा तो तुम्हारा विदेश में है, इसकी तुम्हें चिन्ता नहींऔर तिस पर जानती हो राजा हमारी मुट्ठी में हैं। तुम्हें तो सेज पर पड़ा रहना ही बड़ा अच्छा लगता है, और तुम्हें राजा की चाल और कपट नहीं सूझता। इन हित के वचनों को सुन और राजा के मन की कुटिलाई समझ, कैकेयी मन्थरा की ओर झुकी और बनावटी क्रोध दिखला कर कहा—चुप रह। यदि फिर ऐसी घर फोड़ने वाली बात कही तो तेरी जीभ कटवा दूंगी।

दो०—काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय विशेष पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि॥

जो काने, लङ्गड़े, कुबड़े होते हैं वे स्वभाव ही से कुटिल और कुचाली हुआ करते हैं। इनमें भी स्त्री और विशेष कर दासी का तो कहना ही क्या है। यह कह कैकेयी मुसक्या दी।

प्रिय वादिनि सिख दीन्हेउँ तोही। सपनेहु तोपर कोप न मोही॥
सुदिन सुमङ्गलदायक सोई। तोर कहा फुर जा दिन होई॥

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुलरीति सदाई ॥
राम तिलक जो साँचहु काली। माँगु देउँ मनभावत आली ॥
कौशल्या सम सब महतारी। रामहिं सहज स्वभाव पियारी ॥
मोपर करहिं सनेह विशेखी। मैं करि प्रीति परीक्षा देखी ॥
जो विधि जन्म देइ करि छोहू। होहिं राम सिय पूत पतोहू ॥
प्राण तें अधिक राम प्रिय मोरे। तिनके तिलक क्षोभ कस तोरे ॥

हे मधुरभाषिणी, मैंने तुझे सीख दी थी, तुझ पर तो मैं स्वप्न में भी कभी क्रोध नहीं करती। सचमुच मेरे लिये तो वही सुदिन सुमङ्गलदायक होगा, जिस दिन तेरा कहा सच होगा। सूर्यवंश की यह सुन्दर रीति है कि बड़ा भाई स्वामी हो और छोटा भाई उसका सेवक, हे सखी! जो सचमुच श्रीराम जी को तिलक होगा तो मैं जो माँगेगी वही तुझे दूँगी। श्रीराम जी को तो कौशल्या की तरह सभी रानी प्यारी हैं तो भी मुझ पर तो उनका बड़ा अनुराग है--मैंने परीक्षा करके यह बात जान ली है। यदि ब्रह्मा अनुग्रह कर जन्म दें तो श्रीराम तथा सीता जैसे पुत्र और बहू मिलें। जी से अधिक प्यारे श्रीराम के अभिषेक को देख तेरा जी क्यों कुढ़ रहा है?

दो०—भरत शपथ तोहिं सत्य कहु, परिहरि कपट दुराव।
हर्ष समय विस्मय करसि, कारण मोहिं सुनाव ॥

तुझे भरत की शपथ है, कपट और छिपाव त्याग कर सच सच बतला कि इस आनन्द के समय में विषाद करने का कारण क्या है?

एकहि बार आश सब पूजी। अब कछु कहब जीह करि दूजी ॥
फोरै योग कपार अभागा। भलो कहत दुख रौरेहु लागा ॥
कहैं झूंठ फुर बात बनाई। सो प्रिय तुमहिं करू मैं माई ॥
हमहुँ कहब अब ठकुर सुहाती। नाहिं तौ मौन रहब दिनराती ॥
करि कुरूप विधि परवश कीन्हा। वावा शाल हमहिं तिन दीन्हा ॥
कोउ नृप होइ हमैं का हानी। चेरि छाँड़ि अब होव कि रानी ॥

जारै योग स्वभाव हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
ताते कछुक बात अनुसारी। छमब देबि बड़ि चूक हमारी॥

एक ही बार में मेरी आशाएं पूरी हो गयीं अब मैं दूसरी जीभ बना लूं तब तो कुछ कहूँ। यह अभागा कपाल फोड़ डालने योग्य है, जो अच्छा कहते भी तुम्हें बुरा लगा। हे भाई! तुम्हें तो वे ही अच्छे लगते हैं जो झूंठी बातें बना कर कहते हैं-मैं तो (खरी कहने वाली होने के कारण तुम्हें) बुरी लगूहींगी। हम भी या तो तुम्हारी चापलूसो किया करेंगी या दिन रात चुपचाप रहा करेंगी। क्या करूं विधाता ने मुझे भद्दा रूप दे पराधीन किया है, जो बोया वह काटा और जो दिया था, वही अब मिल रहा है। कोई राजा हो-हमें क्या, हम तो दासी से रानी होने से रहीं। किन्तु आग लगे हमारे स्वभाव में जो तुम्हारा बुरा होते देख रहा नहीं जाता। इसीसे कुछ उचित कहा था-सो हमने बड़ी भूल की-हे रानी! उसे आप माफ़ कीजिये।

दो०—गूढ़ कपट प्रिय वचन सुनि, तीय अधर बुधिरानि।
सुरमायावश बैरिणिहि, सुहृद जानि पतियानि॥

क्षणिक बुद्धि वाली स्त्रियाँ हुआ ही करती हैं तिस पर कैकेयी रानी थी-सो मन्थरा के गूढ़ और छल से भरे वचनों को सुन और देवताओं की माया के वश हो उसने शत्रु को अपना मित्र जान उस पर विश्वास कर लिया।

सादर पुनि पुनि पूछति वोही। शबरी गान मृगी जनु मोही॥
तसिमति फिरी रही जसि भावी। रहसी चेरि घात बड़ि फावी॥
तुम पूछहु मैं कहत डराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥
सजिप्रतीतिगढ़िबहुविधि छोली। अवध साढ़साती जनु बोली॥
प्रिय सिय राम कहा तुम रानी। रामहिं तुम प्रिय सो फुरबानी॥
रहा प्रथम दिन अब सो बीते। समय पाइ रिपु होहिं पिरीते॥
भानु-कमल-कुल पोषण हारा। बिनु जल जारि करै त्यहि छारा॥
जर तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाय बरबारी॥

कैकेयी बारम्बार अब आदरपूर्वक मन्थरा से पूँछती है, मानों भीलनी के गान से हिरनी मोहित हो गयी हो। क्योंकि जैसा होनहार होता है, मति भी वैसी ही हो जाती है। मन्थरा यह देख कि अब अच्छा दाँव है—प्रसन्न हुई। और बोली—रानी! तुम तो पूँछती हो और मुझे डर लगता है, क्योंकि तुम तो मेरा "घर फोड़ने वाली" नाम पहले ही रख चुकी हो। इस प्रकार रानी के मन में अपनी ओर से पूर्ण विश्वास उत्पन्न करा और अनेक चिकनी चुपड़ी बातें कह जब उसने रानी को सीधा कर लिया तब वह ऐसे बोली मानों अयोध्या पर शनिश्चर की साढ़े साती (साढ़ेसात वर्ष की) दशा आयी हो। रानी तुमने कहा कि सीताराम मुझे प्यारे हैं और श्रीराम जी को तुम प्यारी हो—सो ठीक बात है। परन्तु पहले की बातें अब जाने दो, काल पा कर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं। देखो सूर्य कमल के पुष्पों का पोषण करने वाला है, किन्तु जल बिना वह भी उसको जला कर भस्म कर देता है। तुम्हारी सौतें तुम्हारी जड़ को उखाड़ना चाहती हैं, सो तुम्हें उचित है कि तुम उसे उपाय रूपी जल से सींच और उसे जोड़ कर, मज़बूत करो।

दो०—तुमहिं न सोच सुहाग बल, निज बश जानहु राउ।
मन मलीन मुँह मीठ नृप, राउर सरल सुभाउ॥

तुमको अपने सुहाग बल से चिन्ता नहीं है, क्योंकि तुम समझे बैठी हो कि राजा तुम्हारी मुट्ठी में हैं, किन्तु राजा मिठबोला तो हैं, पर उनका मन बड़ा मैला है और तुम्हारा स्वभाव सीधा है।

चतुर गँभीर राम महतारी। बीच पाइ निज काज सवाँरी॥
पठये भरत भूप ननिऔरे। राम मातु मत जानब रौरे॥
राजहिं तुम पर प्रीति विशेखी। सवति सुभाव सकै नहिं देखी॥
रचि प्रपंच भूपहि अपनाई। रामतिलक हित लगन धराई॥
सेवहिँ सकल सवति मोहिं नीके। गर्वित भरत मातु बल पीके॥
शाल तुम्हार कौशलहि माई। चतुर कपट नहिं परत लखाई॥
यहि कुल उचित राम कहँ टीका। सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका॥
आगिलि बात समुझि डर मोही। दैव देय फल सो फिरि वोही॥

और श्रीराम की माता बड़ी चतुर है, उसने समय पा कर अपना काम बनाया है। उसने भरत जी को ननिहाल भेज दिया, सो तुम कौशल्या जी को अपनी मत समझना। भरत जी की माता तुम इसी घमण्ड में अपने को भूली हुई हो कि महाराज हमारे हाथ में हैं और सब सौतें हमारी अच्छी सेवा करती हैं। पर कौशल्या मन ही मन तुमसे डाह रखती है, किन्तु वह चतुर और कपटिन इतनी है कि यह बात वह प्रकट नहीं होने देती। महाराज का तुम्हारे ऊपर अधिक अनुराग देख—तुम्हारी सौतों से यह देखा नहीं जाता। सूर्य के समान तेजस्वी महाराज को अपना कर, उसने श्रीराम के तिलक के लिये लग्न धरवाया है। इस कुल की प्रथा के अनुसार श्रीरामचन्द्र के तिलक होना तो उचित ही है और सब इसे पसन्द करते हैं, और मुझे भी अच्छा लगता है, परन्तु जब मैं आगे की बात विचारती हूँ, तब मुझे बड़ा डर लगता है। पर ईश्वर जो फल देगा वह भोगना ही होगा।

दो०—रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोध।
कहेसि कथा शत सवति कर, जाते बढ़ै विरोध॥

अनेकों प्रकार की छल भरी बातें बना कर, मन्थरा ने कैकेयी को समझाया—फिर सैकड़ों सौतों की कथाएँ कहीं, जिससे विद्वेष की वृद्धि हो।

भावीवश प्रतीति उर आई। पूछि रानि निज शपथ दिवाई॥
का पूछहु तुम अजहुँ न जाना। हितअनहिततजिपशु पहिचाना॥
भयो पाख दिन सजत समाजू। तुम सुधि पाई मो सन आजू॥
खाइय पहिरिय राज तुम्हारे। सत्य कहे नहिं दोष हमारे॥
जो असत्य कछु कहब बनाई। तौ विधि देइहि मोहिं सजाई॥
रामहिं तिलक कालिह जो भयऊ। तुम कहँ विपति बीज बिधि बयऊ॥
रेखा खैंचि कहौं बल भाखी। भामिनि भइउ, दूध की माखी॥
जो सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥

होनहार के वश हो कैकेयी के मन में मन्थरा की बातों पर विश्वास हो गया और उसे अपनी शपथ देकर रानी ने उससे पूछा—" इस पर मन्थरा कहने

लगी—"तुम क्या पूँछती हो-क्या अब भी तुम नहीं समझीं। अरे अपनी बुराई भलाई तो पशु पक्षी भी समझते हैं। राज्याभिषेक की तैयारियाँ होते एक पाख हो चुका और तुमने आज मुझ से संवाद सुना है! तुम्हारे राज्य में रानी हमने खाया और पहना है इसलिये कहती हूँ—इसमें मुझे दोषी न समझना। यदि मैं इसमें कुछ भी झूँठ कहूँगी तो ब्रह्मा मुझे दण्ड देंगे। यदि कल्ह श्रीरामचन्द्र जी के तिलक हो गया तो समझ रखना ब्रह्मा ने तुम्हारे लिये विपत्ति का बीज बो दिया। रेखा काढ़ और प्रतिज्ञा करके कहती हूँ कि हे भामिनि! तुम तो दूध की मक्खी हो गयी (अर्थात् कुछ हाथ भी न आया और अङ्ग, भङ्ग होकर गाँठ का गहना भी गँवाया) यदि तुम्हें अपने पुत्र समेत सेवा करना स्वीकार हो तब तो घर रहो—नहीं तो दूसरी तरह नहीं रहने पावेगी।

दो०—कद्रू विनतहि दीन दुख, तुमहिं कौशला देव।
भरत वन्दि गृह सेइ हैं, राम लषण कर नेव॥

जिस प्रकार कद्रू ने विनता को दुःख दिये थे, उसी प्रकार कौशल्या भी तुम्हें खूब सतावेगी और भरत कैदखाने में बेंड़े जायँगे और लक्ष्मण, श्रीराम के नायब बनेंगे।

केकयसुता सुनत कटुबानी। कहि न सकै कछु सहमि सुखानी॥
तनु पसेव कदलि जनु काँपी। कुबरी दशन जीह तब चाँपी॥
कहि कहि कोटिन कपट कहानी। धीरज धरहु प्रबोध सिरानी॥
कीन्हेसि कठिन पढ़ाय कुपाठू। जिमि न नवै फिरि उकठा काठू॥
फिरा कर्म प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहत मनहुँ मराली॥
सुनु मन्थरा बात फुर तोरी। दहिन आँखि नित फरकत मोरी॥
दिन प्रति देखौं राति कुसपने। कहौं न तोहिं मोहवश अपने॥
काह कहौं सखि सूध स्वभाऊ। दाहिन वाम न जानौं कोऊ॥

कैकेयी इन कटुक्तियों को सुन दङ्ग रह गयी और उससे कुछ कहा नहीं गया। उसके शरीर में पसीना आ गया और केले के पेड़ की तरह वह काँपने लगी। तब मन्थरा ने दाँतों तले जीभ दबायी। फिर अनेक कपट की कहानियाँ

कह उसने रानी को समझाया कि धैर्य धरो। उसने रानी को बुरा पाठ पढ़ा कर, (क्रूरता करने के लिये) पोढ़ा कर दिया। जैसा सूखा काठ जो बनाने पर भी नहीं नवता। कर्म के लौटने से रानी को यह बुरी चाल वाली मन्थरा अच्छी लगने लगी और बगुली रूपी उस मन्थरा की वह हंसिनी जैसी प्रशंसा करने लगी। रानी—"मन्थरा सुन! तू ठीक कहती है, क्योंकि मेरा दहिनी आँख नित्य फड़कती है। नित्य रात को बुरे बुरे स्वप्न भी दीख पड़ते हैं, किन्तु अपनी मूर्खता के कारण तुझसे कहती नहीं। हे सखी! क्या कहूँ मैं तो सीधी सादी हूँ। मैं तो सीधा उलटा भी नहीं जानती।

दो०—अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहिं, दैव दुसह दुख दीन्ह॥

मैंने तो अपने चलाव में कभी किसी का बुरा नहीं किया, तिस पर भी नहीं मालूम दैव ने मुझे क्यों एक साथ इतना घोर कष्ट दिया है।

नैहर जन्म भरब बरु जाई। जियत न करब सवति सेवकाई॥
अरिवश दैव जिआवै जाही। मरण नीक तेहि जियब न चाही॥
दीन वचन कह बहु विधि रानी। सुनि कुबरी तिय माया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुख सुहाग तुम कहँ दिन दूना॥
ज्यहिं राउर अस अनभल ताका। सोइ पाइहि यह फल परिपाका॥
जब तें कुमति सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न यामिनि॥
पूछेउँ गुणिन रेख तिन खाँची। भरत भुवाल होहिं यह साँची॥
भामिनि करहु तो कहौं उपाऊ। हैं तुम्हरे सेवावश राऊ॥

मैं नैहर में जाकर भले ही अपने जीवन के दिन पूरे कर दूँ, पर सौत की दासी तो न बनूँगी। जिसको दैव बैरी के अधीन रख कर जीवित रखना चाहे, उस जीने वाले को तो यही अच्छा है कि वह मर जाय। इस प्रकार रानी के अनेक दीन वचन सुन, मन्थरा ने तिरिया जाल फैलाया। वह बोली—"हे रानी! तुम छोटा मन कर, ऐसा क्यों कहती हो। तुमको तो दिन दूना रात चौगुना सुख और सुहाग है। जिसने तुम्हारे लिये यह बुरा चेता है-वही इस फल को

चखेगा। हे मलकिन! मैंने जब से यह कुमन्त्र सुना है, तब से मैंने खाना पीना और सोना छोड़ दिया है। मैंने ज्योतिषियों से प्रश्न किया तो उन्होंने रेखा काढ़ कर कहा--सचमुच भरत जी राजा होंगे। हे रानी! यदि करने कहो तो उपाय भी बतलाऊँ। क्योंकि महाराज तो तुम्हारी ही मुट्ठी में हैं।

दो०—परौं कूप तव वचन लगि, सकौं पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुख देखि बड़ि, कस न करब हितलागि॥

यह सुन कैकेयी बोली—तेरे कहने से तो मैं कुएँ में फाद सकती हूँ और पति पुत्र को भी त्याग सकती हूँ। तू तो मेरे बड़े दुःख की ओर देख कर कह रही है--तब मैं तेरा कहा अपने हित के लिये क्यों न करूँगी।

कुबरी करि करिबलि कैकेयी। कपट छुरी उर पाहन टेई॥
लखै न रानि निकट दुख कैसे। चरै हरित तृण बलि पशु जैसे॥
सुनत वचन मृदु अन्त कठोरी। देति मनहुँ मधु माखन घोरी॥
कहै चेरि सुधि अहै कि नाहीं। स्वामिनि कहेहु कथा मोहि पाहीं॥
दुइ बरदान भूप सन थाती। माँगहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राज रामहिं वनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥
भूपति राम शपथ जब करहीं। तब माँगेहु जेहि वचन न टरहीं॥
होइ अकाज आजु निशि बीते। वचन मोर प्रिय मानेहु जीते॥

मन्थरा ने कैकेयी की बलि देने के लिये, कपट रूपी छुरी को हृदय रूपी पत्थर पर घिस कर पैनाया। रानी सामने खड़े दुःख को उसी प्रकार नहीं देखती, जैसे बलि का पशु हरी हरी घास तो चरता है, (किन्तु तलवार नहीं देखता।) मन्थरा की बातें सुनने में तो बड़ी मीठी हैं, किन्तु अन्त में कठोर हैं, मानों वह शहद में विष मिला कर देती है। दासी कहती है—हे मलकिन! तुम्हें वह बात याद है कि नहीं, जो तुमने (एक बार) मुझसे कही थी। तुम्हारे दो बरदान धरोहर की तरह महाराज के पास जमा हैं, आज उनको माँग कर, अपनी छाती ठण्डी करो। एक से तो भरत जी के लिये राज्य लो और दूसरे से श्रीराम जी के

लिये वनवास माँग, सौतों का आनन्द छीन लो। महाराज जब श्रीरामचन्द्र जी की शपथ कर लें, तब वर माँगना, जिससे वे अपनी बात टाल न सकें, (नहीं तो) आज की रात व्यतीत होने पर, बड़ा अकाज होगा। मेरी बातों को तुम अपने जी से भी अधिक प्यारी समझो।

दो०—बड़ कुघात करि पातकिनि, कहेसि कोप-गृह जाहु।
काज सँवारेहु सजग सब, सहसा जनि पतियाहु॥

पापिन मन्थरा ने बड़ा बुरा दाँव लगा कर कहा कि—कोपभवन में जाकर सावधानता पूर्वक, सारे काम सम्हालो, सहसा विश्वास मत कर लेना।

कुबरिहि रानि प्राण प्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी॥
तुहिं सम हित न मोर संसारा। बहे जात कहँ भइसि अधारा॥
जो विधि पुरब मनोरथ काली। करौं तोहिं चषपूतरि आली॥
बहु विधि चेरिहि आदर देई। कोपभवन गवनी कैकेई॥
विपति बीज बर्षा ऋतु चेरी। भुइँ भइ कुमति केकयी केरी॥
पाइ कपट जल अंकुर जामा। वर दोउ दल फल दुख परिणामा॥
कोप समाज साज सजि सोई। राज करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कुलाहल सोई। यह कुचाल कछु जान न कोई॥

कैकेयी ने मन्थरा को प्राणों से भी बढ़ कर प्रिय समझ, बार बार उसकी बुद्धि को सराहा। वह बोली—"तेरे समान मेरा हितैषी इस संसार में दूसरा कोई नहीं है। तू मेरे लिये बहते को तिनके का सहारा जैसी हुई है। यदि विधि ने कल मेरा मनोरथ पूरा किया तो मैं तुझे अपनी आँखों की पुतली बनाऊँगी। इस प्रकार कैकेयी मन्थरा का संमान कर कोपभवन को गयी। कैकेयी विपत्ति का बीज है। मन्थरा वर्षा ऋतु है, और कैकेयी की कुमति मानों भूमि है। वह बीज कपट रूपी पानी पा कर अङ्कुरित हुआ। उसके पत्ते दोनों वर हैं और अन्तिम दुःखमय परिणाम उसका फल है। कोप का बाना बना वह जा सोयी, मानों राज्य करते हुए उसकी कुमति ने उसका सर्वनाश कर डाला। राजधानी में कोलाहल हो रहा है, परन्तु इस कुचाल की ख़बर किसी को भी नहीं है।

दो०—प्रमुदित पुर नर नारि सब, साजि सुमङ्गलचार।
इक प्रविशहिं इक निर्गमहिं, भीर भूप दरबार॥

अयोध्यावासी नर नारी प्रसन्न हैं और मङ्गलमय साज सजा कर एक आता है एक जाता है इस प्रकार राज-दरबार में आज बड़ी भीड़ है।

बाल सखा सुनि हिय हर्षाहीं। मिलि दस पाँच राम पहँ जाहीं॥
प्रभु आदरहिं प्रेम पहिचानी। पूछहिं कुशल छेम मृदुबानी॥
फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परस्पर राम बड़ाई॥
को रघुबीर सरिस संसारा। शील सनेह निबाहन हारा॥
जेहि जेहि योनि कर्मवश भ्रमहीं। तहँ तहँ ईश देव यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। देव ईश यह ओर निबाहू॥
अस अभिलाष नगर सब काहू। कैकयसुता हृदय अति दाहू॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते गरुआई॥

श्रीरामचन्द्र जी की लड़काई के मित्रों के आनन्द की आज सीमा नहीं है, उनमें से दस पाँच एकत्र हो श्रीरामचन्द्र जी के पास जाते हैं। उनका प्रेम पहचान श्रीरामचन्द्र जी उनका आदर करते हैं और मीठे शब्दों में उनसे कुशल क्षेम पूँछते हैं। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी से अनुमति ले वे अपने अपने घरों को लौट जाते हैं और आपस में श्रीरामचन्द्र जी की प्रशंसा करते हैं। इस संसार में रघुबीर के समान, शील और स्नेह को निबाहने वाला दूसरा और कौन हो सकता है। कर्मवश हमें किसी भी योनि में क्यों न जन्म लेना पड़े पर भगवान् हमें यह अवश्य दें कि सीताराम तो हमारे स्वामी हों और हम उनके सेवक हों और यह हमारा सम्बन्ध अन्त तक निबहे। सब के मन में यही अभिलाषा है, किन्तु कैकेयी के मन में दाह हो रहा है। क्योंकि बुरी संगति पा कर कौन नष्ट होने से बच सकता है, क्योंकि नीच मति में गम्भीरता नहीं रह जाती।

दो०—साँझ समय सानन्द नृप, गये कैकयी गेह।
गये निठुरता निपट किय, जनु धरि देह सनेह॥

सन्ध्या होने पर प्रसन्न होते हुए महाराज दशरथ, कैकेयी के घर गये। मानो सनेह शरीर धारण कर कठोरता के पास गया।

कोप भवन सुनि सकुचे राऊ। भयवश अगम परै नहिं पाऊँ॥
सुरपति बसै बाहु बल जाके। नरपति रहहिं सकल रुख ताके॥
सो सुनि तियरिस गये सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥
शूल कुलिश असि अँगवन हारे। ते रतिनाथ सुमन शर मारे॥
सभय नरेश प्रिया पहँ गयऊ। देखि दशा दुख दारुण भयऊ॥
भूमि शयन पट मोट पुराना। दिये डारि तनु भूषण नाना॥
कुमतिहि कस कुरूपता फावी। अनअहिवात सूच जनु भावी॥
जाइ निकट नृप कह मृदुबानी। प्राण प्रिया केहि हेतु रिसानी॥

कैकेयी का कोपभवन में होना सुन महाराज सकुचाने और मारे डर के उनका पैर आगे न पड़ने लगा। इन्द्र भी जिसके भुजबल के सहारे रहता है, और सम्पूर्ण राजा जिसकी त्योरी निहारा करते हैं, वेही महाराज दशरथ कैकेयी का क्रुद्ध होना सुन सूख गये। देखो, काम का प्रभाव और बड़प्पन। जो महाराज बड़े बड़े पैने अस्त्र शस्त्रों की कुछ भी परवाह नहीं करते, वे ही आज कामदेव के पुष्पबाण से मर्माहत हुए हैं। महाराज दशरथ सकपकाते कैकेयी के पास गये और उसकी वैसी दशा देख बहुत दुःखी हुए। कैकेयी बड़े मोटे और पुराने कपड़े पहने, पृथिवी पर लोट रही थी--और उसने सब गहने उतार कर फेंक दिये थे। यह बुरा वेश उस कुबुद्धिनी को बहुत फबा। मानों वैधव्य ने उसको भावी अनिष्ट की सूचना दी। महाराज ने पास जा मीठे वचनों से पूँछा-हे प्रिये! तुम आज क्यों क्रुद्ध हो गयी हो?

छं०—केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि निवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि विषम भाँति निहारई॥
द्वउ बासना रसना दशन वर मर्म ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवितव्यता वश काम कौतुक लेखई॥

"हे रानी! तुम आज क्यों क्रुद्ध हो" यह कह ज्योंहीं महाराज ने उसके शरीर पर हाथ रखा, त्योंहीं उसने उन्हें ऐसे रोका मानों नागिन क्रुद्ध हो देख रही

हो। उस नागिन के दोनों वर पाने की अभिलाषा तो जिह्वा है और वे वरदान मानों उसके दाँत हैं। उनसे महाराज को काटने के लिये वह मर्मस्थल देख कर खोज रही है। तुलसीदास जी कहते हैं महाराज दशरथ भवितव्यता के वश कामदेव के कौतुक देखते हैं।

सो०—बार बार कह राव, सुमुखि सुलोचनि पिकवचनि।
कारण मोहिं सुनाव, गजगामिनि निज कोप कर॥

हे सुन्दरी! हे सुलोचनी! हे पिकवयनी! कह कर महाराज ने बार बार उसे सम्बोधन किया, और कहा—हे गजगामिनी अपने इस कोप का मुझे कारण तो बतला।

अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा। केहि दुइशिरकेहियमचहलीन्हा॥
कहु केहि रङ्कहि करौं नरेशू। कहु केहि नृपहिं निकारौं देशू॥
सकौं तोर अरि अमरहु मारी। कहा कीट बपुरे नर नारी॥
जानसि मोर स्वभाउ बरोरू। तव मुख मम दृगचन्द्र चकोरू॥
प्रिया प्राण सुत सर्वस मोरे। परिजन प्रजा सकल वश तोरे॥
जो कछु कहौं कपट करि तोहीं। भामिनि रामशपथ शत मोहीं॥
बिहँसि माँगु मन भावति बाता। भूषण साजु मनोहर गाता॥
घरी कुघरी समुझि जिय देखू। वेगि प्रिया परिहरहु कुवेखू॥

हे प्रिये! क्या किसी ने तेरा कुछ बिगाड़ा है? किसके दो सिर उत्पन्न हुए हैं और किसे यम लेना चाहते हैं? कह तो किस रङ्क को राजा बनाऊँ या किस राजा को देश से निकालूं। यदि कोई देवता वैरी हो तो उसे भी मैं मार सकता हूँ, फिर बेचारे स्त्री पुरुष तो कीट के समान हैं—अर्थात् उनकी बिसात ही कितनी है। तू तो मेरे स्वभाव को भली भाँति जानती है कि मेरा मन रूपी चकोर तो मुख रूपी चन्द्रमा को सदा निहारा करता है। हे प्रिये! मेरे प्राण, पुत्र, सर्वस्व, कुटुम्बी और प्रजा सब तेरे वश में हैं। इसमें मेरी तिल भर भी कोई बात बनावटी हो तो मुझे श्रीराम जी की सौ बार सौगन्द है। जो तुझे मांगना हो सो हंस कर माँग ले, और अपने इस मनोहर गात को आभूषणों से अलङ्कृत कर। हे प्रिये! घड़ी कुघड़ी तो देखा कर, और इस कुवेश को तुरन्त त्याग।

दो०—यह सुनि मन गुनि शपथ बड़ि, बिहँसि उठी मतिमन्द।
भूषण सजति विलोकि मृग, मनहुँ किरातिनि फन्द॥

महाराज के इन वचनों को सुन और उनकी उतनी भारी शपथ को मन में गुन कर, मतिमन्द कैकेयी हंसी और उठ बैठी। फिर वह अपने शरीर को भूषणों से वैसे ही सजाने लगी जैसे हिरन को देख भीलनी फन्दा लगाती हो।

पुनि कह राव सुहृद जिय जानी। प्रेम पुलकि मृदु मञ्जुल जानी॥
भामिनि भयउ तोर मन भावा। बाजत गृह गृह अनँद बधावा॥
रामहिं देउँ कालिह युवराजू। सजहु सुलोचनि मङ्गल साजू॥
दलकि उठउ सुनि हृदय कठोरा। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरा॥
ऐसी पीर बिहँसि उर गोई। चोरि नारि जिमि प्रकट न रोई॥
लख्यो न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मति गुरू पढ़ाई॥
यद्यपि नीति निपुण नरनाहू। नारि चरित जलनिधि अवगाहू॥
कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुख मोरी॥

रानी को सुहृद समझ महाराज ने पुलकित शरीर हो फिर इस प्रकार मीठे वचन कहे—हे भामिनी! जो तू चाहती थी—वही तो हो रहा है, देख न नगर में घर घर आनन्द बधाई बज रही है। कल मैं श्रीराम जी को युवराज पद दूँगा—सो हे सुलोचनी! तू भी मङ्गल साज सजा। यह सुन कैकेयी वैसे ही चौंकी जैसे कोई पके हुए बलतोड़ के छू जाने पर चौंक पड़े। पर उस पीड़ा को उसने अपने मन में उसी प्रकार छिपाया जिस प्रकार चोर की स्त्री (पति के घायल होने अथवा मारे जाने पर) सब के सामने नहीं रोती। महाराज उसकी चाल को न समझ पाये। उसकी चाल ऐसी वैसी न थी—वह एक बड़े चालाक गुरु द्वारा यही पढ़ाई गयीं थीं। यद्यपि महाराज बड़े चतुर हैं तथापि तिरिया रूपी समुद्र भी तो बड़ा गहरा है। फिर कपट का स्नेह बढ़ा कर, नेत्र और मुंह फेर कर वह हँस कर बोली।

दो०—माँगु माँगु पै कहहु प्रिय, कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेउ बरदान दुइ, तेउ पावत सन्देहु॥

हे नाथ, माँग माँग तो तुम कहते हो पर लेते देते कभी नहीं, तुमने दो वर देने कहे थे, पर अब तो उनके मिलने में भी सन्देह है।

जानेउँ मर्म राउ हँसि कहई। तुमहिं कोहाब परम प्रिय अहई॥
थाती राखि न माँगेउ काऊ। बिसरि गयो मम भोर स्वभाऊ॥
झूँठहिं दोष हमहिं जनि देहू। दुइके चारि माँगि किन लेहू॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाइँ वरु वचन न जाई॥
नहिं असत्य सम पातक पुञ्जा। गिरि समहोहिकि कोटिकगुञ्जा॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाई। वेद पुराण विदित मुनि गाई॥
तेहि पर राम शपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई॥
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कपट विहंग कुलह जनु खोली॥

तब राजा ने उसका मर्म जाना और हँस कर कहा—तुमको तो बात में रूठना बड़ा प्रिय है। तुमने तो वे दोनों वर धरोहर की तरह मेरे पास रख छोड़े हैं और न तो तुमने कभी उन्हें माँगा और न मुझे ही अपने भोले स्वभाव के कारण देने की याद रही। हमारे ऊपर झूंठा दोष मत लगाओ, चाहे दो के बदले चार वर भले ही माँग लो। क्योंकि रघुकुल की यह सदा से रीति चली आती है कि प्राण भले ही जाँय पर वचन झूंठा नहीं होता। असत्य से बढ़ कर दूसरा पाप नहीं है। कहीं करोड़ों चिरमिटी पहाड़ के बराबर हो सकती हैं? सब अच्छे कामों की जड़ सत्य ही है। यह बात वेद पुराण और मुनीश्वर कहते हैं। तिस पर तूने सुकृत और स्नेह की सीमा श्रीरामचन्द्र जी की शपथ मुझे दी। इस प्रकार पक्की पोढ़ी बात कर, खोटी बुद्धि वाली रानी ने हंसकर कहा, मानों कुमति रूपी बाज पक्षी के नेत्रों की ढकनी खोल दी।

दो०—भूप मनोरथ सुभगवन, सुख सुविहंग समाज।
भिल्लिनि जनु छाँड़न चहत, वचन भयङ्कर बाज॥

महाराज का मनोरथ तो सुन्दर बन है, उसमें मानों पक्षियों का झुण्ड है, उस पर कैकेयी रूपी भिल्लनी वचन रूपी बाज को छोड़ना चाहती है।

सुनहु प्राणपति भावत जीका। देहु एक वर भरतहिं टीका॥

दूसर वर माँगौं करजोरी। नाथ मनोरथ पुरवहु मोरी ॥
तापस वेष विशेष उदासी। चौदह वर्ष राम वनबासी ॥
सुनि तिय वचन भूप उर शोकू। शशिकरछुवतविकलजिमिकोकू ॥
गये सहमि कछु कहि नहिं आवा। जनु शचान वन झपटेउ लावा ॥
माथे हाथ मूंदि दोउ लोचन। तनु धरि शोच लागु जनुशोचन ॥
मोर मनोरथ सुर तरु फूला। फरत किरणि जनु हतेउ समूला॥
अवध उजारि कीन्ह कैकेयी। दीन्हेसि अचल विपति कैकेयी ॥

हे प्राणपति ! मनभावन एक वर मुझे आप यह दें कि भरत जी को राजतिलक हो और हे नाथ ! हाथ जोड़ कर दूसरा वर माँगती हूँ सो तुम मेरी इच्छा को पूरी करो। तपस्वी का वेष बना और विशेष उदासीन हो चौदह वर्ष तक श्रीराम जी वन में रहें। इन बातों को सुन महाराज दशरथ के मन में वैसा ही दुःख हुआ जैसा, चन्द्र की किरण के स्पर्श से चकवा को होताहै। महाराज सहम गये-उनके मुख से बोल न निकला, मानों बटेर के झुण्ड पर बाज झपटा। महाराज का रंग सहसा बिलकुल फीका पड़ गया, मानों ताल वृक्ष पर बिजली गिर गयी हो। माथे पर हाथ रख और दोनों आँखें बन्द कर महाराज ऐसे जान पड़े मानों चिन्ता ही शरीर धारण कर, चिन्ता कर रही हो। (महाराज कहने लगे) मेरा मनोरथ रूपीकल्प वृक्ष फूला था,-किन्तु उसके फलते ही मानों (कैकेयी रूपी) हथिनी ने उसे समूल उखाड़ कर फेंक दिया। कैकेयी ने अयोध्या उजाड़ डाली और विपत्ति की पक्की नींव डाली।

दो०—कवने अवसर का भयउ, गयउँ नारि विश्वास।
योग सिद्धि फल समय जिमि, यतिहि अविद्या नास ॥

कैसा अवसर था और क्या हो गया, स्त्रियों का विश्वास जाता रहा, मानों योग की सिद्धि के समय, यती को अविद्या ने नाश कर दिया।

यहि विधि राव मनहिं मन दहई। देखि कुभाँति कुमतिअस कहई ॥
भरत कि राउर पूत न होहीं। आनेहु मोल बेसाहि कि मोहीं ॥
जो सुनि शरसम लागि तुम्हारे। काहे न बोलेहु वचन सँभारे ॥

देहु उतर अब कहहु कि नाहीं। सत्यसन्ध तुम रघुकुल माहीं ॥
देन कहेउ वर अब जनि देहू। तजहु सत्य जग अपयश लेहू ॥
सत्य सराहि कहेउ वर देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना ॥
शिविदधीचिबलि जो कछु भाषा। तन धन तजेउ वचन प्रण राखा ॥
अति कटुवचन कहत कैकेयी। मानहुँ नोन जरे पर देई ॥

इस प्रकार महाराज मन ही मन, झीखने लगे, तब तो बनाव बिगड़ते देख कैकेयी ने कुपित हो कहा—"क्या भरत तुम्हारा पुत्र नहीं है? या मुझे तुमने मोल लिया था! जो मेरी बातें तुम्हारे तीर जैसी चुभीं, तो पहले ही समझ बूझ कर क्यों नहीं बोले। या तो उत्तर दो नहीं तो साफ़ जवाब दे दो कि नहीं देते, क्योंकि तुम तो रघु के वंश में सत्य के सागर हो। पहले तो देना स्वीकार किया और अब नहीं देते, तो सत्य को छोड़ जगत् में अपयश लो। अपने सत्य-वादी होने की डींगें मार वर देने की प्रतिज्ञा की थी—सो कदाचित् तुमने समझा होगा कि मैं तुमसे चना चबेना माँगूँगी। महाराज शिवि, दधीचि और बलि ने जो कुछ कहा था—उसके लिये शरीर दे डाला, पर बात न जाने दी। कैकेयी ऐसे कटुवचन कहती है, मानों जले पर निमक छिड़क रही है।

दो०—धर्मधुरन्धर धीर धरि, नयन उघारे राव।
सिर धुनि लीन उसास अति, मारेसि मोहि कुठाव ॥

धर्मधुरन्धर महाराज दशरथ ने धीरज धर आँखें खोलीं और सिर धुन तथा उसाँस ले कहा कि इस पापिनी ने मुझे बुरी जगह मारा।

आगे देखि जरति रिस भारी। मनहुँ रोष तरवार उघारी ॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई ॥
लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवन लेइहि मोरा ॥
बोलेउ राउ कठिन करि छाती। बाणी विनय न ताहि सोहाती ॥
प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती। भीरु प्रतीति प्रीति करि हाती ॥
मोरे भरत राम दोउ आँखी। सत्य कहौं करि शङ्कर साखी ॥

अवशि दूत मैं पठउब प्राता। ऐहैं वेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिन शोधि सब साज सजाई। देहौं भरतहिं राज बड़ाई॥

महाराज ने रानी को बड़े क्रोध में जलते हुए देखा, मानों वह क्रोध रूपी नंगी तलवार को लिये खड़ी है। उस तलवार की कुबुद्धि तो मूँठ है। निठुराई धार है, जिसे मन्थरा ने शान पर रख पैना किया है। उसे कराल और कठोर देख, महाराज ने विचारा कि क्या सचमुच यह मेरे प्राणों की गाहक होगी? तब महाराज कड़ी छाती कर बोले—किन्तु उसे तो अब विनय युक्त बात अच्छी ही नहीं लगती। (महाराज ने कहा) हे प्रिये! इस कुल की प्रथा को, विश्वास को और प्रीति को नष्ट कर, बुरे वचन क्यों कहती हो? (यदि कहती हो कि मुझे श्रीराम जी ही प्यारे हैं भरत जी नहीं तो) भरत जी और श्रीराम जी-दोनों मेरे दो नेत्र हैं। यह बात मैं (बनावटी नहीं कहता) महादेव जी की शपथ खा कर कहता हूँ। कल सबेरे मैं अवश्य दूत भेजूँगा और सुनते ही दोनों भाई तुरन्त आवेंगे। फिर शुभ लग्न में, सब तैयारियाँ कर भरत जी को राज्य दूंगा।

दो०—लोभ न रामहिं राज कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट विचारि जिय, करत रहेउँ नृपनीति॥

श्रीरामचन्द्र जी को राज्य का लालच नहीं है और उनका भरत जी पर अनुराग भी बहुत है, किन्तु उन दोनों को बड़ा छोटा समझ मैं राजनीति का अनुसरण करता था।

राम शपथ शत कहौं सुभाऊ। राम मातु कछु कहा न काऊ॥
मैं सब कीन्ह तोहिं बिनु पूछे। ताते परेउ मनोरथ छूँछे॥
रिस परिहरि अब मङ्गल साजू। कछु दिन गये भरत युवराजू॥
एकहि बातु मोहिं दुख लागा। वर दूसर असमञ्जस माँगा॥
अजहूँ हृदय दहत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचहु साँचा॥
कहु तजि रोष राम अपराधू। सब कोउ कहत रामसुठि साधू॥
तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहिं परम सन्देहू॥

जासु स्वभाव अरिहु अनुकूला। सो किमि करहिं मातुप्रतिकूला॥

यदि सन्देह हो कि श्रीराम जी की माता के सिखाने से ऐसा मैंने किया है तो मैं श्रीरामचन्द्र जी की सौ बार शपथ खाकर सच्चे मन से कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्र जी की माता ने मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। मैंने तेरी सलाह बग़ैर किया था—इसीसे मेरे सारे मनोरथ झूँठे पड़ गये अब क्रोध छोड़ कर मङ्गल-वेश धारण करो, कुछ ही दिनों बाद मैं भरत जी को युवराज बनाऊँगा। मुझे एक ही बात से बड़ा दुःख हुआ है, (और तेरा दूसरा वर मुझे दुविधा में डाल रहा है) तेरे उस कठोर वर की आग से अब भी मेरा कलेजा जला जाता है। क्या यह तेरा क्रोध है या हंसी है। क्रोध छोड़ यह तो बतला कि श्रीरामचन्द्र जी ने कौन सा अपराध किया है। श्रीराम को तो सब लोग बड़ा अच्छा बतलाते हैं। तू भी तो उसकी बड़ाई करती और उस पर स्नेह रखती थी, किन्तु अब तेरी बातों से मुझे सन्देह हो गया है। जो अपने स्वभाव से बैरी को भी अनुकूल कर लेता है- वह भला माता के प्रतिकूल काम कैसे करेगा?

दो०—प्रिया हास्य रिस परिहरहु, मांगु बिचारि विवेक।
जेहि देखौं अब नयन भरि, भरत राज अभिषेक॥

हे प्रिये! क्रोध और हँसी को त्यागो और समझ बूझ कर वर माँग, जिससे मैं भरत जी के राज्याभिषेक को मन भर देख सकूँ।

जियै मीन वरु वारि विहीना। मणिबिनु फणिकजियैदुखदीना॥
कहौं स्वभाव न छल मन माहीं। जीवन मोर राम बिनु नाहीं॥
समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना। जीवन राम दरश आधीना॥
सुनि मृदुवचनकुमति जिय जरई। मनहुँ अनल घृत आहुति परई॥
कहहि करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया॥
देहु कि लेहु अयश करि नाहीं। मोहिं न बहुत प्रपञ्च सोहाहीं॥
राम साधु तुम साधु सुजाना। राम मातु भलि सब पहिचाना॥
जस कौशला मोर भल ताका। तस फल देउँ उन्हैं करि शाका॥

जल बिना मछली भले ही जीवित रहे, बिना मणि का सर्प, हीन होकर भले ही जीवन के दिन व्यतीत कर डाले, परन्तु मैं सत्य भाव से कहता हूँ कि—मेरे मन में कपट नहीं है— मैं बिना श्रीराम जी के नहीं जी सकता। हे चतुर प्रिये! तू अपने मन में समझ बूझ ले कि मेरा जीना श्रीरामचन्द्र जी के दर्शनों के अधीन है। इन मीठे वचनों को भी सुन कर कैकेयी ऐसी जलती है मानों आग में घी की आहुति डाल दी गयी हो। कैकेयी ने कहा—तुम चाहे कुछ करो-पर मुझ पर आपकी माया नहीं चलेगी। देना हो तो दो न देना हो तो नहीं कर अकीर्ति लो, मुझे दन्द फन्द नहीं अच्छे लगते। श्रीराम सीधे हैं तुम भी बड़े सज्जन हो और श्रीराम की माता बड़ी भली हैं-मैं ख़ूब जानती हूँ। कौशल्या ने मेरा जैसा भला करना चाहा है, वैसा ही उन्हें छका कर मैं फल चखाऊंगी।

दो०—होत प्रात मुनि वेष धरि, जो न राम वन जाहिं।
मोर मरण राउर अयश, नृप समुझहु मन माहिं॥

हे राजन्! यदि सबेरा होते ही श्रीराम जी मुनि का वेष धर वन को न गये तो मेरा मरण और अपने सिर कलङ्क का टीका लगा—निश्चय जानना।

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरङ्गिनि बाढ़ी॥
पाप पहार प्रकट भइ सोई। भरी क्रोध जलजाइ न जोई॥
दोउ वर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी वचन प्रचारा॥
ढाहति भूप रूप तरुमूला। चली विपति बारिधि अनुकूला॥
लखी नरेश बात सब साँची। तियमिसु मीचु शीश पर नाची॥
गहि कर भूप निकट बैठारी। जनि दिनकर-कुल होसि कुठारी॥
माँगु माथ अबही देउँ तोहीं। राम विरह जनि मारसि मोहीं॥
राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती। नाहिंतजरिहि जन्म भरि छाती॥

यह कह वह कुटिल रानी उठ खड़ी हुई, मानों क्रोध की नदी में बाढ़ आयी हो। वह पाप रूपी पर्वत से उत्पन्न हुई ऐसे क्रोध के जल से भरी है कि उसकी ओर देखा नहीं जाता। इस नदी के दोनों वर तो किनारे हैं और रानी की

हठ उसकी कठिन धार है, मन्थरा के वचन भवँर हैं और यह नदी महाराज रूपी वृक्षों को गिराती विपत्ति रूपी सागर की ओर चली जाती है। महाराज को यह विदित हो गया कि स्त्री की ओट में मृत्यु उनके सिर पर नाच रही है। महाराज ने कैकेयी का हाथ पकड़ और विनती कर उसे बिठाया और कहा कि तू सूर्यवंशको काटने के लिये कुल्हाड़ी मत बन। यदि तू माँगे तो मैं अपना सीस तक अभी दे दूँ, पर श्रीराम के वियोग से मुझे मत मार। जैसे बने वैसे श्रीराम जी को रख ले, नहीं तो जन्म भर छाती में जलन बनी रहेगी।

दो०—देखी व्याधि असाध्य नृप, परेउ धरणि धुनि माथ।
कहत परम आरत वचन, राम राम रघुनाथ॥

किन्तु जब महाराज ने इस बीमारी को असाध्य समझा : तब सिर धुन कर वे पृथ्वी पर गिर पड़े और आर्त स्वर से हे श्रीराम! हे रघुनाथ—कहने लगे।

व्याकुल राव शिथिल सब गाता। करिणि कलपतरु मनहुँ निपाता॥
कण्ठ सूख मुख आव न बानी। जिमि पाठीन दीन बिनु पानी॥
पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहु घाव महँ माहुर देई॥
जो अन्तहु अस करतब रहेऊ। माँगु माँगु केहि के बल कहेऊ॥
दुइ कि होइँ यक सङ्ग भुवालू। हँसब ठठाइ फुलाउब गालू॥
दानि कहाउब अरु कृपणाई। होहिकि क्षेम कुशल रौताई॥
छाँड़हु वचन कि धीरज धरहू। जनि अबला इव करुणा करहू॥
तन तिय तनय धाम धन धरणी। सत्यसन्ध कहँ तृण सम बरणी॥

महाराज विकल हुए और उनके सब अङ्ग शिथिल हो गये, मानों हथिनी ने कल्पतरु को मूल से उखाड़ डाला। कण्ठ सूख गया और बोली बन्द हो गयी और वे ऐसे दीन हो गये जैसे जल बिना मछली। कैकेयी ने फिर कठोर वचन कह कर, वैसे ही महाराज को दुःखी किया, जैसे कोई घाव में विष लगा कर दुःखी करता है। वह बोली—यदि अन्त में तुम्हें यही करना था तो "माँग माँग" किस बिरते पर कहते थे। हे राजन्! ठठाका मार कर हंसना और गाल फुलाना-

ये दोनों काम एक साथ क्यों कर हो सकते हैं? तुम दानी तो कहलाना चाहते हो, और कञ्जूसी भी दिखाते हो, फिर शूर वीर हो कर क्षेम कुशल भी चाहते हो। या तो अपनी बात खोवो या धीरज धरो। स्त्रियों की तरह तुम यह विलाप मत करो। जो सत्य प्रतिज्ञा करने वाला है, उसके लिये, स्त्री, पुत्र, शरीर, धन, धाम, पृथिवी तृण के समान हैं।

दो०—मर्म वचन सुनि राव कह, कछुक दोष नहिं तोर।
लागेउ तेहि पिशाच जनु, काल कहावत मोर॥

इन मर्मभेदी वचनों को सुन महाराज ने कहा—इसमें तेरा कुछ भी दोष नहीं क्योंकि तेरे ऊपर तो मोह रूपी पिशाच सवार है जिसे मेरा काल कहना चाहिये।

चहत न भरत भूप पद भोरे। विधिवश कुमति बसी उर तोरे॥
सो सब मोर पाप परिणामू। कछु न बसाइ भयो बिधि बामू॥
सुवस वसिहि पुनि अवध सुहाई। सब बिधि सुखद राम प्रभुताई॥
करिहैं सकल भाइ सेवकाई। ह्वैहै तिहुँ पुर राम बड़ाई॥
तोर कलङ्क मोर पछिताऊ। मुयउ मेटि नहिं जाइहि काऊ॥
अब तोहिं नीक लागु करु सोई। लोचन ओट बैठु मुख गोई॥
जौलौं जियौं कहौं करजोरी। तौलौं जनि कछु कहसि बहोरी॥
फिरि पछितैहसि अन्त अभागी। मारसि गाय नाहरू लागी॥

भरत तो राजगद्दी पर झूंठे भी बैठना नहीं चाहता, पर होनहार के वश तेरे मन में यह कुमति पैठ गयी है। यह सब मेरे पाप का फल है। इसीसे तो कुसमय में विधाता मुझसे प्रतिकूल हो गया है। अयोध्यापुरी फिर भली भाँति बसेगी, और सर्वगुण सम्पन्न श्रीराम जी शासन करेंगे, और सब भाई उनकी सेवा करेंगे तथा तीनों लोकों में श्रीराम जी की प्रशंसा होगी, परन्तु तेरा कलङ्क और मेरा पश्चात्ताप मरने पर भी न मिटेगा और न जायगा। अब तुझे जो अच्छा लगै सो कर, किन्तु अपना मुख छिपा कर कहीं ओट में जा बैठ। अब हाथ जोड़ कर

एक विनती यह है कि जब तक मैं मर न जाऊं तब तक तू फिर कुछ मत कहना। यह तो निश्चय है कि तू अभागी पीछे वैसे ही पछतायगी जैसे कोई सिंह के लिये गौ को मार कर पछताता है।

दो०—परेउ राव कहि कोटि विधि, काहे करसि निदान।
कपट चतुर नहिं कहति कछु, जागति मनहुँ मसान॥

महाराज अनेक प्रकार से यह कह कर कि वंश क्षय क्यों करती है—भूमि पर गिर पड़े। किन्तु वह तो एक छटी हुई कुटिल स्त्री है, इसीसे उसने इसका महाराज को कुछ भी उत्तर नहीं दिया और चुपचाप, मौन धारण कर वह ऐसे बैठ गयी मानों श्मशान जगा रही हो।

राम राम रटि विकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बिहालू॥
हृदय मनाव भोर जनि होई। रामहिं जाइ कहै जनि कोई॥
उदय करहु जनि रबि रबिकुलगुर। अवध विलोकि शूल होइहि उर॥
भूप प्रीति केकयि निठुराई। उभय अवधि बिधि रची बनाई॥
बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। वीणा बेणु शंख ध्वनि द्वारा॥
पढ़हिं भाट गुण गावहिं गायक। सुनत नृपहि लागत जनु सायक॥
मङ्गल सकल सुहाइ न कैसे। सहगामिनिहिं विभूषण जैसे॥
तेहि निशि नींद परी नहिं काहू। राम दरश लालसा उछाहू॥

महाराज दशरथ राम राम रटते ऐसे विकल हुए, जैसे बिना पंख का पक्षी होता है। वे मन ही मन मनाने लगे कि आज सबेरा हो न हो और कोई जा कर यह हाल श्रीरामचन्द्र जी से न कह दे। हे रघुकुल-गुरु सूर्य! तुम उदय ही मत हो, क्योंकि इस समय अवध को देख तुम्हारे हृदय में शूल होगा। महाराज की प्रीति और कैकेयी की कठोरता—दोनों ही को ब्रह्मा ने मर्य्यादा करके बनाया है अर्थात् महाराज दशरथ से बढ़ कर प्रीति नहीं और कैकेयी से बढ़ कर निर्दयीपन नहीं। विलाप करते सबेरा हो गया—और दरवाजे पर वीणा, बाँसुरी और शंख की ध्वनि होने लगी। भाट यश गाने लगे और गवैया गुणगान करने लगे। किन्तु वे

महाराज के हृदय में तीर की तरह चुभते हैं। ये सारे आनन्द के सामान महाराज को उसी प्रकार अच्छे नहीं लगते जैसे सती को गहने। उस रात कोई भी नहीं सोया, क्योंकि सब को श्रीराम दर्शन की लालसा लगी हुई थी।

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव, कहहिं उदय रबि देखि।
जागे अजहुँ न अवधपति, कारण कवन विशेखि॥

द्वार पर दास और मन्त्रियों की भीड़ हो गयी, और सूर्य्योदय देख सब कहने लगे कि आज अभी तक महाराज नहीं जागे, इसका विशेष कारण क्या है?

पिछले पहर भूप नित जागा। आजु हमहिं बड़ अचरज लागा॥
जाहु सुमन्त जगावहु जाई। कीजिय काज रजायसु पाई॥
गे सुमन्त नृप मन्दिर पाहीं। देखि भयानक जात डराहीं॥
धाइ खाइ जनु जात न हेरा। मानहुँ विपति विषाद बसेरा॥
पूछत कोउ न उत्तर देई। गे जेहि भवन भूप कैकेई॥
कहि जय जीव बैठ सिर नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई॥
शोक विकल विवरण महि परेऊ। मानहुँ कमल मूल परिहरेऊ॥
सचिव सभीत सकहिं नहि पूँछी। बोली अशुभ भरी शुभ छूँछी॥

महाराज तो नित्य रात के पिछले पहर ही उठ बैठते थे, (किन्तु उनके आज अभी तक न जागने से) हम बहुत विस्मित हैं। सुमन्त! तुम जा कर उनको जगाओ और उनकी आज्ञा ले कर काम करो। तब सुमन्त राजभवन के भीतर गये, परन्तु भयानक बाना देख वे जाते हुये डरने लगे, उन्हें ऐसा जान पड़ने लगा कि मानों वह भवन उन्हें खाने को दौड़ता है, इसलिये उसकी ओर देखा नहीं जाता और उसमें विपत्ति और विषाद ने डेरा डाला है। पूंछने पर भी कोई कुछ जवाब नहीं देता, तब सुमन्त उस भवन में गये जहाँ महाराज और कैकेयी दोनों थे। "महाराज की जय हो" कह और प्रणाम कर, बैठे, किन्तु महाराज की दशा देख वे सूख गये। दुःख से तन क्षीण और मन मलीन महाराज भूमि पर ऐसे पड़े हैं, जैसे कमल जड़ से टूट अलग पड़ा हो। सुमन्त मारे डर के कुछ पूंछ सकते नहीं, तब अशुभ से भरी और शुभ से रहित कैकेयी कहने लगी।

दो०—परी न राजहिं नींद निशि, मर्म जानु जगदीश।
राम राम रटि भोर किय, हेतु न कहेउ महीश॥

महाराज को रात भर नींद नहीं आयी—इसका रहस्य तो भगवान् जाने, किन्तु राम राम रट कर इन्होंने सवेरा कर डाला, पर कारण कुछ भी नहीं बतलाया।

आनहु रामहिं बेगि बुलाई। समाचार तब पूछहु आई॥
चलेउ सुमन्त रावरुख जानी। लखी कुचाल कीन्ह कछु रानी॥
शोक विकल मग परै न पाऊ। रामहिं बोलि कहहिं का राऊ॥
उर धरि धीरज गयउ दुआरे। पूछहिं सकल देखि मन मारे॥
समाधान सोकर सब ही का। गये जहाँ दिनकर-कुल-टीका॥
राम सुमन्तहि आवत देखा। आदर कीन्ह पिता सम लेखा॥
निरखि बदन कहि भूप रजाई। रघुकुल दीपहि चले लिवाई॥
राम कुभाँति सचिव संग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥

तुम जाकर शीघ्र श्रीरामचन्द्र जी को बुला लाओ और लौट कर सब हाल स्वयं पूछ लो। इसमें महाराज की सम्मति जान, सुमन्त चलने लगे और समझे कि उसमें रानी की कोई कुचाल है। मारे चिन्ता के उनका पैर ही रास्ते पर नहीं पड़ता। (चिन्ता इस बात की है कि देखें) महाराज, श्रीराम को बुला कर कहते क्या हैं? ज्यों त्यों कर सुमन्त द्वार पर पहुंचे, उनको मन मारे देख, सब लोग पूछने लगे। तब सुमन्त सब का समाधान कर वहाँ गये जहाँ सूर्यवंश के तिलक श्रीराम थे। श्रीराम का दर्शन कर और महाराज का सन्देसा सुना, सुमन्त अपने साथ रघुकुल-दीपक श्रीराम को लिवा ले चले। मन्त्री के साथ श्रीराम बुरी तरह जा रहे हैं—यह देख लोग जहाँ तहाँ बिलखने लगे।

दो०—जाइ दीख रघुवंश-मणि, नरपति निपट कुसाज।
सहमि परेउ लखि सिंहनिहिं, मनहुँ वृद्ध गजराज॥

श्रीरामचन्द्र जी ने पहुँच कर महाराज को बड़े बुरे वेष में देखा। मानों बूढ़ा हाथी, सिंहिनी को देख सहम गया हो।

सूखे अधर जरे सब अङ्गा। मनहुँ दीन मणि हीन भुजङ्गा ॥
सरुष समीप देखि कैकेई। मानहुँ मृत्यु घरी गनि लेई ॥
करुणामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समय विचारी। पूछी मधुर वचन महतारी ॥
मोहिं कहु मातु तात दुख कारण। करिय यत्न जेहि होहिनिवारण ॥
सुनहु राम सब कारण येहू। राजहि तुम पर बहुत सनेहू ॥
देन कहेउ मोहिं दुइ बरदाना। माँगेउँ जो कछु मोहिं सुहाना ॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाँड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥

होंठ सूखे हैं और सब अङ्ग झुलस गये हैं, मानों मणिहीन दुखी सर्प पड़ा है और पास ही कुपित कैकेयी बैठी है, मानों साक्षात् मृत्यु, महाराज की मृत्यु की घड़ियाँ गिन रही है। श्रीरामचन्द्र जी का स्वभाव करुण और कोमल था तथा पहली बार ही उन्हें ऐसा दुःखदायी दृश्य देखने का कुअवसर प्राप्त हुआ था। तब भी धीरज धर और समय देख, कैकेयी से मधुर शब्दों में पूँछा—हे माता! पिता जी के दुःख का कारण मुझे बतला और साथ ही वह यत्न बता जिससे इनका दुख टले। यह सुन कैकेयी बोली—"हे राम! सुनो इसका मुख्य कारण यह है कि महाराज का तुम्हारे ऊपर बड़ा स्नेह है। मुझे इन्होंने दो वर देने कहे थे, सो मुझे जो कुछ अच्छा लगा—मैंने मांग लिया। उसीको सुन महाराज के मन में चिन्ता उत्पन्न हो गयी है। क्योंकि इनसे तुम्हारा सङ्कोच छोड़ा भी तो नहीं जाता।

दो०—सुत सनेह इत वचन उत, संकट परेउ नरेश।
सकहु तो आयसु शीश धरि, मेटहु कठिन कलेश ॥

एक ओर तो पुत्रस्नेह दूसरी ओर प्रतिज्ञापालन इसी सङ्कट में महाराज पड़े हुए हैं, यदि तुमसे बन पड़े तो जो महाराज कहें, उसे करके इनका क्लेश दूर करो।

निधरक बैठि कहत मृदुवानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान वचन शर जाना। मनहुँ भूप मृदु लक्ष्य समाना ॥

जनु कठोरपन धरे शरीरा। सिखै धनुष विद्यावर बीरा॥
सब प्रसङ्ग रघुपतिहिं सुनाई। बैठी जनु तनु धरि निठुराई॥
मन मुसुकाहिं भानु-कुल-भानू। राम सहज आनँद निधानू॥
बोले वचन बिगत सब दूषण। मृदु मञ्जुल जनु बाकविभूषण॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु पोषण हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

कैकेयी निधड़क कटुवचन कह रही है, उसके कठोर वचनों को सुन कठिनता भी विकल हुई। उसकी जीभ तो कमान है और उससे जो वह अनेक वचन बोलती है–वे तीर हैं और महाराज का कोमल हृदय निशाना है। ऐसा प्रतीत होता है कि कठोरता श्रेष्ठ योद्धा का शरीर धारण कर, बाण चलाना सीख रही है। श्रीरामचन्द्र जी से सारा हाल कह वह ऐसे बैठ गयी, मानों कठोरता शरीर धारण किये बैठी हो। सूर्यवंश के सूर्य और आनन्दनिधान श्रीराम मन ही मन मुसुक्याने लगे। फिर सब दोषों से रहित कोमल और मधुर वचन कहे। मानों वे सरस्वती के आभूषण हैं। वे बोले–हे माता! लड़का वही बड़ा भाग्यवान् है जो माता पिता की आज्ञा को मानता है। हे माता! इस संसार में माता पिता की सेवा करने वाला पुत्र दुर्लभ है।

दो०—मुनि गण मिलन विशेष वन, सवहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर॥

हे माता! बन में भी मेरे लिये अच्छा ही है, क्योंकि एक तो मुनियों के दर्शन तिस पर पिता की आज्ञा और तेरी सम्मति।

भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू। विधिसबविधिमोहिंसंमुखआजू॥
जो न जाहुँ वन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहिं मूढ़समाजा॥
सेवहिं अण्ड कलपतरु त्यागी। परिहरि अमिय लेहिं विष माँगी॥
तेउ न पाइ अस समय चुकाहीं। देखु विचारि मातु मन माहीं॥
अब मो कहँ दुख एक विशेखी। निपट विकल नरनायक देखी॥

थोरिहि बात पितहिं दुख भारी । होति प्रतीति न मोहिं महतारी ॥
राव धीर गुण उदधि अगाधू । भा मोसन कछु बड़ अपराधू ॥
ताते मोहिं न कहत कछु राऊ । मोरि शपथ तोहिं कहु सतिभाऊ ॥

यदि प्राणप्रिय भरत के राज्य मिले, तो मैं समझूँ कि ब्रह्मा मेरे सर्वथा अनुकूल है। यदि मैं ऐसे काम में भी वन न जाऊँ, तो मूढ़ समाज में मेरी प्रथम गणना होनी चाहिये जो कल्पतरु को छोड़कर अंड़ौए को लेता हो और अमृत छोड़ विष माँगता हो। वह भी ऐसे अवसर पर न चूकेगा-हे माता! इसे तुम अपने मन में सोच समझ लो। माता! मुझे महाराज के बहुत दुःखी होने का बड़ा दुःख है। न कुछ बात के लिये पिता को इतना दुःखी देख, मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं होता। क्योंकि महाराज तो धैर्यगुण के अगाध समुद्र हैं। जान पड़ता है मुझसे कोई बड़ा अपराध बन पड़ा है, जिससे महाराज मुझसे बोलते तक नहीं। तुझे मेरी शपथ है, सच्ची जो बात हो वही कह।

दो०—सहज सरल रघुबर वचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलै जोंक जिमि वक्र गति, यद्यपि सलिल समान ॥

श्रीरामचन्द्र के इन सीधे वचनों को भी, कुमतिवाली कैकेयी ने उलटे ही समझे, जैसे समान जल होने पर भी जोंक टेढ़ी ही चाल चलती है।

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेह जनाई ॥
शपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना ॥
तुम अपराध योग नहिं ताता। जननी जनक बन्धु सुखदाता ॥
राम सत्य सब जो कछु कहहू। तुम पितु मातु वचन रत अहहू ॥
पितहिं बुझाइ कहो बलि सोई। चौथेपन ज्यहिं अयश न होई ॥
तुम सम सुवन सुकृत जेहि दीन्हे। उचित न तासु निरादर कीन्हे ॥
लागहिं कुमुखि वचन शुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहिं मातु वचन सब भाये। जिमि सुरसरि गति सलिल सुहाये ॥

कैकेयी श्रीरामचन्द्र जी का रुख पाकर प्रसन्न हुई और बनावटी प्रीति दिखलाती हुई बोली-हे तात! तुम अपराध करने योग्य नहीं हो, किन्तु माता पिता

और भाइयों को सुख देने वाले हो। हे श्रीराम! तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है, तुम तो माता पिता के पूर्ण रूप से आज्ञाकारी हो। मैं तुम्हारी बलैया लूँ, तुम अपने पिता को समझा दो कि वे बुढ़ापे में अयश न बटोरें। उन्हें जिन सुकृतों के फल से तुम जैसे पुत्र मिले हैं, उन सुकृतों का निरादर करना ठीक नहीं। इस जले मुख वाली कैकेयी के मुख से ये बातें वैसे ही अच्छी लगती हैं, जैसे (कुदेश) मगध देश में गया आदि तीर्थ। किन्तु श्रीरामचन्द्र जी को कैकेयी के ये सब वचन उसी प्रकार अच्छे लगे, जिस प्रकार गङ्गा जी की धार में अपवित्र पानी भी अच्छा लगता है।

दो०—गै मूर्छा रामहिं सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि, विनय समय सम कीन्ह॥

महाराज की जब मूर्च्छा भङ्ग हुई, तब उन्होंने श्रीराम का स्मरण कर करवट बदली। तब सुमन्त ने श्रीरामचन्द्र जी के आगमन की सूचना देते हुए समयानुसार प्रार्थना की।

जब नृप अकनि राम पगु धारे। धरि धीरज तब नयन उघारे॥
सचिव सँभारि राव बैठारे। चरण परत नृप राम निहारे॥
लिये सनेह बिकल उर लाई। गै मणि फणिक मनहु फिर पाई॥
रामहिं चितै रहे नरनाहू। चला विलोचन वारि प्रवाहू॥
शोक विकल कछु कहै न पारा। हृदय लगावत बारहिं बारा॥
विधिहि मनाव राव मन माहीं। जेहि रघुनाथ न कानन जाहीं॥
सुमिरि महेशहिं कहहिं निहोरी। विनती सुनहु सदाशिव मोरी॥
आशुतोष तुम अवढरदानी। आरति हरहु दीनजन जानी॥

महाराज ने जब श्रीरामचन्द्र जी के पैरों का आहट सुना, तब धैर्य रख कर, उन्होंने आँखें खोलीं। तब सुमन्त ने उन्हें सम्हाल कर बिठाया। जब महाराज ने श्रीराम जी को अपने पैरों में पड़ते देखा तब स्नेह से विकल हो महाराज ने उन्हें अपनी छाती से लगा लिया—मानों खोई हुई मणि सर्प को मिली। महा-

राज, श्रीरामचन्द्र की ओर देखते ही रह गये और उनके नेत्रों से आँसुओं की धारें बहने लगीं। शोक के कारण मुँह से पूरी पूरी बात तो निकलती नहीं—किन्तु बारम्बार वे श्रीरामचन्द्र जी को हृदय से लगा रहे हैं। महाराज मन में ब्रह्मा को मनाते हैं, जिससे रघुनाथ जी वन को न जावें। फिर महादेव का स्मरण कर और गिड़गिड़ा कर कहते हैं, हे सदाशिव! मेरी विनय सुनिये। आप शीघ्र प्रसन्न होने वाले और औघड़ दानी हो—मुझे दीन जन जान मेरे दुःख को दूर करो।

दो०—तुम प्रेरक सबके हृदय, सो मति रामहिं देहु।
बचन मोर तजि रहहिं गृह, परिहरि शील सनेहु॥

तुम सब के प्रेरक हो। इसलिये श्रीराम जी को तुम ऐसी मति दो, जिससे वह मेरा कहना न मान कर और शील स्नेह को छोड़ कर, घर ही में रहें।

अयश होहु बरु सुयश नसाऊँ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊँ॥
सब दुख दुसह सुहावहु मोहीं। लोचन ओट राम जनि होहीं॥
अस मन गुनत राव नहिं बोला। पीपर पात सरिस मन डोला॥
रघुपति पितहिं प्रेमवश जानी। पुनि कछु कहेउ मातु अनुमानी॥
देशकाल अवसर अनुसारी। बोले वचन विनीत विचारी॥
तात कहौं कछु करौं ढिठाई। अनुचित क्षमब जानि लरिकाई॥
अति लघु बात लागि दुख पावा। काहे न मोहिं कहि प्रथम जनावा॥
देखि गुसाईंहिं पूछेउँ माता। सुनि प्रसंग भो शीतल गाता॥

भले ही मेरा सुयश नष्ट हो कर मुझे अपयश मिले—और भले ही मुझे नरक में गिरना पड़े या स्वर्ग मिले—मुझे भले ही सब कठोर दुःख सहने पड़े, किन्तु श्रीराम जी आँखों के सामने से न हटें। महाराज इस प्रकार सोचते विचारते रहे और मुँह से कुछ भी न बोले। उनका मन पीपल के पत्ते की तरह हिलने लगा। तब श्रीरामचन्द्र जी ने पिता को मोहवश जान, अनुमान किया कि कैकेयी कुछ और कहेंगी। अतः देश, काल और अवसर के अनुसार विचार कर, नम्रता सहित वे बोले—हे तात! कुछ कहने की धृष्टता करता हूँ। मुझे लड़का समझ

उस अनुचित को क्षमा कीजियेगा। आपने न कुछ बात के लिये इतना कष्ट सहा मुझ से पहले ही क्यों नहीं कह दिया। हे नाथ! आपकी दशा देख, माता से पूंछा और उसने जो वृत्तान्त कहा उसे सुन शरीर शीतल हो गया।

दो०—मङ्गल समय सनेह वश, सोच परिहरिय तात।
आयसु देइय हरषि हिय, कहि पुलके प्रभु गात॥

हे पिता! आनन्द के समय, स्नेह के वश, चिन्ता को दूर बहाइये, और प्रसन्न हो कर मुझे आज्ञा दीजिये। यह कहते कहते ही श्रीरामचन्द्र जी का शरीर पुलकित हो गया।

धन्य जन्म जगतीतल तासू। पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्राण सम जाके॥
आयसु पालि जन्म फल पाई। ऐहौं वेगिहि देहु रजाई॥
बिदा मातु सन आवहुँ माँगी। चलि हौं वनहिं बहुरि पग लागी॥
अस कहि राम गवन तब कीन्हा। भूप प्रेमवश उतर न दीन्हा॥
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुवत चढ़ी जनु सब तनु बीछी॥
सुन भये विकल सकल नरनारी। बेलि विटप जनु लागु दवारी॥
जो जहँ सुनै धुनै सिर सोई। बड़ विषाद नहिं धीरज होई॥

इस जगतीतल पर उसी पुत्र का जन्म धन्य है जिसके चरित्रों को सुन पिता हर्षित हों। जिस पुत्र को माता पिता प्राणों के सदृश प्रिय हैं, उसकी हथेली पर चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) रहते हैं। मैं आपकी आज्ञा का पालन कर और जन्म लेने का फल पाकर, तुरन्त लौट आऊंगा आप आज्ञा दीजिये। मैं जाकर माता से बिदा हो आऊं फिर आपके चरण छू कर वन को जाऊंगा। यह कह कर श्रीरामचन्द्र जी वहाँ से चले। किन्तु चिन्तावश महाराज ने कुछ भी उत्तर न दिया। यह तीखी ख़बर सारे नगर में वैसे ही फैल गयी जैसे बीछी का ज़हर डंक मारते ही सारे शरीर में फैल जाता है। उसे सुन सब नर नारी बहुत व्याकुल हुए, मानों लता और वृक्ष, वन की आग को देख मुर्झा गये हों। जो जहाँ इस

ख़बर को सुनता है वह वहीं अपना सिर पीटने लगता है। सब बड़े दुःखी हैं और किसी को धीरज नहीं होता।

दो०—मुख सूखहिं लोचन स्रवहिं, शोक न हृदय समाय।
मानहुँ करुणा रस कटक, उतरा अवध बजाय॥

लोगों के मुख सूख गये, नेत्रों से आँसू बहने लगे, और शोक इतना बढ़ा कि हृदय में न समा सका, मानों करुणा रस की सेना डंका बजा कर अयोध्या में उतरी हो।

भलि बनाइ विधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैकयिहि गारी॥
यहि पापिनिहिं बूझि का परेऊ। छाय भवन पर पावक धरेऊ॥
निजकर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा विष चाहत चीखा॥
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुवंश-वेणु-वन आगी॥
पल्लव बैठि पेड़ यहि काटा। सुख महँ शोक ठाट यहि ठाटा॥
सदा राम यहि प्राण समाना। कारण कवन कुटिलपन ठाना॥
सत्य कहहिं कवि नारि स्वभाऊ। सब विधि अगम अगाध दुराऊ॥
निज प्रतिबिम्ब मुकुर गहि जाई। जानि न जाइ नारिगत भाई॥

लोग कह रहे हैं कि ब्रह्मा ने बनी बनाई बात बिगाड़ डाली और लोग जहाँ तहाँ कैकेयी को भी गालियाँ देने लगे। कहने लगे—इस पापिन को क्या सूझ पड़ा जो छाये छवाये घर पर इसने आग की चिनगारी रख दी। वह अपने हाथ से अपने नेत्र निकाल कर उन्हें देखना चाहती है और अमृत फेंक कर विष चीखना चाहती है। वह बड़ी खोटी, कठोर, बुरी बुद्धि वाली और अभागी है। वह रघुवंश रूपी वन के लिये अग्नि के समान है। यह जिस डाली पर बैठी है उसीको इसने काटा है, और आनन्द के अवसर में इसने शोक का ठाठ खड़ा कर दिया है। यह श्रीराम जी को सदा अपने प्राणों के समान समझती थी—फिर कारण क्या है जो उसने ऐसा कुटिल ठान ठाना है। कवि सत्य कहते हैं कि स्त्रियों का स्वभाव, सब प्रकार से अगम्य, अगाध और रहस्यमय होता है। हे भाई!

यदि कोई चाहें तो दर्पण में अपनी परछाईं को भले ही पकड़ ले, किन्तु स्त्रियों की गति नहीं जानी जाती।

दो०—काह न पावक जरि सकै, का न समुद्र समाय।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ॥

अग्नि में सब कुछ भस्म हो सकता है। समुद्र में सब कुछ समा सकता है। प्रबल अबला सब कुछ कर सकती हैं और काल जगत् में सब को खाता है।

का सुनाइ विधि काह सुनावा। का दिखाइ चह काह दिखावा॥
एक कहैं भल भूप न कीन्हा। वर विचारि नहिं कुमतिहिं दीन्हा॥
जो हठि भयउ सकल दुख भाजन। अबला विवश ज्ञान गुण गा जन॥
एक धर्म परमिति पहिचाने। नृपहिं दोष नहिं देहिं सयाने॥
शिवि दधीचि हरिचन्द्र कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी॥
एक भरत कर सम्मत कहहीं। एक उदास मौन ह्वै रहहीं॥
कान मूँदि कर रद कर जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा॥
सुकृत जाइ अस कहत तुम्हारे। भरत राम कहँ प्राण पियारे॥

ब्रह्मा ने क्या सुना कर अब क्या सुनाया और क्या दिखा कर अब क्या दिखाना चाहा है। एक कहता है-महाराज ने यह अच्छा नहीं किया कि समझ बूझ कर कैकेयी को वर नहीं दिया। (जिसका फल यह हुआ कि) उसी हठ के कारण महाराज सब दुःख भोग रहे हैं और स्त्री के वश में होकर उन्होंने अपने ज्ञान और गुण सभी नष्ट कर डाले। धर्म की सीमा जानने वाले जन महाराज को दोष नहीं देते। वे आपस में शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र की कथा कहते हैं। उनमें से एक कहता है कि ये सब बखेड़ा कैकेयी ने भरत की सलाह से किया है, और बहुत से यह सुन उदास हो चुप रह जाते हैं। कोई कोई कानों में उङ्गली दे और दाँतों में जीभ दबा कर कहते हैं कि यह बात बिलकुल निर्मूल है। ऐसा मत कहो नहीं तो तुम्हारे सारे पुण्य नष्ट हो जाँयगे—क्योंकि श्रीरामचन्द्र जी को तो भरत जी प्राणों के समान प्रिय हैं।

दो०—चन्द्र स्रवै बरु अनल कण, सुधा होइ विष तूल।
सपनेहु कबहुँ न करहिं कछु, भरत राम प्रतिकूल॥

चन्द्रमा अग्नि के टुकड़े बरसा सकता है, अमृत विष के तुल्य हो सकता है, किन्तु भरत जी सपने में भी कभी कोई काम श्रीराम जी के प्रतिकूल नहीं कर सकते।

एक विधातहि दूषण देहीं। सुधा दिखाइ दीन्ह विष जेहीं॥
खरभर नगर सोच सब काहू। दुसह दाह उर मिटा उछाहू॥
विप्र बधू कुल मान्य जिठेरी। जे प्रिय परम केकयी केरी॥
लगीं देन शिष शील सराही। वचन बाण सम लागहिं ताही॥
भरत न प्रिय मोंहि राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहि अपराध आजु वन देहू॥
कबहुँ न कीन्ह सवति अवरेशू। प्रीति प्रतीति जान सब देशू॥
कौशल्या अब कहा बिगारा। तुम जेहि लागि वज्र पुर पारा॥

कोई कोई ब्रह्मा ही पर दोष लगाते हैं जिसने अमृत तो दिखाया पर दिया विष। नगर भर में खलबली मच गयी और सारे नगर में उदासी छा गयी। लोगों के जी में जलन होने लगी और मन में जो उत्साह था—वह जाता रहा ब्राह्मणी, कुल की मान्य और बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ जो कैकेयी की बड़ी प्यारी थीं—वे कैकेयी के शील की सराहना कर और सीख देने लगीं—किन्तु उनकी बातें कैकेयी को तीर की तरह चुभीं। तब स्त्रियों ने कहा तुम सदा कहा करती थीं कि मुझे श्रीरामचन्द्र के बराबर भरत भी प्यारे नहीं हैं। (यह बात हम ही से तुमने गुपचुप नहीं कही—किन्तु इसे तो) सारा संसार जानता है। तुम तो श्रीरामचन्द्र जी पर सदा स्नेह करती थीं—अब उन पर क्या अपराध बन पड़ा जो उन्हें तुम वनवास देती हो। तुम को तो (अपनी सौतों पर) पूरा विश्वास था—यह सब देखते आते हैं। उसी कौशल्या ने अब क्या बिगाड़ा है, जिसके लिये तुमने नगर पर वज्र डाला।

दो०—सीय कि पिय संग परिहरहिं, लषण कि रहिहहिं धाम।
भरत कि भूजब राजपुर, नृप कि जियहिं बिन राम॥

सीता जी क्या पति का साथ छोड़ देंगी और क्या लक्ष्मण जी घर में बैठे रहेंगे, भरत जी क्या राज्य भोगेंगे और महाराज दशरथ क्या बिना श्रीरामके जीवित रहेंगे।

अस विचारि जिय छाँड़हु कोहू। शोक कलङ्क कोटि जनि होहू॥
भरतहि अवशि देहु युवराजू। कानन कौन राम कर काजू॥
नाहिन राम राज के भूखे। धर्मधुरीण विषयरस रूखे॥
गुरुगृह बसहिं राम तजि गेहू। नृप सन अस वर दूसर लेहू॥
राम सरिस सुत कानन योगू। कहा कहहिं सुनि तुम कहँ लोगू॥
जो न मानिहैा कहे हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥
जो परिहास कीन कछु होई। तौ कहि प्रकट जनावहु सोई॥
उठहु वेगि सोइ करहु उपाई। जेहि विधि शोक कलङ्क नसाई॥

इस प्रकार विचार कर, क्रोध छोड़ दो, और शोक तथा कलङ्क की कोटि में मत हो। भरत जी को अवश्य ही युवराज पद दो—किन्तु श्रीरामचन्द्र जी का बन में क्या काम है? श्रीरामचन्द्र जी राज्य के भूखे नहीं हैं किन्तु वे तो धर्म की धुरी हैं और विषयवासना से रहित हैं। (यदि तुम उन्हें घर ही में न रहने दो तो) महाराज से दूसरे वर के बदले यह माँगो कि श्रीरामचन्द्र जी घर छोड़, गुरुगृह में जा बसें। क्योंकि श्रीराम जी जैसे पुत्र क्या वन में भेजने योग्य हैं? जब लोग यह सुनेंगे तब वे तुमसे क्या कहेंगे? यदि तुम हमारा कहना ना मानोगी तो याद रखो तुम्हारे हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। यदि तुमने यह हँसी की हो, तो अब उसे स्पष्ट कह दो। अब उठो और ऐसा यत्न करो जिससे शोक और कलङ्क मिटे।

छं०—जेहि भाँति शोक कलङ्क जाय उपाय करि कुल पालहूँ।
हठि फेरु रामहिं जात वन जनि बात दूसरि चालहू॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्राण बिनु तनुचन्द्रबिनु जिमियामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु विनु समुझुभौं मन भामिनी॥

जिस प्रकार शोक और कलङ्क मिटे वही यत्न करो और कुल का पालन करो। हठ को लौटा कर (बन जाने का हठ न कर) न जाने के लिये हठ करो।

श्रीरामचन्द्र जी को वन मत जाने दो। तथा दूसरी मत चलाओ जैसे सूर्य के बिना दिन नहीं, प्राण बिना शरीर नहीं और चन्द्रबिना रात नहीं ; तुलसीदासजी कहते हैं कि उसी प्रकार हे भामिनी! श्रीराम जी के बिना अयोध्या को न समझना।

सो०—सखिन सिखावन दीन्ह, सुनत मधुर परिणाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥

यद्यपि सखियों ने श्रुति मधुर एवं परिणाम में हित कर सीख दी, तथापि मन्थरा की पढ़ाई हुई रानी ने, उस सीख को सुनी अनसुनी कर दिया।

उतर न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्हिचितवजनुबाघिनि भूखी ॥
व्याधिअसाधि जानि तिन त्यागी। चली कहत मति मन्द अभागी ॥
राज करत यहि दैव बिगोई। कीन्हेसि अस जस करै न कोई ॥
यहि विधि बिलपहिं पुरनरनारी। देहिं कुचालिहि कोटिक गारी ॥
जरहिं विषम ज्वर लेहिं उसासा। कवन राम बिनु जीवन आसा ॥
विकल प्रयोग प्रजा अकुलानी। जिमि जलचरगण सूखत पानी ॥
अति विषादवश लोग लुगाई। गवन मातु पहँ राम गुसाँई ॥
मुख प्रसन्न चित चौगुण चाऊ। यहै शोच जनि राखहिं राऊ ॥

वह बड़े कठिन क्रोध में भरी हुई है और उत्तर नहीं देती—बल्कि (वह ऐसी तीव्र दृष्टि से देखने लगी) मानों भूखी बाघिन हिरनियों को देख रही है। तब उन्होंने (कैकेयी को) असाध्य रोगी जान छोड़ दिया और वे उसे बुद्धिहीन और अभागी कहती हुई वहाँ से चलीं। यह राज राजती थी-किन्तु दैव ने इसे नष्ट कर दिया,क्योंकि इसने ऐसा काम किया है जैसा कोई न करे। इस प्रकार नगर के स्त्री पुरुष विलाप करते हैं और कुचालिन कैकेयी को करोड़ों गालियाँ देते हैं। विषम ज्वर में जल कर उसाँसे लेते हैं और कहते हैं कि श्रीराम जी के बिना अब जीने की कौन आशा है ? बहुत दिनों के लिये वियोग हुआ—इस विचार से सब प्रजा के लोग वैसे ही विकल हुए जैसे पानी सूख जाने पर जलजन्तु विकल होते हैं।

नर नारी बहुत दुःखी हुए ! उधर श्रीरामचन्द्र जी अपनी माता के समीप गये। उनका मुख प्रसन्न है और चित्त में चौगुना चाव है। साथ ही उनका यह भी सोच मिट गया है कि महाराज उन्हें अब न रखेंगे।

दो०—नव गयन्द रघुवंशमणि, राज अलान समान।
छूट जानि वन गवन सुनि, उर अनंद अधिकान॥

श्रीराम जी का मन नये पकड़े हुए हाथी के सदृश है और राजतिलक बेड़ी के सदृश है, अतः उससे छूट कर वन में जाने की सुन कर उनके जी में बड़ा आनन्द हुआ।

रघु-कुल-तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातुपद नायउ माथा॥
दीन्ह अशीश लाइ उर लीन्हें। भूषण वसन निछावरि कीन्हें॥
बार बार मुख चुम्बति माता। नयन नेह जल पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदय लगाये। स्रवत प्रेम रस पयद सुहाये॥
प्रेम प्रमोद न कछु कहि जाई। रङ्क धनद पदवी जनु पाई॥
पुनि पुनि सुन्दर वदन निहारी। बोली मधुर वचन महतारी॥
कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मङ्गलकारी॥
सुकृत शील सुख सींव सुहाई। जन्म लाभ कइ अवधि अघाई॥

श्रीरामचन्द्र जी ने दोनों हाथ जोड़ कर, और प्रसन्न हो माता के चरणों को प्रणाम किया। माता ने उन्हें आशीर्वाद दे, हृदय से लगा लिया और गहने कपड़े न्योछावर किये। माता वारम्बार श्रीराम जी का मुख चूमती है! उसके नेत्रों से स्नेह का जल बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया। तब कौशल्या ने श्रीराम जी को गोद में बिठा, फिर हृदय से लगाया, इतने में स्नेहवश उसके स्तनों से सुन्दर दूध टपकने लगा। कौशल्या के प्रेम और प्रमोद का कहना ही क्या है? मानों किसी कङ्गाल को कुवेर का पद मिल गया हो। श्रीराम जी का सुन्दर मुख बार बार देख कर, माता मीठे शब्दों में कहने लगी। हे तात! माता तेरी बलैया लेती है—यह तो बतला वह आनन्द घड़ी कब आवेगी जो सुकृत, शील और सुख की सुन्दर मर्य्यादा है और जन्म के लाभ की भी पूर्ण सीमा है।

दो०—जेहि चाहत नर नारि सब, अति आरति यहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित, वृष्टि शरद् ऋतु स्वाति॥

उस लग्न को सब नर नारी अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ चाह रहे हैं। मानों प्यासा पपीहा और पपीहरी शरद् ऋतु में स्वाति नक्षत्र की बूँद को चाहते हैं।

तात जाउ बलि वेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर सोइ खाहू॥
पितु समीप तब जायहु भैया। भइ बड़ि बार जाय बलि मैया॥
मातु वचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुर-तरु के फूला॥
सुख मकरन्द भरे श्रीमूला। निरखि राम मन भँवर न भूला॥
धर्मधुरीण धर्म गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदुबानी॥
पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥
आयसु देहु मुदित मन माता। जेहि मुद मङ्गल कानन जाता॥
जनि सनेहवश डरपसि भोरे। आनँद मातु अनुग्रह तोरे॥

कौशल्या ने कहा, भैया, शीघ्र स्नान करके जो मन हो वही थोड़ा मीठा खालो, खाकर पिता के पास जाना, बहुत देर हो गई, तुम्हारी माता बलैया लेती है। कल्पवृक्ष से झड़ते हुए फूलों के समान माता के वचन श्रीराम जी ने सुने। वे बचन सुख रूपी पुष्प रस से भरे हुए हैं और उनको देख कर, श्रीराम जी का भ्रमर रूपी मन उन्हें भूलता ही नहीं। तात्पर्य यह है कि श्रीरामचन्द्र जी ने चाहा कि माता के ऐसे वचन मैं सदा सुना ही करूँ। धर्मधुरीण श्रीराम ने धर्म की गति पहचान कर माता से अत्यन्त मीठे शब्दों में कहा—पिता जी ने मुझे बन का राज्य दिया है जहाँ मेरे सब काम होंगे। अतः हे माता! तुम प्रसन्न हो कर मुझे जाने की आज्ञा दो, जिससे मेरी वनयात्रा आनन्द और मङ्गलमयी हो। हे माता! स्नेहवश भूल कर भी डरना मत, तुम्हारे अनुग्रह से जङ्गल में भी मङ्गल ही होगा।

दो०—वर्ष चारिदश विपिन बसि, करि पितु वचन प्रमान।
आय पायँ पुनि देखि हौं, मन जनि करसि मलान॥

वन में चौदह वर्ष रह और पिता की आज्ञा का पालन कर, मैं फिर तेरे चरणों के दर्शन करूँगा, तू मन में उदास मत हो।

वचन विनीत मधुर रघुबर के। शरसम लाग मातु उर कर के ॥
सहमि सूखि सुनि शीतल वानी। जिमि जवास पर पावस पानी ॥
कहि न जाय कछु हृदय विषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू ॥
नयन सजल तनु थर थर कांपी। माँजा खाय मीन जनु मापी ॥
धरि धीरज सुत वदन निहारी। गदगद वचन कहति महतारी ॥
तात पितहि तुम प्राण पियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥
राज देन कहँ शुभ दिन साधा। कहेउ जान वन केहि अपराधा ॥
तात सुनावहु मोहिं निदानू। को दिनकर-कुल भयउ कृशानू ॥

श्रीरामचन्द्र जी के ये विनीत, मधुर शब्द कौशल्या के हृदय में तीर जैसे चुभे। श्रीरामचन्द्र जी की शीतलवाणी सुन माता वैसे ही सूख गयी जैसे जवासा बर्साती पानी के पड़ने से सूख जाता है। उनके मन में जो विषाद उत्पन्न हो गया है—वह कहा नहीं जाता-मानों सिंह की दहाड़ सुन कर हथिनी सहम गयी हो। उसके नेत्र सजल हो गये, शरीर काँपने लगा—मानों माँजा (वर्षा के पहले जल का नाम है इसे पी कर मछली को बहुत दुःखी होना पड़ता है।) को खा कर, मछली विकल हो रही हो। फिर धैर्य्य धारण कर कौशल्या ने श्रीराम जी का मुख देखा और गद्गद कण्ठ से कहने लगी—हे तात! तुम तो पिता के प्राणों के समान प्रिय थे और तुम्हें राज्य देने के लिये उन्होंने शुभ लग्न निकलवायी थी—अब किस अपराध के कारण तुम्हें देश निकाला दिया गया। हे तात! मुझे इस का करण तो सुनाओ। सूर्यवंश को भस्म करने के लिये कौन अग्नि बना है?

दो०—निरखि राम रुख सचिवसुत, कारण कहेउ बुझाय।
सुनि प्रसंग रहि मूक जिमि, दशा वरणि नहिं जाय ॥

सुमन्त मन्त्री के पुत्र ने श्रीराम जी की अनुमति समझ सारा हाल भले प्रकार समझा कर कहा—उसे सुन कौशल्या चुपचाप सन्नाटे में रह गयी। उस समय की उसकी दशा का वर्णन नहीं हो सकता।

राखि न सकहिं न कहि सक जाहू। दुहू भाँति उर दारुण दाहू ॥
लिखत सुधाकर लिखिगा राहू। विधिगति वाम सदा सब काहू ॥

धर्म सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछून्दरि केरी॥
राखौं सुतहिं करहुँ अनुरोधू। धर्म जाइ अरु बन्धु बिरोधू॥
कहौं जान वन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भई रानी॥
बहुरि समुझि तिय धर्म सयानी। राम भरत दोउ सुत सम जानी॥
सरल स्वभाव राम महतारी। बोली वचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका। पितु आयसु सब धर्मक टीका॥

कौशल्या न तो श्रीराम से अयोध्या में बने रहने को कह सकती है और न वन जाने ही की अनुमति दे सकती है—क्योंकि ये दोनों ही काम मन में जलन उत्पन्न करने वाले हैं। विधाता ने लिखना तो चाहा था चन्द्रमा, पर लिख गया राहु—ब्रह्मा की चाल सब के लिये सदा प्रतिकूल ही हुआ करती है। धर्म और स्नेह दोनों ही ने रानी की मति घेर ली और तब उसकी गति* साँप छछूंदर जैसी हो गयी। कौशल्या ने सोचा कि यदि श्रीराम को अनुरोध पूर्वक रख लूँ तो मेरा धर्म जायगा (क्योंकि स्त्री का धर्म है कि पति के प्रतिकूल कोई काम न करे) और बन्धुओं में विरोध होगा, और यदि वन जाने को कहती हूँ तो बड़ी हानि है। इस प्रकार के सङ्कट में पड़, रानी विवश हुई। फिर चतुर कौशल्या ने पतिव्रत धर्म को स्मरण कर और श्रीराम तथा भरत को बराबर समझा। तदनन्तर भोले स्वभाव की श्रीराम जी की माता ने धैर्य धारण कर कहा—हे तात! मैं तेरी बलैया लूँ—तुमने अच्छा किया—क्योंकि पिता की आज्ञा पालन करना सर्वोत्तम धर्म है।

दो०—राज देन कहि दीन्ह वन, मोहि न दुःख लवलेश।
तुम बिनु भरतहिं भूपतिहिं, प्रजहि प्रचण्ड कलेश॥

राज्य देने की बात कह कर, महाराज ने तुम्हें जो वनवास की आज्ञा दी है, इससे मुझे तो कुछ भी दुःख नहीं है, किन्तु तुम्हारे बिना, भरत महाराज और प्रजा बड़ा क्लेश पावेगी।

---

* साँप जब चूहे के धोखे में कभी छछून्दर को पकड़ता है तब बड़ी मुश्किल में पड़ता है। यदि उसे छोड़ दे, तब तो वह अन्धा हो जाय और यदि उसे निगल जाय तो उसके कोढ़ हो जाती है।

जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जो पितु मातु कह्यो वन जाना। तौ कानन शत-अवध-समाना॥
पितु वनदेव मातु वनदेवी। खग मृग चरण सरोरुह सेवी॥
अन्तहु उचित नृपहिं वनवासू। वय विलोकि हिय होत हरासू॥
बड़भागी वन अवध अभागी। जो रघु-वंश-तिलक तुम त्यागी॥
जो सुत कहौं संग मोहिं लेहू। तुम्हरे हृदय होहिं संदेहू॥
पुत्र परम प्रिय तुम सब ही के। प्राण प्राण के जीवन जी के॥
ते तुम कहहु मातु वन जाऊँ। मैं सुनि वचन बैठि पछिताऊँ॥

हे तात! यदि पिता ही की आज्ञा हो, तब तो पिता से माता की आज्ञा बड़ी समझ मत जाओ या माता को पिता से बड़ी समझ मत जाओ और यदि पिता माता (यहाँ माता कैकेयी से तात्पर्य है) दोनों ने वन जाने की आज्ञा दी हो तो वन सौ अयोध्याओं के समान है। वन में वनदेवता तो तुम्हारे पिता होंगे, वनदेवी माता होंगी और पक्षी एवं मृग तुम्हारे टहलुए होंगे। अन्त में तो महाराज लोग वनवासी होते ही हैं, किन्तु अभी तुम्हारी उम्र इस योग्य नहीं है, इसीसे मन हिरासा होता है। वन बड़ा भाग्यवान् है और यह अयोध्या बड़ी अभागिन है जिसे तुम अब छोड़ते हो। हे बेटा! यदि मैं यह कहूँ कि मुझे भी अपने साथ वन को लेते चलो, तो तुम्हारे मन में सन्देह उत्पन्न हो जायगा—क्योंकि तुम तो सब ही के अधिक लाड़ले हो, प्राणों के भी प्राण हो और जीवों के जीवन हो; वही तुम कहते हो कि माता मैं वन को जाऊँ, और मैं यह सुन कर बैठी पछताती हूँ।

दो०—यह विचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेह बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि, सुरति बिसरि नहिं जाइ॥

यही सोच कर और झूठी प्रीति* दिखा कर, आग्रह नहीं करती। (किन्तु) यह अवश्य कहूँगी कि माता का नाता बड़ा जान कर, मेरी याद मत भूल जाना।

* झूँठी प्रीति इसलिये कि इस दारुण वनवास के संवाद को सुन कर

देव पितर सब तुमहिं गुसाईं । राखहिं पलक नयन की नाईं ॥
अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना । तुम करुणाकर धर्मधुरीना ॥
अस विचारि सोइ करहु उपाई । सबहि जियत जेहि भेंटहु आई ॥
जाउ सुखेन वनहिं बलि जाऊँ । करि अनाथ जन-परिजन-गाऊँ ॥
सबकर आजु सुकृत फल बीता । भयो कराल काल बिपरीता ॥
बहुबिधि विलपि चरण लपटानी । परम अभागिनि आपुहि जानी ॥
दारुण दुसह दाह उर व्यापा । बरणि न जाइ विलाप कलापा ॥
राम उठाय मातु उर लाई । कहि मृदु वचन बहुरि समुझाई ॥

(मैं आशीर्वाद देती हूँ कि) हे पुत्र ! देव, पितर तुम्हारी पलकों में नेत्रों की तरह रक्षा करें । बेटा ! चौदह वर्ष वनवास की अवधि तो जल है और प्रिय परिवार मीन है, ये मछलियाँ (अवधि रूपी जल के बीत जाने पर) जीती न रहेंगी । तुम धर्मधुरीण हो इसलिये तो पिता की आज्ञा अवश्य पालन करो और करुणाकर हो इसलिये प्रजा को जीवित रखो । यह विचार कर वही उपाय करो, जिससे सब के जीते ही लौट कर मिल सको । हे बेटा ! मैं तुम्हारी बलैया लूँ । तुम अपने सेवकों, कुटुम्बियों और नगरनिवासियों को अनाथ कर, सुख से वन को जाओ । आज सब के सुकृतों की इतिश्री हो गयी और भयानक काल उल्टा हो गया । इस प्रकार बहुत सा विलाप कर, कौशल्या श्रीराम जी के चरणों में लिपट गयी और अपने को बड़ी अभागिनी समझा । उसके मन में दुःसहदाह उत्पन्न हुआ और उसने ऐसा विलाप किया कि कहा नहीं जाता । तब श्रीराम जी ने माता को उठा कर हृदय से लगा लिया और मीठे वचन कह कर, उसे फिर समझाया बुझाया ।

दो०—समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाय ।
जाय सासु पग-कमल-युग, बन्दि बैठि सिर नाय ॥

मुझे मर जाना चाहिये था-सो मैं मरी तो नहीं किन्तु पछता रही हूँ । इसलिये मेरी ओर से पुत्र का नाता तो झूठा पड़ा अब तुम माता का निबाह कर मुझे भूल मत जाना ।

इतने में यह (श्रीरामचन्द्र जी के वनवास का) समाचार सीता जी ने सुना। सुनते ही वे अकुला उठीं और सास के चरणकमलों की बन्दना कर, और नीचा सिर कर उनके पास जा बैठीं।

दीन्ह असीस सासु मृदुबानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूपरासि पतिप्रेम पुनीता॥
चलन चहत बन जीवननाथा। कवन सुकृत सन होइहि साथा॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। विधि करतब कछु जात न जाना॥
चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी॥
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं। हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं॥
मञ्जु विलोचन मोचति वारी। बोलीं देखि राम महतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु ससुर परिजनहिं पियारी॥

सास ने मीठी वाणी से आशीर्वाद दिया, किन्तु अत्यन्त सुकुमार सीता को देख वह विकल हुई। रूप की खानि, पति से सत्य प्रेम रखने वाली सीता नीची गर्दन कर सोचने लगीं कि प्राणनाथ वन जाना चाहते हैं, अब कौन सा पुण्य-बल मेरा सहायक होगा जिससे मैं उनके साथ जाऊँ। या तो मेरा प्राण और शरीर दोनों ही इनके साथ जायँगे या अकेला प्राण ही जायगा—क्योंकि ब्रह्मा की करतूत जानी नहीं जाती। सीता जी सुन्दर चरणों के नखों से पृथिवी कुरेदती हैं। उनके नूपुर के मधुर शब्द का वर्णन कवि करते हैं कि नूपुर स्नेहवश विनती करते हैं कि सीता जी के चरण हमारा त्याग न करें। सुन्दर नेत्रों से जल बहाते देख, कौशल्या जी ने कहा—हे पुत्र! सीता अति सुकुमार है और सास ससुर एवं कुटुम्बियों को अत्यन्त प्यारी है।

दो०—पिता जनक भूपालमणि, ससुर भानु-कुल-भानु।
पति रवि-कुल-कैरव-विपिन, विधु गुण रूप-निधान॥

इसके पिता तो भूपाल शिरोमणि जनक जी हैं, और ससुर सूर्यवंश के सूर्य महाराज दशरथ हैं और रूप तथा गुणों के निधान तथा सूर्यवंश रूपी कुमुदिनी के वन को खिलाने वाले चन्द्रमा के सदृश तुम इसके पति हो।

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप राशि गुण शील सुहाई॥
नयन पुतरि इव प्रीति बढ़ाई। राखहुँ प्राण जानकिहिं लाई॥
कल्प वेलिजिमि बहुविधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयउ विधि वामा। जानि न जाइ काह परिणामा॥
पलँग पीठि तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनिकठोरा॥
जिवनिमूरिजिमि जुगवति रहेऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहेऊँ॥
सोसिय चहति चलन वन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
चन्द्र-किरणि रस रसिकचकोरी। रवि रुख नयन सकै किमि जोरी॥

फिर मैंने रूप की खान, गुण और रूप से शोभायुक्त प्यारी बहू पायी है और इसमें नेत्रों की पुतली की तरह प्रीति बढ़ा, मैंने इसे रखा है। कल्पलता की भाँति बहुत प्रकार से इसका लालन किया है और स्नेहरूपी जल से इसे सींच कर पाला है। इस लता के फलते फूलते समय ब्रह्मा वाम हो गये हैं—सो नहीं जाना जाता कि इसका परिणाम क्या होगा। पलंग, सिंहासन और हिंडोले को छोड़, सीता ने कठोर पृथिवी पर तो पैर दिया ही नहीं—मैं इसे जीवनमूरि की तरह देखती रही हूँ। मैंने इससे दीपक की बत्ती को उसकाने तक का काम नहीं लिया। वही सीता तुम्हारे साथ वन को जाना चाहती है। सो हे श्रीरामचन्द्र! इसके लिये तुम क्या आज्ञा देते हो? चन्द्रकिरण के रस की चाहने वाली चकोरी सूर्य को ओर कैसे ताक सकती है।

दो०—करि केहरि निशिचर चरहिं, दुष्ट जन्तु वन भूरि।
विष वाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनमूरि॥

वन में हाथी, सिंह, राक्षस आदि अनेक दुष्ट जन्तु घूमा फिरा करते हैं। हे पुत्र! क्या विष वृक्षों के बाग में सुन्दर सजीवनमूरि भी शोभित हो सकती है?

वन हित कोल किरात किशोरी। रची विरंचि विषय-सुख-भोरी॥
पाहन कृमि जिमिकठिन स्वभाऊ। तिनहिं कलेश न कानन काऊ॥
कै तापस तिय कानन योगू। जिन तप हेतु तजा सब भोगू॥

सिय वन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डराती॥
सुर-सरि सुभग वनज वन चारी। डाबर योग कि हंस कुमारी॥
अस विचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई॥
जो सिय भवन रहै कह अम्बा। मो कहँ होइ प्राण अवलम्बा॥
सुनि रघुवीर मातु प्रिय बानी। शील सनेह सुधा जनु सानी॥

ब्रह्मा ने तो वन के लिये कोल और किरातों की कन्याएँ बनायी हैं। वे विषयादिक सुखों को नहीं जानतीं। पत्थर के कीड़ों के समान जिनका स्वभाव कठिन हो गया है—उनको वन में कुछ भी क्लेश नहीं होता या उन तपस्वियों की स्त्रियाँ वन में रहने योग्य होती हैं, जिन्होंने तप के लिये सब भोगों को त्याग दिया है। किन्तु हे तात! सीता वन में कैसे रहेगी? यह तो बन्दर की तसवीर देख कर डरती है। मानसरोवर के सुन्दर कमलवन में घूमने वाली हंसकुमारी क्या तलैया के योग्य होती है? यह सोच विचार कर तुम जैसा कहो—वैसी मैं जानकी को सीख दूँ। कौशल्या जी ने कहा—यदि सीता यह रहेगी तो मेरे प्राणों को बड़ा सहारा मिलेगा। श्रीरामचन्द्र जी ने शील और स्नेह रूपी सुधा से सनी माता की प्यारी बातें सुनी और कहा।

दो०—कहि प्रिय वचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रकट विपिन गुण दोष॥

प्यारे तथा विवेकमय वचन कह कर माता को समझाया। फिर वे वन के गुण और दोषों को बतला कर जानकी जी को समझाने लगे।

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समय समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनु कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जो चहहू। वचन हमार मानि घर रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब विधि भामिनि भवन भलाई॥
यहि ते अधिक धर्म नहिं दूजा। सादर सासु-ससुर-पद-पूजा॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम विकल मति भोरी॥

तब तब तुम कहि कथा पुरानी । सुन्दरि समुझायहु मृदु बानी ॥
कहौं स्वभाव शपथ शत मोही । सुमुखि मातु हित राखौं तोही ॥

माता के सामने अपनी स्त्री से बातचीत करने में यद्यपि श्रीरामचन्द्र जी लज्जित हुए तथापि समय ऐसा था कि उन्हें बातचीत करनी पड़ी । हे राजकुमारी ! मैं जो सीख देता हूँ उसे सुनो । मेरे कहने का तुम कुछ और ही तात्पर्य मत समझ लेना । यदि तुम मेरी और अपनी भलाई चाहो, तो मेरा कहा मान कर तुम घर ही रहो । मेरी तुम्हें यही आज्ञा है कि तुम सास की सेवा करो ! हे भामिनि ! घर ही में रहने से सब प्रकार की भलाई है या भामिन के लिये घर में रहने ही में सब प्रकार की भलाई है । सादर सास ससुर के चरणों की सेवा करने से बढ़ कर दूसरा धर्म नहीं है । मेरी माता को जब जब मेरी याद आवे और वे विकल हों तब तब तुम इन्हें मधुर वचनों से समझा और पुराणों की कथा सुना कर धैर्य बँधाना । हे सुन्दरमुखी ! मैं सत्य सत्य और शपथ खा कर कहता हूँ कि मैं तुम्हें माता के हित के लिये यहाँ छोड़ता हूँ ।

दो०—गुरु-श्रुति-सम्मत धर्म फल, पाइय बिनहिं कलेश ।
हठवश सब संकट सहे, गालव नहुष नरेश ॥

वेद सम्मत और जो उत्तम धर्म है, उसका फल तुम्हें अनायास (बिना किसी कष्ट के) मिलेगा और यदि आग्रह करोगी तो आग्रह करने से जिस प्रकार गालव मुनि और राजा नहुष को क्लेश सहने पड़े वैसे ही तुम्हें भी सङ्कटों में फँसना पड़ेगा ।

मैं पुनि करि प्रमाण पितुबानी । वेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जाय नहिं लागहि बारा । सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा ॥
जो हठ करहु प्रेमवश बामा । तौ तुम दुख पाउब परिणामा ॥
कानन कठिन भयङ्कर भारी । घोर घाम हिम वारि बयारी ॥
कुश कण्टक मग कङ्कर नाना । चलब पयादे बिनु पदत्राना ॥
चरणकमल मृदु मञ्जु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे ॥

कन्दर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥

हे सुमुखि और सयानी! सुन, मैं पिता की आज्ञा का पालन कर बहुत जल्दी लौट आऊँगा। क्योंकि दिन जाते देर नहीं लगती। हे सुन्दरी! तुम मेरी सीख सुनो। हे वामा! यदि तुम प्रेमवश हठ करोगी तो अन्त में तुम्हें दुःख भोगने पड़ेंगे। क्योंकि वन बड़ा कठिन और भयङ्कर है वहाँ धूप, सर्दी, जल और हवा--बहुत सताती है मार्ग में कुश, काँटे और भाँति भाँति के कङ्कड़ हैं, उनके ऊपर बिना जूते के पैदल चलना पड़ेगा। तुम्हारे पैर बड़े सुन्दर और कोमल ठहरे। फिर रास्ते में बड़े बड़े भारी और अगम्य पहाड़ हैं। रास्ते में ऐसी ऐसी अगम्य और गहरी गुफ़ाएँ, नदी खोह, नाले और नार हैं, जिनकी ओर देखा भी नहीं जाता अर्थात् देखने से डर लगता है। फिर वन में रीछ, बाघ, भेड़िये, सिंह, और हाथी ऐसे डरावने शब्द करते हैं, जिन्हें सुन कर धैर्य भी भाग जाता है।

दो०—भूमिशयन बलकल वसन, अशन कन्द फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल॥

पृथिवी पर सोना, छाल के कपड़े पहनना, कन्दमूल और फलों को खाना सो भी हर समय नहीं--कभी ही।

नर अहार रजनीचर करहीं। कपट वेष वन कोटिन फिरहीं॥
लागै अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाय बखानी॥
ब्याल कराल विहग वन घोरा। निशिचर निकर नारि-नर चोरा॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाये॥
हंसगमनि तुम नहिं वन योगू। सुनि अपयश देहहिं मोहिं लोगू॥
मानस-सलिल सुधा प्रतिपाली। जिय इकि लवण पयोधि मराली॥
नव-रसाल-वन विहरणशीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारि। चन्द्रवदनि दुख कानन भारी॥

राक्षस मनुष्यों को खाया करते हैं, वे अनेक प्रकार के बनावटी रूप धारण किया करते हैं। पहाड़ों का जल भी बहुत लगता है (अर्थात् स्वास्थ्य को बिगाड़

देता है)। कहाँ तक गिनाऊँ, वन के क्लेश और विपत्तियाँ अनेक हैं। वन में भयङ्कर सर्प और डरावने पक्षी रहते हैं और राक्षसों के ऐसे समूह भी हैं जो स्त्रियाँ चुराया करते हैं। वन की विपत्तियों का स्मरण करने से धैर्यवानों का भी धैर्य डिग जाता है। फिर तुम तो हे मृगनयनी! स्वभाव ही से डरपोंक हो। हे हंस गामिनी! तुम वन में जाने योग्य नहीं हो। तुम्हारा मेरे साथ वन जाना सुन लोग मुझे बदनाम करेंगे। मान सरोवर के अमृतोपम जल से पाली हुई हंसिन क्या निमक के समुद्र में जी सकती है? नवीन आमों के वन में विहरने वाला कोकिल क्या करील के बन में सोहती है? यह विचार कर घर ही रहो—क्योंकि हे चन्द्रवनी! वन में बड़े बड़े क्लेश हैं।

दो०—सहज सुहृद गुरु स्वामि सिष, जो न करै हित मानि।
सो पछिताय अघाय उर, अवशि होइ हित हानि॥

अकारण भला चाहने वाले गुरु और स्वामी की सीख को जो नहीं मानता वह पीछे मन भर कर पछताता है और उसकी भलाई नहीं होती।

सुनि मृदु वचन मनोहर पिय के। लोचन नलिन भरे जल सिय के॥
शीतल सिष दाहक भइ कैसे। चकइहि शरद चाँदनी जैसे॥
उतर न आव विकल वैदेही। तजन चहत मोहिं परम सनेही॥
बरबस रोकि विलोचन बारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी॥
लागि सासु पद कह कर जोरी। छमहु मातु बड़ि अविनय मोरी॥
दीन प्राणपति मोहिं सिष सोई। जेहि विधि मोहिं परमहित होई॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं। प्रियवियोग सम दुख जग नाहीं॥
अस कहि सिय रघुपति पद लागी। बोली वचन प्रेम रस पागी॥

स्वामी के मनहरण मीठे वचन सुन कर सीता जी के नेत्रों में आँसू भर आये। यह शीतल सीख भी उसी प्रकार उनको जलाने वाली हुई जैसे चकई के लिये शरद् की चाँदनी हुआ करती है। सीता जी व्याकुल हैं और उनसे उत्तर नहीं दिया जाता। वे सोचती हैं कि मेरे परमस्नेही मुझे छोड़ना चाहते हैं। सीता जी ने

आँसुओं को बरबस रोक कर और धैर्य धारण कर, सास को प्रणाम कर और हाथ जोड़ कर कहा—हे देवि! मेरी इस अविनय अर्थात् ढिठाई को क्षमा करना। यद्यपि मेरे स्वामी ने मुझे वही शिक्षा दी है, जिससे मेरी पूरी भलाई हो, तथापि मैं जब अपने मन में विचारती हूँ तब मुझे स्वामी के वियोग से बढ़ कर दूसरा दुःख नहीं दीख पड़ता।

दो०—प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिनु रघु-कुल-कुमुद विधु, सुरपुर नरक समान॥

(सीता, श्रीराम जी से कहती हैं) हे प्राणनाथ! हे दयानिधान! हे सुन्दर सुखों के देने वाले! हे चतुर! हे रघुवंश रूपी कुमुद को चन्द्रमा के समान, तुम्हारे बिना स्वर्ग भी मेरे लिये नरक के समान है।

मातु पिता भगिनी सुत भाई। प्रिय परिवार सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुरु सुजन सगाई। सुत सुन्दर सुशील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरणि ते ताते॥
तनु धन धाम धरणिपुर राजू। पति विहीन सब शोक समाजू॥
भोग रोग सम भूषण भारू। यमयातना सरिस संसारू॥
प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसहि नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। शरद-विमल-विधु-बदन निहारे॥

माता, पिता, बहिन, प्यारे भाई, प्यारा परिवार, मित्रों का समुदाय, सास, ससुर, गुरु, सज्जन, सहायक, सुन्दर शील, पुत्र यद्यपि ये सब सुख देने वाले हैं—तथापि हे स्वामी! जितने स्नेही और नातेदार हैं, वे सब स्त्री के लिये पति के बिना सूर्य से भी बढ़ कर ताते अर्थात् गर्म हैं। शरीर, धन, धाम, पृथिवी और नगर का राज्य ये सब पति बिना स्त्री के लिये शोक के समान हैं। पति के बिना स्त्री के लिये, सारे भोग मानों रोग हैं, भूषण बोझ हैं, और संसार यमयातना के समान है। हे प्राणनाथ! तुम्हारे बिना इस संसारमें मुझे कहीं कोई भी सुख देने

वाला नहीं है। हे नाथ! जिस प्रकार प्राण बिना शरीर, बिना जल के नदी शोभा नहीं पाती, उसी प्रकार पति के बिना स्त्री शोभा नहीं पाती। शरद् के निर्मल चन्द्रमा जैसे आपके मुख को देख और आपके साथ रहने से सब प्रकार के सुख होंगे।

दो०—खग मृग परिजन नगर वन, बलकल विमल दुकूल।
नाथ साथ सुर-सदन-सम, पर्णशाल सुख मूल॥

आपके साथ रहने से वन के पक्षी और मृग तो मेरे कुटुम्बी होंगे, वन-नगर होगा, पेड़ों की छाल रेशमी वस्त्र होंगे और पर्णकुटी स्वर्ग के समान सुखदायक होगी।

वनदेवी वनदेव उदारा। करिहैं सासु-ससुर-सम-सारा॥
कुश-किसलय-साथरी सुहाई। प्रभु संग मञ्जु मनोज तुराई॥
कन्द मूल फल अमिय अहारू। अवधि सौध शत-सरिस पहारू॥
छण छणप्रभु-पदकमलविलोकी। रहिहौंमुदितदिवसजिमि-कोकी॥
वन दुख नाथ कहेउ बहुतेरे। भय विषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु-वियोग-लव लेश समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥
असजियजानि सुजान शिरोमनि। लेइय संग मोहिं छाँड़िय जनि॥
विनती बहुत करौं का स्वामी। करुणामय अरु अन्तरयामी॥

वन देवी और वनदेवता सास ससुर की तरह प्यार करेंगे। पति के साथ कुश, और पत्तों का सुन्दर बिछावन, कामदेव के पलंग के समान होगा। कन्द-मूल फल का भोजन अमृतोपम होगा, और बड़े बड़े पर्वत अयोध्या के सौ राज-भवन, के समान होंगे। अपने स्वामी के, क्षण क्षण में चरणों को देख मैं वैसे ही प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन में चकई रहती है। हे नाथ! आपने वन के अनेक दुःख, भय और सन्ताप गिनाये, किन्तु हे कृपानिधान! वे सब मिल कर पतिवियोग के लवलेश के बराबर भी नहीं हैं। हे चतुरशिरोमणि! यह विचार आप मुझे अपने साथ लेते चलिये, छोड़िये नहीं, हे स्वामी! मैं बहुत सी प्रार्थना क्या करूँ। आप तो दयालु और घट घट के जानने वाले हैं।

दो०—राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद, शील-सनेह-निधान ॥

हे दीनबन्धु! हे सुन्दर आनन्द के देने वाले! हे शील और स्नेह के निधान! यदि आपको विश्वास हो कि चोदह वर्ष तक आपके वियोग में यह प्राण रह सकेंगे तो मुझे भले ही अयोध्या में छोड़ जाओ (नहीं तो अपने साथ लेते चलो)।

मोहिं मग चलत न होइहि हारी। छण छण चरण-सरोज निहारी ॥
सबहि भाँति प्रिय सेवा करि हौं। मारग जनित सकल श्रमहरि हौं ॥
पाँव पखारि बैठि तरु छाहीं। करि हौं वायु मुदित मन माहीं ॥
श्रम-कण सहित श्याम तनु देखी। कहँ दुख समय प्राणपति पेखी ॥
सम महि तृण तरु पल्लव डासी। पाँय पलोटिहि सब निशि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही ॥
को प्रभु संग मोहिं चितवन हारा। सिंहबधुहि जिमि शशक सियारा ॥
मैं सुकुमारि नाथ बन योगू। तुमहिं उचित तप मो कहँ भोगू ॥

मुझे प्रत्येक क्षण आपके चरणकमलों के देखने से मार्ग के चलने की थकावट न जान पड़ेगी—सब प्रकार से मैं पति की सेवा करूँगी और रास्ता चलने की थकावट दूर करूँगी। पैर धो, और वृक्षों की छाया में बैठ, प्रसन्न हो बातचीत करूँगी। पसीने की बूँदों सहित स्वामी का साँवला बदन निहारने से दुःख का अवसर आने ही क्यों लगा। समभूमि पर घास और पत्तों को बिछा कर यह दासी सारी रात स्वामी की चरणसेवा करेगी और बारम्बार स्वामी की माधुरी मूर्ति के देखने से धूप और हवा का कुछ भी क्लेश मुझे न व्यापेगा। फिर जब मैं अपने स्वामी के साथ रहूँगी, तब किसकी मजाल है जो मेरी ओर ताके भी, कहीं सिंहनी को खरहा या गीदड़ भी ताक सकते हैं। हे नाथ! मैं सुकुमार हूँ, और आप वन के योग्य हैं। तुमको तप करना उचित है और क्या मुझे आनन्द भोगना! (कदापि नहीं)

दो०—ऐसेहु वचन कठोर सुनि, जो न हृदय बिलगानि।
तौ प्रभु-विषम-वियोग दुख, सहिहैं पामर प्रान॥

यदि ऐसे कठोर वचन सुन कर भी प्राण न निकले तो यह नीच प्राण आपके वियोग के दारुण दुःख को सहेंगे।

अस कहि सीय विकल भइ भारी। वचन वियोग न सकी सँभारी॥
देखि दशा रघुपति जिय जाना। हठि राखे राखिहि नहिं प्राना॥
कह्यउ कृपालु भानु-कुल-नाथा। परिहरि सोच चलहु वन साथा॥
नहिं विषाद कर अवसर आजू। वेगि करहु वन-गवन-समाजू॥
कहि प्रिय वचन प्रियहि समुझाई। लगे मातुपद आशिष पाई॥
वेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥
फिरिहि दशा बिधि बहुरि किमोरी। देखिहैं नयन मनोहर जोरी॥
सुदिन सुघरी तात कब होई। जननी जियत बदन बिधु जोई॥

यह कह सीता जी बहुत विकल हुईं—और वचन वियोग भी (अर्थात् वियोग की कल्पना को भी) न सह सकीं। उनकी दशा देख श्रीरामचन्द्र जी ने मन में सोचा कि यदि मैंने आग्रहपूर्वक इसे यहाँ छोड़ा भी तो यह मर जायगी। तब कृपालु भानु-कुल-नाथ ने कहा—"अच्छा, तुम चिन्ता मत करो और हमारे साथ वन चलो। अब विपाद करने का समय नहीं है, वन चलने की शीघ्र तैयारी करो। इस प्रकार मीठे वचनों से सीता जी को समझाया, माता के चरण छुए, और आशीर्वाद पाया। कौशल्या ने कहा—शीघ्र लौट कर प्रजा के दुःख मेटना और इस निठुर जननी को भूल मत जाना। हे ब्रह्मा! क्या मेरे दिन फिर बहुरेंगे, जब मैं इस मनोहर जोड़ी को देखूँगी। हे तात! वह सुदिन और सुघड़ी कब होगी जब माता अपने जीते जी तुम्हारे चन्द्रमा के सदृश मुख को देखेगी।

दो०—बहुरि बच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बुलाइ लगाइ उर, हरषि निरखिहौं गात॥

कौशल्या ने कहा हे तात ! वत्स ! लाल ! रघुपति ! रघुवीर ! फिर मैं कब तुम्हें अपनी छाती से लगाऊँगी और तुम्हारे शरीर को देखूँगी ।

लखि सनेह कातरि महतारी । बचन न आव बिकल भइ भारी ॥
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना । समय सनेह न जाइ बखाना ॥
तब जानकी सासु पग लागी । सुनिय मातु मैं परम अभागी ॥
सेवा समय देव बन दीन्हा । मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ॥
तजब छोभ जनि छाँड़ब छोहू । कर्म कठिन कछु दोष न मोहू ॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी । दशा कवन बिधि कहौं बखानी ॥
बारहिं बार लाइ उर लीन्हीं । धरि धीरज उर आशिष दीन्हीं ॥
अचल होउ अहिवात तुम्हारा । जब लग गङ्ग यमुन जल धारा ॥

जब माता को स्नेह से कातर और बहुत विकल देखा कि उसके मुख से बोल तक नहीं निकलता ; तब श्रीरामचन्द्र जी ने उसे अनेक प्रकार से समझाया । उस समय के स्नेह का वर्णन नहीं हो सकता । तब सीता जी ने सास के चरणों को छुआ, और कहा—हे माता ! सुनिये, मैं बड़ी अभागिनी हूं । आपकी सेवा करने का समय जब आया, तब मुझे ईश्वर ने वन दिया, और मेरे मनोरथ सफल न किये । दुःख छोड़ दो, पर स्नेह मत त्यागना । क्योंकि इसमें मेरा कुछ भी दोष नहीं है-यह तो कर्म की कठिन गति है । जानकी जी की बातों को सुन कौशल्या जैसी विकल हुईं—उसका वर्णन नहीं हो सकता । कौशल्या ने बारम्बार छाती से लगा सीता जी को शिक्षा दी और आशीर्वाद दिये । कौशल्या ने कहा—जब तक गङ्गा और यमुना में जल रहे तब तक तेरा सुहाग अचल हो ।

दो०—सीतहि सासु अशीश सिष, दीन्ह अनेक प्रकार ।
चली नाइ पद पद्म सिर, अति हित बारहिं बार ॥

सास ने सीता को अनेक प्रकार के आशीर्वाद दिये और शिक्षा दी, तब सीता जी अत्यन्त स्नेह से बार बार उनके चरणकमलों को प्रणाम कर चलीं ।

समाचार जब लक्ष्मण पाये । व्याकुल बिलखि बदन उठि धाये ॥
कम्प पुलकि तनु नयन सनीरा । गहे चरण अति प्रेम अधीरा ॥

कहि न सकत कछु चितवन ठाढ़े । मीन दीन जनु जलतें काढ़े ॥
सोच हृदय विधि का होनहारा । सब सुख सुकृत सिरान हमारा ॥
मो कहँ कहा कहब रघुनाथा । रखिहैं भवन कि लेहैं साथा ॥
राम विलोकि बन्धु करजोरे । देह गेह सबसन तृण तोरे ॥
बोले वचन राम नयनागर । शील सनेह सरल सुखसागर ॥
तात प्रेमवश जनि कदराहू । समुझि हृदय परिणाम उछाहू ॥

यह समाचार जब लक्ष्मण ने सुने, तब वे बहुत विकल हुए और उदास हो रघुनाथ जी के पास गये । उस समय उनका शरीर काँप रहा था और रोंगटे खड़े हो गये थे । नेत्रों में जल भर आया था । उन्होंने अति प्रेम के साथ अधीर हो श्रीराम जी के चरण पकड़ लिये । वे खड़े खड़े राम जी को देखते तो हैं पर उनके मुख से बोल नहीं निकलता । वे उस समय ऐसे दीन जान पड़े जैसे जल से निकाली हुई मछली दीन जान पड़ती है । वे मन ही मन सोच कर कह रहे हैं कि हे ब्रह्मा ! अब क्या होने वाला है । हमारे तो सारे सुकृत और सुख आज ठण्डे पड़ गये । श्रीरामचन्द्र जी जाने मुझसे क्या कहें । मुझे यहीं छोड़ जाँयगे या अपने साथ ले जाँयगे । श्रीरामचन्द्र जी ने भाई को हाथ जोड़े और घर द्वार से तिनके के समान नाता तोड़े हुए देखा । नीतिचतुर शील, स्नेह, सरलता और सुख के सागर श्रीरामचन्द्र जी ने उनसे कहा—हे तात ! घबड़ाओ मत ; बल्कि अन्तिम परिणाम की ओर देख कर उत्साहित हो ।

दो०—मातु पिता गुरु स्वामि सिष, सिर धरि करहि सुभाय ।
लह्यउ लाभ तिन जन्म के, नतरु जन्म जग जाय ॥

जो जन, माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा को अच्छा समझ पालन करते हैं, उनका जन्म लेना सार्थक है, नहीं तो इस संसार में जन्म लेना वृथा है ।

अस जिय जानि सुनहु सिष भाई । करौ मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरत रिपुसूदन नाहीं । राव वृद्ध मम दुख मनमाहीं ॥
मैं बन जाउँ तुमहिं लै साथा । होइहि सब विधि अवध अनाथा ॥

गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परै दुसह दुख भारू॥
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवशि नरक अधिकारी॥
रहहु तात अस नीति विचारी। सुनत लषण भये व्याकुलभारी॥
सियरे बदन सूखि गये कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे॥

ऐसा मन में समझ कर हे भाई! हमारी बात मानों और माता पिता की सेवा करो। घर पर न भरत हैं और न शत्रुघ्न ही हैं। तिस पर महाराज की वृद्धावस्था और उनके मन में मेरा दुःख। यदि मैं तुम्हें अपने साथ वन ले चलूँ तो सब प्रकार से अयोध्या अनाथ हो जायगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार—सब पर कठिन दुःख का बोझ पड़ेगा। अतः तुम अयोध्या में रह कर, सब को राज़ी बाज़ी रखो, नहीं तो हे प्यारे, बड़ा पाप होगा। जिस राजा के राज्य में प्रजा दुःखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक में गिरता है। यह नीति सोच कर हे तात! तुम यहीं रह जावो। श्रीरामचन्द्र जी की इस शिक्षा को सुन लक्ष्मण जी बहुत दुःखी हुए। श्रीराम जी के शीतल वचनों से वे ऐसे कुम्हला गये, जैसे कमल पाला पड़ने से मुर्झा जाता है।

दो०—उतर न आवत प्रेम वश, गहे चरण अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम, तजहु तो कहा बसाइ॥

लक्ष्मण जी प्रेम के वश हो श्रीरामचन्द्र जी को कुछ भी उत्तर न दे सके और विकल हो उन्होंने उनके चरण पकड़ लिये और बोले—आप स्वामी हैं और मैं आपका दास हूं। यदि आप मुझे छोड़ देंगे, तो मेरा क्या बस है?

दीन्ह मोहिं सिष नीक गुसाँई। अगम लागि आपनि कदराई॥
नरवर धीर-धर्म-धुर-धारी। निगम नीति के ते अधिकारी॥
मैं शिशु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मन्दर मेरु कि लेइ मराला॥
गुरु पितु मातु न जानों काहू। कहौं स्वभाव नाथ पतियाहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निज गाई॥
मोरे सबै एक तुम स्वामी। दीन बन्धु उर अन्तरयामी॥

धर्मनीति उपदेशिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम वचन चरणरत होई। कृपासिन्धु परिहरिय कि सोई॥

हे नाथ! आपने मुझे भली शिक्षा दी—परन्तु अपनी कदराई से मुझे वह कठिन जान पड़ती है। जो श्रेष्ठ मनुष्य धैर्य और धर्म के भार को धारण करने वाले हैं—वे ही वेद और नीति के अधिकारी हैं। हे स्वामी! मैं तो आपके स्नेह से पला हुआ बालक हूँ। (अर्थात् इस भार को मैं नहीं उठा सकता) क्योंकि कहीं हंस भी मन्दराचल के बोझ को उठा सकता? न तो मैं गुरु को जानता हूं न माता पिता को जानता हूं—मैं ठीक ठीक कहता हूँ, आप सत्य जानिये। संसार में जहाँ तक प्रेम और नाते हैं और शास्त्रों ने अपनी प्रीति और विश्वास बतलाया है, हे नाथ! वे सब एक आप ही के साथ और आप ही के ऊपर हैं. आप दीन-बन्धु हैं और घट घट के जानने वाले हैं। (अर्थात् यदि मैंने यह बात बनावटी कहीं होगी, तो आप जान लेंगे) जिसके यश, वैभव और सद्गति प्रिय हों—उसे ऐसी धर्मनीति उपदेश करनी चाहिये, किन्तु हे कृपासिन्धु! जो मन, वच क्रम आपके चरण में प्रीति रखता है, उसे छोड़ना क्या उचित है?

दो०—करुणासिन्धु सुबन्धु के, सुनि मृदु वचन विनीत।
समुझाये उर लाय प्रभु, जानि सनेह सभीत॥

दया के समुद्र श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण जी के कोमल वचन सुन कर और उन्हें अपने में अत्यन्त अनुरक्त और (त्यागने के कारण) डरा हुआ जान—हृदय से लगा कर समझाने लगे।

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु वेगि चलहु वन भाई॥
मुदित भये सुनि रघुवर बानी। भयउ लाभ बड़ मिटी गलानी॥
हर्षित हृदय मातु पहँ आये। मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाये॥
जाइ जननिपद नायउ माथा। मन रघुनन्दन जानकि साथा॥
पूछेउ मातु मलिन मन देखी। लषण कहेउ सब कथा बिशेखी॥
गई सहमि सुनि वचन कठोरा। मृगी देखि जनु दव चहुँओरा॥

लषण लखेउ भा अनरथ आजू। यह सनेह बश करब अकाजू॥
माँगत बिदा समय सकुचाहीं। जान संग बिधि कहहिं कि नाहीं॥

हे भाई! जा कर तुम अपनी जननी से वन जाने की आज्ञा लेकर तुरन्त लौट आओ और वन को चलो। श्रीरामचन्द्र जी के इन वचनों को सुन लक्ष्मण जी प्रसन्न हुए—मानों बड़ी हानि मिटी और बड़ा लाभ हुआ। तब वे प्रसन्न होते हुए अपनी जननी सुमित्रा के पास गये—मानों अन्धे को फिर आँखें मिली हों—माता के समीप जा कर उनको प्रणाम किया, पर उनका मन, उस समय सीता श्रीराम जी के पास था। लक्ष्मण जी का मलिन मुखमण्डल देख, माता ने उनसे इसका कारण पूँछा। तब उत्तर में लक्ष्मण जी ने सारा वृत्तान्त कहा। जिस प्रकार वन में चारों ओर आग लगी देख हिरनी सहम जाती है, वैसे ही सुमित्रा जी भी उस दारुण घटना का हाल सुन सहम गयी। तब लक्ष्मण जी चिन्तित हो सोचने लगे—यह तो अब बड़ा अनर्थ होना चाहता है। माता स्नेहवश काम बिगाड़ेगी।

दो०—समुझि सुमित्रा राम सिय, रूप सुशील स्वभाव।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिर, पापिनि कीन्ह कुदाव॥

सुमित्रा जी ने श्रीरामचन्द्र जी और जानकी जी का रूप और सुन्दर शील समझ कर, और महाराज का स्नेह देख अपना सिर धुना और कहा—पापिनी कैकेयी ने बड़ा बुरा दाँव लगाया।

धीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदुबानी॥
तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहाँ दिवस जहँ भानु प्रकासू॥
जोपै राम साय वन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥
गुरु पितु मातु बन्धु सुर साईं। सेइय सकल प्राण की नाईं॥
राम प्राण प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सब ही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँते। मानिय सकल राम के नाते॥
अस जिय जानि सँग वन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

सुमित्रा जी ने कुअवसर जान धीरज धारण कर, सहज सुहृद शब्दों में कहा–हे बेटा ! जानकी जी तो तेरी माता हैं और सब प्रकार से स्नेह करने वाले श्रीराम जी तेरे पिता हैं । अयोध्या भी वहाँ हैं जहाँ रघुनाथ जी रहेंगे--क्योंकि दिन तो दिवाकर ही के साथ रहता है । यदि सीताराम वन जाते हैं, तो तुम अयोध्या में रह कर क्या करोगे-यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं । गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी की प्राणों की तरह सेवा करनी चाहिये । श्रीरामचन्द्र जी सब के प्राणों से प्यारे हैं और जीवों के जीवन हैं और अकारण सब के हितैषी मित्र हैं । जितने अपने पूज्य परम प्रिय हैं–वे सब श्रीराम जी के सम्बन्ध से मान्य हैं । हे बेटा ! यह समझ कर तुम श्रीरामचन्द्र जी के साथ जाओ और अपने जन्म को सफल करो ।

दो०—भूरि भाग भाजन भयउ, मोहिं समेत बलि जाउँ ।
जो तुम्हरे मन छाँड़ि छल, कीन्ह राम पद ठाउँ ॥

हे बेटा ! मैं तुम्हारी बलैया लूँ । तुम बड़े भाग्यवान हो कि कपट त्याग तुम्हारा मन श्रीरामचन्द्र जी के चरणकमलों में जा लगा ।

पुत्रवती युवती जग सोई । रघुवर-भक्त जासु सुत होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बियानी । राम विमुख सुत ते हित हानी ॥
तुम्हरे भाग्य राम वन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड़ फल येहू । राम-सीय-पद सहज सनेहू ॥
राग रोष ईर्षा मद मोहू । जनि सपनेहु इनके वश होहू ॥
सकल प्रकार विकार विहाई । मन क्रम वचन करेहु सेवकाई ॥
तुम कहँ वन सब भाँति सुपासू । सँग पितु मातु राम सियजासू ॥
जेहि न राम वन लहहिं कलेशू । सुत सोइ करेहु यहै उपदेशू ॥

इस संसार में वही स्त्री पुत्रवती है, जिसका पुत्र रघुवरभक्त है । नहीं तो श्रीराम की भक्ति से रहित पुत्र जनने से बाँझ स्त्री भली है, क्योंकि श्रीरामविमुख पुत्र से कल्याण की बड़ी हानि होती है । हे बेटा ! तुम्हारे ही भाग्य से श्रीराम

जी वन जा रहे हैं-इसका दूसरा कोई कारण नहीं है। सारे पुण्यों का बड़ा फल है कि सीताराम के चरणकमलों में स्वाभाविक प्रीति उत्पन्न हो। अनुराग, क्रोध ईर्ष्या, मद और मोह—इनके वश में कभी स्वप्न में भी मत होना सब प्रकार के मानसिक विकारों को छोड़ कर, मनसा वाचा कर्मणा सीताराम की सेवा करना। तुमको वन में हर प्रकार की सुविधा रहेगी-क्योंकि तुम्हारे साथ तो तुम्हारे माता पिता सीताराम हैं ही। हे पुत्र! मेरा तुम्हें यही उपदेश है कि जैसे बने वन में श्रीराम जी और सीता जी को किसी प्रकार का क्लेश न होने पावे।

छं०—उपदेश यहि जेहि तात कानन राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति वन बिसरावहीं॥
तुलसी सुतहिं सिष देइ आयसु देइ पुनि आशिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर-पद नित नित नई॥

हे बेटा! मेरा तुम्हें यही उपदेश है कि सदा इस बात का ध्यान रखना कि श्रीरामचन्द्र जी और सीता जी को सदा सुख मिलता रहे और ऐसा करना जिससे उन्हें वन में अपने पिता माता, प्यारे कुटुम्बी और नगर के सुखों की याद न आवे। तुलसीदास जी कहते हैं कि सुमित्रा जी ने लक्ष्मण जी को इस प्रकार शिक्षा दे, उन्हें आशीर्वाद दिया कि सीताराम के चरणों में तुम्हारी नित्य नयी प्रीति हो।

सो०—मातु चरण सिर नाइ, चले तुरत शङ्कित हिये।
बागुर विषम तुराइ, मनहुँ भाग मृग भाग वश॥

माता के चरणों को प्रणाम कर, मन ही मन शङ्का करते लक्ष्मण वहाँ से चले मानों भाग्यवश कोई मृग जाल को तोड़ भाग रहा हो।

गये लषण जहँ जानकिनाथा। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथा॥
बन्दि राम-सिय-चरण सुहाये। चले संग नृप मन्दिर आये॥
कहहिं परस्पर पुर-नर-नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी॥
तनु कृश मन दुख बदन मलीने। विकल मनहुँ माखी मधु छीने॥
कर मीजहिं सिर धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख विहग अकुलाहीं॥

भइ वड़ि भीर भूप दरबारा। बरणि न जाइ विषाद अपारा॥
सचिव उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय वचन राम पगु धारे॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी। व्याकुल भये भूमिपति भारी॥

लक्ष्मण जी वहाँ गये जहाँ जानकीनाथ श्रीरामचन्द्र जी थे और अपने प्यारे साथी को पा कर बहुत प्रसन्न हुए। फिर सीताराम को प्रणाम कर, उनके साथ महाराज दशरथ के भवन में गये। उनको जाते देख नगरनिवासी नरनारी कहने लगे कि ब्रह्मा ने बनी बनायी बात बिगाड़ दी। उन सब के शरीर दुबले हो रहे हैं उनके मनों में दुःख व्याप्त है और उनके मुखों पर उदासी छायी हुई है। वे सब ऐसे विकल हैं जैसे मधु के छिन जाने पर मधुमक्खियाँ विकल हुआ करती हैं। वे सब हाथ मलते और सिर धुन कर उसी प्रकार विकल हो रहे हैं, जैसे बिना परों के पक्षी विकल हुआ करते हैं। उस समय महाराज के सभाभवन (दरबार) में बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई, उस समय का दुःख वर्णन नहीं किया जा सकता। मन्त्री ने महाराज को उठा कर बैठाया और मीठे वचनों से उन्हें जनाया कि श्रीरामचन्द्र जी आये हैं। सीता सहित दोनों पुत्रों को देख महाराज दशरथ बहुत व्याकुल हुए।

दो०—सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह वश, राउ लिये उर लाइ॥

महाराज दशरथ सीता जी सहित दोनों राजकुमारों को देख बहुत दुःखी हुए, और स्नेह से अधीर हो बार बार उन्हें हृदय से लगाने लगे।

सकैं न बोलि विकल नरनाहू। शोकजनित उर दारुण दाहू॥
नाइ शीश पद अति अनुरागा। उठि रघुनाथ बिदा तब माँगा॥
पितु अशीश आयसु मोहिं दीजै। हर्ष समय विस्मय कत कीजै॥
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू। यश जग जाइ होइ अपवादू॥
सुनि सनेह वश उठि नरनाहू। बैठारे रघुपति गहि बाहू॥
सुनहु तात तुम कहँ मुनि कहहीं। राम चराचरनायक अहहीं॥

शुभ अरु अशुभ कर्म अनुहारी। ईश देइ फल हृदय विचारी॥
करै जो कर्म पाव फल सोइ। निगम नीति अस कह सब कोई॥

महाराज से विकलता के कारण बोला नहीं जाता क्योंकि उनका शरीर शोक से शिथिल हैं और छाती में दाह है। तब श्रीरामचन्द्र जी ने उठ कर बड़ी श्रद्धा से महाराज के चरणों में सीस नवाया और वन जाने की आज्ञा माँगी। हे पितृदेव! मुझे आशीर्वाद देकर जाने की आज्ञा दीजिये, और इस आनन्द के समय, विषाद न कीजिये। हे तात! प्यारों पर स्नेह करना कोरा प्रमाद है—क्योंकि ऐसा करने से संसार में यश जाता रहता है और बदनामी होने लगती है। यह सुन और स्नेह के वशवर्ती हो महाराज उठे और श्रीरामचन्द्र जी का हाथ पकड़ उन्हें बिठाया। फिर कहने लगे—हे तात! सुनो! मुनि कहा करते हैं कि तुम चराचर के स्वामी हो। ईश्वर समझ बूझ कर जीवों को उनके कर्म्मानुसार अच्छे बुरे फल दिया करता है। क्या वेद और क्या नीति—सब यही कहते हैं कि जो जैसा कर्म करता है वह वैसा ही फल पाता है।

दो०—और करै अपराध कोइ, और पाव फल भोग।
अति विचित्र भगवन्त गति, को जग जानै योग॥

परन्तु अपराध तो कोई करता है और फल कोई पाता है—ईश्वर की यह गति बड़ी विचित्र है—संसार में इसका मर्म जानने योग्य कौन है?

राउ राम राखन हित लागी। बहुत उपाय कीन्ह छल त्यागी॥
लखेउ राम रुख रहत न जाने। धर्म-धुरन्धर धीर सयाने॥
तब नृप सीय लाइ उर लीनी। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही॥
कहि वन के दुख दुसह सुनाये। सासु ससुर पितु सुख समुझाये॥
सिय मन राम चरण अनुरागा। घर न सुगम वन अगम न लागा॥
औरौ सबहि सीय समुझाई। कहि कहि विपिन विपति अधिकाई॥
सचिवनारि गुरुनारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदुबानी॥
तुम कहँ तौ न दीन्ह वनवासू। करहु जो कहहिं ससुर गुरु सासू॥

महाराज दशरथ ने कपट छोड़ कर श्रीरामचन्द्र जी को रखने के लिये अनेक यत्न किये–किन्तु जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि अब ये नहीं रहेंगे-क्योंकि यह बड़े चतुर और धर्मधुरन्धर हैं तब महाराज ने सीता जी को अपने हृदय से लगा लिया और बड़े स्नेह के साथ शिक्षा दी। फिर वन की कठिनाइयों को कह कर सास और ससुर तथा पिता के घर के सुख कहे। किन्तु सीता जी के मन में तो श्रीरामचन्द्र जी के चरणकमलों में पूर्ण अनुराग था–अत: वे उनके मन को न तो वन के डरों से डरा सकें और न घर के सुखों से उन्हें लुभा सकें। वहाँ उपस्थित अन्यजनों ने भी सीता जी को वन की कठिनाइयाँ कह कर बहुत कुछ समझाया। मन्त्री तथा गुरु की चतुर स्त्रियों ने मीठे शब्दों में सीता जी से कहा–तुमको तो वनवास नहीं दिया–अतः तुम सास ससुर और गुरु जो कहते हैं–सो करो।

दो०—सिष शीतल हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सुहानि।
शरद-चन्द्र-चाँदनि लगत, जनु चकई अकुलानि॥

यह शीतल, प्यारी, कोमल और मधुर सीख सीता जी को अच्छी न लगी– मानों शरद् को शीतल चाँदनी को देख चकई विकल हुई हो।

सीय सकुच वश उतर न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥
मुनि पट भूषण भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदुबानी॥
नृपहिं प्राणप्रिय तुम रघुबीरा। शील सनेह न छाँड़हि भीरा॥
सुकृत सुयश परलोक नसाऊ। तुमहिं जान वन कहहिं न राऊ॥
अस विचारि सोइ करौ जो भावा। रामजननि सिषसुनिसुखपावा॥
भूपहिं वचन बाण सम लागे। करहिं न प्राण पयान अभागे॥
लोग विकल मुर्छित नरनाहू। काह करिय कछु सूझ न काहू॥
राम तुरत मुनिवेप बनाई। चले जनक जननी सिर नाई॥

सङ्कोचवश सीता जी ने कुछ भी उत्तर न दिया यह देख कैकेयी तमक उठी और मुनियों के पहनने के कपड़े तथा बरतन सामने रख मधुर शब्द बोली–हे श्रीरामचन्द्र जी! तुम महाराज को प्राणों से भी अधिक प्यारे हो, इसलिये महाराज तो तुम्हें नहीं छोड़ेंगे। इनका पुण्य, सुकीर्ति और परलोक भले ही बिगड़े; परन्तु ये

तुमसे वन जाने को न कहेंगे। यह सोच कर तुम्हें जो अच्छा लगे—वह करो। यह सुन श्रीरामचन्द्र जी तो प्रसन्न हुए, किन्तु कैकेयी की ये बातें महाराज को तीर के समान जान पड़ीं। वे कहने लगे—यह अभागे प्राण भी तो नहीं निकलते। उस समय सब लोग शोकाकुल और महाराज अचेत हो गये—उस समय किसी को यह न सूझा कि क्या किया जाय? इतने में श्रीरामचन्द्र जी मुनियों का वेष धारण कर और माता पिता को प्रणाम कर, तुरन्त चल खड़े हुए।

दो०—सजि वन-साज-समाज सब, बनिता बन्धु समेत।
वन्दि विप्र-गुरु-चरण प्रभु, चले करि सबहिं अचेत॥

श्रीरामचन्द्र जी वन जाने की सारी तैयारी करके और स्त्री तथा छोटे भाई को साथ ले और ब्राह्मण तथा गुरु के चरणों को प्रणाम कर तथा सब को अचेत कर चल दिये।

निकरि वसिष्ठ द्वार भे ठाढ़े। देखे लोग विरह दव डाढ़े॥
कहि प्रिय वचन सबहि समुझाये। विप्र वृन्द रघुवीर बुलाये॥
गुरु सन कहि बर्षाशन दीन्हे। आदर दान विनयवश कीन्हे॥
याचक दान मान सन्तोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥
दासी दास बुलाइ बहोरी। गुरुहिं सौंपि बोले कर जोरी॥
सब कर सार सँभार गुसाईं। करब जनक जननी की नाईं॥
बारहिं बार जोरि युग पानी। कहत राम सब सन मृदु बानी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि ते रहैं भुआल सुखारी॥

राजभवन से निकल कर वे गुरु वसिष्ठ जी के द्वार पर खड़े हुए। तब इन्होंने देखा कि लोग विरहाग्नि में जल रहे हैं। श्रीरामचन्द्र जी ने मधुर वचन से उन सब को शान्त किया और फिर ब्राह्मणों को बुलाया। गुरु से कह कह उन सब को चौदह वर्ष के लिये भोजन दिये और आदर तथा दान से उनको अपने वश में किया। याचकों को दान मान से, तथा मित्रों को सत्यप्रेम से सन्तुष्ट किया। फिर दास तथा दासियों को बुला कर, और उन्हें गुरु को सौंप कर तथा हाथ जोड़ कर कहने लगे—इन सब को सम्हाल आप उसी प्रकार करना जिस प्रकार माता पिता अपने पुत्रों की किया करते हैं। श्रीरामचन्द्र जी बार बार हाथ

जोड़ मधुर वचन सब से कहने लगे कि मैं अपना हितैषी उसीको समझूँगा, जिससे मेरे पिता सुख पावेंगे।

दो०—मातु सकल मोरे विरह, जेहि न होहिं दुख दीन।
सो उपाय तुम करब सब, पुरजन परम प्रवीन॥

जिससे मेरी सब माताएँ मेरे वियोग में दुःखी न हों—तुम सब वही उपाय करना। क्योंकि तुम सब बड़े चतुर हो।

इहि विधि राम सबहिं समुझावा। गुरु-पद-पद्म हरषि सिर नावा॥
गणपति गौरि गिरीश मनाई। चले अशीश पाइ रघुराई॥
राम चलत अति भयो विषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥
कुशकुन लङ्क अवध अति शोकू। हर्ष-विषाद-विवश सुरलोकू॥
गै मूर्च्छा तब भूपति जागे। बोलि सुमन्त्र कहन अस लागे॥
राम चले वन प्राण न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तनु माहीं॥
इहि ते कवन व्यथा बलवाना। जो दुख पाइ तजहिं तनु प्राना॥
पुनि धरि धीर कहहिं नरनाहू। लै रथ संग सखा तुम जाहू॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी ने सब को समझा और गुरु को प्रणाम किया। फिर आशीर्वाद पा कर और गौरी गणेश तथा महादेव जी को मना-श्रीरामचन्द्र जी चल दिये। श्रीराम जी के बिदा होने पर लोगों को बड़ा दुःख हुआ, नगरी का आर्त्तनाद सुना नहीं जाता। अयोध्या में तो शोक छाया और लङ्का में बुरे शकुन होने लगे। स्वर्ग में सुख और दुःख-दोनों ही का देवताओं ने अनुभव किया। इतने में महाराज सचेत हुए और सुमन्त्र को बुला कर कहने लगे—"अरे श्रीराम जी तो वन को चल दिये, पर यह प्राण नहीं निकले—नहीं कह सकते अब यह किस सुख के लिये शरीर में बने हुए हैं? इससे बढ़ कर और कौन सी विथा अधिक बलवान् होगी। फिर धीरज धर महाराज ने सुमन्त्र से कहा- हे मित्र! तुम रथ ले कर श्रीराम जी के साथ जाओ।

दो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनक सुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ दिखराइ वन, फिरहु गये दिन चारि॥

सुन्दर सुकुमार दोनों भाइयों को और सुकुमारी जानकी को रथ पर बिठा और वन दिखला, चार दिन बाद लौट आना।

जो नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसन्ध दृढ़व्रत रघुराई॥
तौ तुम विनय करेहु करजोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेश किशोरी॥
जब सिय कानन देखि डराई। कहेउ मोरि सिष अवसर पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सन्देसू। पुत्रि फिरिय वन बहुत कलेसू॥
पितु गृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेउ जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
यहि विधि करेहु उपायकदम्बा। फिरइ तो होइ प्राण अवलम्बा॥
नाहिंत मोर मरण परिणामा। कछु न बसाइ भयो विधि वामा॥
अस कहि मूर्छित परेउ महि राऊ। राम लषण सिय आनि दिखाऊ॥

यदि वे दोनों धैर्यवान् भाई न लौटे, क्योंकि श्रीरामचन्द्र सत्य के समुद्र और दृढ़ प्रतिज्ञ हैं, तो तुम हाथ जोड़ और प्रार्थना करना कि हे नाथ! कम से कम सीता जी को तो लौटा ही दो। जब सीता जी वन देख डरें तब अवसर देख मेरी सिखलाई बात कहना कि सास और ससुर ने यह सन्देसा कहला भेजा है, कि हे पुत्री! लौट आओ-क्योंकि वन में बड़े बड़े क्लेश हैं। कभी ससुरे में और कभी मयके में-जब जहाँ तुम्हारा मन हो रहना। इस प्रकार समझाना। यदि वह लौट आयी तो प्राणों को सहारा मिल जायगा। नहीं तो अन्त में मुझे मरना तो है ही। क्योंकि जब भाग्य प्रतिकूल होता है तब कुछ नहीं बसाती। यह कह महाराज दशरथ अचेत हो भूमि पर गिर पड़े और बोले कि श्रीराम लक्ष्मण और सीता को ला कर दिखाओ।

दो०—पाय रजायसु नाइ सिर, रथ अति बेगि बनाइ।
गयउ जहाँ बाहर नगर, सीय सहित दोउ भाइ॥

सुमन्त्र इस आज्ञा को पा और महाराज को प्रणाम कर, बहुत जल्दी रथ ले नगर के बाहिर पहुँचे। जहाँ सीता सहित दोनों भाई थे।

तब सुमन्त्र नृपवचन सुनाये। करि विनती रथ राम चढ़ाये॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदय अवधहिं सिर नाई॥

चले राम लखि अवध अनाथा। बिकल लोग लागे सब साथा॥
कृपासिन्धु बहुविधि समुझावहिं। फिरहिंप्रेमवशपुनिफिरिआवहिं॥
लागत अवध भयानक भारी। मानहुँ कालराति अँधियारी॥
घोर जन्तु सम पुर-नर-नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥
घर मशान पुर परिजन भूता। सुत हित मीत मनहुँ यमदूता॥
बागन विटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥

तब सुमन्त्र ने उनको महाराज का सन्देसा सुनाया और बड़ी अनुनय विनय कर श्रीराम जी को रथ पर चढ़ाया। भाई तथा जानकी सहित रथ पर चढ़ कर, मन ही मन अयोध्या को प्रणाम किया और आगे चले। श्रीराम के जाते ही अयोध्या को अनाथ देख अयोध्यावासी दुःखी हो श्रीराम जी के साथ हो लिये। कृपासिन्धु श्रीराम जी अनेक प्रकार से समझा कर उन्हें लौटाते हैं और वे लौट भी जाते हैं, पर प्रेमवश हो फिर चले आते हैं। अयोध्या पुरी बड़ी डरावनी लगती है, मानों उसके ऊपर कालरात्रि की छाया पड़ी हुई है। नगरनिवासी नरनारी घोर जन्तुओं के समान हो गये हैं और एक दूसरे को देख कर डरते हैं। घर तो श्मशान तुल्य है और कुटुम्बी भूत के समान हैं। पुत्र, हितू और मित्र मानों यमदूत हैं। उद्यानों के वृक्ष और लताएँ भी कुम्हिला गयी हैं और नदियों तथा सरोवरों को ओर देखा भी नहीं जाता।

दो०—हय गय कोटिक केलिमृग, पुरपशु चातक मोर।
पिक रथाङ्ग शुक सारिका, सारस हँस चकोर॥

करोड़ों हाथी, घोड़े और पालतू हिरन, गौ, भैंस, आदि पपीहा, मोर, कोयल, चकवा, चकवी, सुग्गा, मैना, सारस, हंस और चकोर—सब ही तो।

राम वियोग विकल सब ठाढ़े। जहँ तहँमनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥
नगर सफल वन गह्वर भारी। खग मृग विपुल सकलनरनारी॥
विधि कैकयी किरातिनि कीनी। जेहिंदव दुसह दसहुँ दिशि दीनी॥
सहि न सके रघुवर-बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी॥

सबहिं विचार कीन्ह मनमाहीं। राम लषण सिय बिनु सुख नाहीं॥
जहाँ राम तहँ सबुइ साजू। बिनु रघुबीर अवध केहि काजू॥
चले साथ अस मन्त्र दृढ़ाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई॥
राम चरण-पंकज प्रिय जिनहीं। विषय भोगवश करै कि तिनहीं॥

लोग श्रीरामचन्द्र जी के वियोग में दुःखी खड़े हैं। (और ऐसे अचल खड़े हैं) मानों चित्रकार के बनाये चित्र हों। सारा नगर, बड़े घने वन के समान हो रहा है और सब नरनारी बहुत से पशु पक्षियों के समान हैं। ब्रह्मा ने कैकेयी को भीलनी किया है, जिसने दसों दिशाओं में दावानल प्रज्वलित कर दिया है। सब लोग श्रीरामचन्द्र जी के वियोगरूपी अग्नि को नहीं सह सके और दुःखी हो नगर छोड़ भाग चले। सब लोगों ने यह विचारा कि श्रीराम सीता और लक्ष्मण के बिना सुख नहीं है। जहाँ श्रीरामचन्द्र हैं, वहाँ ही हमारा सारा समाज है। बिना श्रीराम जी के अयोध्या में हमारा काम ही क्या है। इस प्रकार परामर्श कर और देवदुर्लभ सुख देने वाले घरों को छोड़ वे चले। जिनको श्रीराम जी के चरणों में प्रीति है, उन्हें विषयभोग कभी अपने वश में नहीं कर सकते।

दो०—बालक वृद्ध बिहाइ गृह, लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ॥

घरों को छोड़, क्या बालक और क्या वृद्ध—सब लोग रघुनाथ जी के पीछे हो लिये और पहले दिन तमसा नदी के तट पर जा कर टिके।

रघुपति प्रजा प्रेम वश देखी। सदय हृदय दुख भयउ विशेखी॥
करुणामय रघुनाथ गुसाईं। वेगि पाइअहि पीर पराईं॥
कहि सप्रेम मृदु वचन सुहाये। बहु विधि राम लोग समुझाये॥
किये धर्म उपदेश घनेरे। लोग प्रेमवश फिरहिं न फेरे॥
शील सनेह छाँड़ि नहिं जाई। असमञ्जस वश भे रघुराई॥
लोग शोक श्रमवश गये सोई। कछुक देवमाया मति भोई॥

जबहिं यामयुग यामिनि बीती। राम सचिव मन कहेउ सप्रीती॥
खोज मारि रथ हाँकहु ताता। आन उपाय बनिहिं नहिं बाता॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने प्रजा को इस प्रकार प्रेमवश देखा; तब दयालु बड़े दुःखी हुए। भगवान् श्रीराम करुणामय हैं. इसीसे वे पराये दुःख को तुरन्त मान लेते हैं। श्रीरामचन्द्र जी ने स्नेह सहित मधुर बातें कह कर लोगों को समझाया। साथ ही अनेक धर्मोपदेश भी दिये—किन्तु प्रेम के वश हो लोग अयोध्या न लौटे। तब तो शील और स्नेह जिनसे नहीं छोड़ा जाता—ऐसे रघुनाथ जी बड़े असमञ्जस में पड़े। कुछ लोग तो शोकाकुल और श्रमित होने के कारण सो गये, और कुछ लोगों की मति दैव की माया ने फेर दी। जब आधी रात हुई तब श्रीराम जी ने बड़ी प्रीति के साथ सुमन्त्र से कहा। तुम हमारा रथ इस प्रकार हाँको जिससे इन लोगों को हमारे रथ का पता न चल सके—क्योंकि और कोई उपाय ठीक नहीं होगा।

दो०—राम लषण सिय यान चढ़ि, शम्भु चरण सिर नाइ।
सचिव चलायउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ॥

महादेव जी को प्रणाम कर, श्रीराम, सीता और लक्ष्मण, रथ पर सवार हुए और रथ के पहियों के निशानों को छिपाते हुए, सुमन्त्र ने रथ आगे बढ़ाया।

जागे सकल लोग भये भोरू। गये रघुवीर भयो अति शोरू॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। रामराम कहि चहुँ दिशि धावहिं॥
मनहुँ वारिनिधि बूड जहाजू। भयउ विकल बड़ बणिकसमाजू॥
एकहि एक देहिं उपदेशू। तजेउ राम हम जानि कलेशू॥
निन्दहिं आपु सराहहिं मीना। धृग जीवन रघुवीर-विहीना॥
जो पै प्रिय वियोग विधि कीन्हा। तौ कस मरण न माँगे दीन्हा॥
इहि विधि करत प्रलापकलापा। आये अवध भरे परितापा॥
विषम वियोग न जाइ बखाना। अवधि आस राखहिं सब प्राना॥

उधर प्रातःकाल होते ही सब लोग जागे और जागते ही उनमें इस बात का बड़ा हल्ला हुआ कि श्रीरामचन्द्र जी चल दिये। रथ का पता पाने के लिये वे चारों ओर दौड़ते हैं, पर पता नहीं चलता। वे लोग उसी प्रकार विकल हुए जैसे बनिये जहाज़ डूबने पर हुआ करते हैं। तब वे लोग आपस में एक दूसरे को यह उपदेश देने लगे कि हमको अपने साथ रखने में दुःख समझ, श्रीराम जी ने हमें त्याग दिया है। वे लोग अपने को तो (इसलिये) धिक्कारते हैं कि (वे श्रीराम जी के बिना किस प्रकार अब तक जीवित हैं) और मछलियों की (इसलिये) प्रशंसा करते हैं (कि वे जल बिना एक क्षण भी नहीं जीतीं) इस प्रकार रोते पीटते और पछताते वे अयोध्या पहुँचे। इस विषम वियोग का वर्णन नहीं हो सकता। सब लोगों ने इस आशा के भरोसे कि चौदह वर्ष बाद श्रीराम फिर आवेंगे-जीना स्वीकार किया।

दो०—राम दरश हित नेम व्रत, लगे करन नरनारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन विहीन तमारि॥

नगरवासी नरनारी श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन करने के लिये अनेक व्रत और नेम साधने लगे। वे लोग उसी प्रकार दीन दीख पड़ते हैं जिस प्रकार चकवा चकवी सूर्य के बिना दुःखी हो जाते हैं।

सीता सचिव सहित दोउ भाई। शृङ्गबेर पुर पहुँचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दण्डवत हर्ष विशेषी॥
लषणसचिवसिय कीन्ह प्रणामा। सबहिं सहित सुख पायउ रामा॥
गङ्ग सकल मुदमङ्गल मूला। सब सुखकरनिहरनि सब शूला॥
कहि कहि कोटिक कथा प्रसङ्गा। राम बिलोकत गङ्ग तरङ्गा॥
सचिवहिंअनुजहिं प्रियहिं सुनाई। विवुध नदी महिमा अधिकाई॥
मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। शुचिजल पियतमुदितमनभयऊ॥
सुमिरत जाहि मिटहिं भव-भारू। तेहि श्रम यह लौकिकव्यवहारू॥

सीता और सचिव सहित—दोनों भाई शृङ्गबेरपुर पहुँचे। वहाँ गङ्गा जी को देख श्रीरामचन्द्रजी रथ छोड़ उतर पड़े और गङ्गा जी को बड़े आदर के साथ प्रणाम

किया। तब लक्ष्मण, सीता और मन्त्री ने भी गङ्गा जी को प्रणाम किया और सबके सहित श्रीरामचन्द्र जी प्रसन्न हुए। क्योंकि गङ्गा जी सब आनन्दों की जड़ हैं और सब सुखों की देने वाली तथा सब दुःखों की नाश करने वाली हैं। अनेक कथाओं को कह कर, श्रीराम जी गङ्गा की तरङ्गों को देखने लगे। फिर गङ्गा जी की विशेष महिमा मन्त्री, लक्ष्मण और सीता को सुनाई। फिर गङ्गा जी में स्नान करनेसे उनकी सारी थकावट दूर हुई और जल पीने से मन प्रसन्न हुआ। जिसके स्मरण करने ही से संसार के सारे भार दूर हो जाते हैं —उसका थकना—लौकिक व्यवहार समझना चाहिये।

दो०—शुद्ध सच्चिदानन्दमय, राम भानु-कुल-केतु।
चरित करत नर अनुहरत, संसृति सागर सेतु॥

श्रीरामचन्द्र जी शुद्ध सच्चिदानन्द और सूर्यवंश के ध्वजारूप हैं और नर-चरित इसलिये कर रहे हैं जिससे उनके चरित, संसाररूपी सागर के पार जाने के लिये पुल का काम दें।

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रिय बन्धु बुलाई॥
लै फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चल्यो हिय हर्ष अपारा॥
करि दण्डवत भेंट धरि आगे। प्रभुहिं विलोकत अति अनुरागे॥
सहज सनेह विवश रघुराई। पूछेउ कुशल निकट बैठाई॥
नाथ कुशल पदपङ्कज देखे। भयउ भाग्य भाजन जन लेखे॥
देव धरणि धन धाम तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा॥
कृपा करिय पुर धारिय पाऊ। थापिय जन सब लोग सिहाऊ॥
कहेउ सत्य सब सखा सुजाना। मोहिं दीन्ह पितु आयसु आना॥

जब श्रीरामचन्द्र जी के आने का संवाद गुह नामक मल्लाह ने सुना, तब प्रसन्न हो उसने अपने सब कुटुम्बियों को बुलाया और श्रीराम जी की भेंट के लिये वह बहुत से फल और कन्दमूल फल ले, प्रसन्न होता—श्रीराम जी से मिलने को चला। श्रीराम जी के सामने भेंट रख और प्रणाम कर, बड़े अनुराग के साथ श्रीरामचन्द्र जी को देखने लगा। स्वाभाविक स्नेह के वश हो, श्रीराम जी ने उसे

अपने पास बिठाया और उससे कुशल पूछी। उत्तर में उसने कहा—नाथ ! आपके चरणकमलों के दर्शन से कुशल है और आज मैं मनुष्यों की गिनती में भाग्यवान् हुआ। हे देव ! भूमि, धन और धाम-सब आपके हैं। मैं तो नीच हूँ और कुटुम्ब सहित आपका दास हूँ। कृपाकर बस्ती में पदार्पण कर, मुझे अपना दास बनाइये, जिससे सब लोग मुझे सराहें। इस पर श्रीराम जी ने कहा—हे मित्र ! तुम बड़े चतुर हो और तुम्हारा कहना ठीक है—किन्तु मेरे लिये तो पिता की कुछ और ही आज्ञा है।

दो०—वर्ष चारि दस वास बन, मुनि व्रत वेष अहार।
ग्राम वास नहिं उचित सुनि, गुहहिं भयो दुख भार॥

(अर्थात्) चौदह वर्ष लों वन में वास करना, और मुनियों जैसा व्रत, वेष धारण और, भोजन करना तथा बस्ती में न रहना अनुचित सुन, केवट को बड़ा दुःख हुआ।

राम लषण सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम नगर नर नारी॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठए बन बालक ऐसे॥
एक कहै भूपति भल कीन्हा। लोचनलाभ हमहिं विधि दीन्हा॥
तब निषाद पति उर अनुमाना। तरु सिंशपा मनोहर जाना॥
लै रघुनाथहिं ठाऊ बतावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा॥
पुरजन करि जुहार गृह आये। रघुवर सन्ध्या करन सिधाये॥
गुह सभाँरि साथरो बनाई। कुशकिसलय मृदु परम सुहाई॥
शुचि फलमूल मृदुल मधु जानी। दोना भरि भरि राखेसि आनी॥

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता का रूप देख, वहाँ के नगर के पुरुष स्त्री आपस में कहते हैं—हे सखी ! बतलाओ तो वे माता पिता कैसे होंगे, जिन्होंने अपने ऐसे (सुकुमार और कम उम्र) बालकों को वन में भेजा है। तब उनमें से एक ने कहा—महाराज ने यह काम बहुत अच्छा किया—इससे भाग्य ने हमें इनके दर्शन तो कराये। तब गुह ने मन में अनुमान कर और शीशम के वृक्ष को मनहरन समझ, श्रीरघुनाथ जी को उसके नीचे ठहराया। उस स्थान को श्रीरामचन्द्र

जी ने सब प्रकार से सुहावना बतलाया । उस समय नगरनिवासी तो श्रीराम जी को प्रणाम कर के अपने अपने घरों को लौट गये और श्रीरामचन्द्र जी सन्ध्या करने गये । इतने में गुह ने कोमल कुश और पत्तों की सुन्दर चटाई बनाई । फिर अच्छे स्वादिष्ट फलों को दोनों में भर के ला रखा ।

दो०—सिय सुमंत्र भ्राता सहित, कन्दमूल फल खाइ ।
शयन कीन्ह रघुवंश-मणि, पायँ पलोटत भाइ ॥

श्रीराम जी ने सीता, लक्ष्मण और सुमन्त्र सहित कन्दमूल फल खा कर, शयन किया और लक्ष्मण उनके पैर दबाने लगे ।

उठे लषण प्रभु सोवत जानी । कहि सचिवहिं सोवनमृदुबानी ॥
कछुक दूरि सजि बाण शरासन । जागन लगे बैठि वीरासन ॥
गुह बुलाइ पाहरू प्रतीती । ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती ॥
आप लषण पहँ बैठेउ जाई । कटि भाथा शर चाप चढ़ाई ॥
सोवत प्रभुहिं निहारि निषादा । भयउ प्रेमवश हृदय विषादा ॥
तनु पुलकित लोचन जल बहई । वचन सप्रेम लषण सन कहई ॥
भूपति भवन सुभाय सुहावा । सुरपति सदन न पटतर आवा ॥
मणिमय रचित चारु चौबारे । जनु रतिपति निज हाथ सँवारे ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी सो गये ; तब लक्ष्मण जी उठे और मीठे शब्दों में सुमन्त्र को सोने की आज्ञा दी । फिर वे उस स्थान से कुछ दूर आगे हट और हाथ में धनुष बाण ले-वीरासन से बैठ पहरा देने लगे । उधर गुह ने भी विश्वस्त पहरेदारों को जगह जगह नियुक्त कर दिया और स्वयं कमर में तरकस बाँध और हाथ में धनुष बाण ले लक्ष्मण जी के पास जा बैठा । श्रीरामचन्द्र जी को सोते देख प्रेम के वश हो, निषाद दुःखी हुआ । उसका शरीर रोमाञ्चित होगया और आँखों से आँसू बहने लगे । उसने बड़ी प्रीति के साथ लक्ष्मणजी से कहा—महाराज के सुन्दर भवन की बराबरी इन्द्र का भवन भी नहीं कर सकता । उसमें मणि जटित ऐसे उज्ज्वल चौबारे हैं, मानों उन्हें कामदेव ने अपने हाथों से बनाया है ।

दो०—शुचि सुविचित्र सुभोगमय, सुमन सुगन्ध सुवासु।
पलँग मञ्जु मणि दीप जहँ, सबविधिसकलसुपासु॥

वह राजभवन बड़ा साफ़ सुथरा, सुन्दर, अनेक प्रकार के रङ्गों से सजाया हुआ है, भोग की सामग्री से भरा हुआ है, सुन्दर फूलों की सुगन्धि से सुवासित है। जहाँ कोमल पलंग बिछे हुए हैं, मणि दीपक जल रहे हैं, और जहाँ सब प्रकार का आराम है।

विविध बसन उपधान तुराई। क्षीरफेनु मृदु विशद सुहाई॥
तहँ सियराम शयन निशि करहीं। निज छबि रति मनोजमदहरहीं॥
ते सिय राम साथरी सोये। श्रमित बसनबिनुजाहिं न जोये॥
मातु पिता परिजन पुरवासी। सखा सुशील दास अरु दासी॥
जुगवहिं जिनहिं प्राण की नाईं। महि सोवत सोइ राम गुसाईं॥
पिता जनक जग विदित प्रभाऊ। ससुर सुरेश सखा रघुराऊ॥
रामचन्द्र पति सो वैदेही। महि सोवत विधि वाम न केही॥
सिय रघुवीर कि कानन योगू। कर्म प्रधान सत्य कह लोगू॥

जहाँ अनेक प्रकार के वस्त्र तथा दुग्ध-फेन सदृश कोमल और सफ़ेद तकिये तथा गद्दे शोभायमान हैं वहाँ सीता जी और श्रीराम, सोते समय अपनी शोभा से रति और कामदेव के अभिमान को चूर करते थे। वे ही श्रीराम जो कुशों की चटाई पर, थके हुए ऐसे सो रहे हैं कि देखे नहीं जाते। माता, पिता, कुटुम्बी, नगरवासी, मित्र और अच्छे स्वभाव वाले दास दासी—जिनको प्राण के समान देखते रहते थे—वे ही आज पृथिवी पर सो रहे हैं। जिनके पिता जनक जी का प्रभाव सारा संसार जानता है और जिनके ससुर महाराज दशरथ इन्द्र के मित्र हैं और श्रीराम जो जिनके पति हैं—वे ही सीता भूमि पर सो रही हैं। यदि इस पर भी विधि को वाम न कहा जाय तो क्या कहें? क्या सीता और श्रीराम जी वन के योग्य हैं? लोग ठीक कहते हैं कि कर्म ही मुख्य है।

दो०—कैकय नन्दिनि मन्दमति, कठिन कुटिलपन कीन्ह।
जेहिं रघुनन्दन जानकिहिं, सुख अवसर दुख दीन्ह॥

मन्दमति कैकेयी ने बड़ी कुटिलता की जो ऐसे अच्छे समय, सीता और श्रीराम जी को दुःख दिया।

भइ दिनकरकुल विटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब विश्व दुखारी॥
भयउ विषाद निषादहि भारी। राम सीय महि शयन निहारी॥
बोले लषण मधुर मृदुबानी। ज्ञान विराग भक्ति रस सानी॥
कोउ न काहु दुख सुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥
योग वियोग भोग भल मन्दा। हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा॥
जन्म मरण जहँ लगि जग जालू। सम्पति विपति कर्म अरु कालू॥
धरणि धाम धन पुर परिवारू। स्वर्ग नरक जहं लगि व्यवहारू॥
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथ नाहीं॥

कैकेयी की बुद्धि नष्ट हो गयी। वह सूर्यवंश रूपी वृक्ष काटने के लिये कुल्हाड़ी हुई। उस कुबुद्धिन ने सब संसार को दुःखी कर डाला, श्रीराम और सीता को भूमि पर सोते देख निषाद को बड़ा विषाद हुआ। तब लक्ष्मण जी ने मधुर तथा वैराग्य और भक्तिरस से सनी कोमल वाणी से कहा—भाई! संसार में कोई किसी को सुख अथवा दुःख नहीं देता—सब अपने किये का फल भोगते हैं। संयोग, वियोग, अच्छा, बुरा, भोग, हित अनहित, मित्र शत्रु तथा औदास्य—ये सब अज्ञान की फाँसे हैं। यह जगत एक प्रकार का जाल है। इसमें जहाँ तक जीना, मरना, सम्पत्ति, विपत्ति कर्म, काल, धरणी, धाम, धन, पुर, परिवार स्वर्ग, नरक आदि व्यवहार हैं, इन्हें देखिये, सुनिये और विचारिये तो उन सब, की जड़ अज्ञान ही है। इनमें मोक्ष का साधन कुछ भी नहीं है।

दो०—सपने होहि भिखारि नृप, रङ्क नाकपति होइ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपञ्च जिय जोइ॥

जैसे स्वप्न में राजा भिखारी और भिखारी इन्द्र हो जाता है, किन्तु जागने पर कुछ भी हानि लाभ हाथ नहीं लगता, वैसे ही तुम इस संसार के प्रपञ्च को समझो।

अस विचारि नहिं कीजिय रोषू। बादि काहु नहिं दीजिय दोषू॥
मोह निशा सब सोवनहारा। देखहिं स्वप्न अनेक प्रकारा॥
इहि जग यामिनि जागहिं योगो। परमारथी प्रपञ्च वियोगी॥
जानिय तबहिं जीव जग जागा। जबसब विषय विलासविरागा॥
होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुवीर चरण अनुरागा॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम वचन रामपद नेहू॥
राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल विकार रहित गत भेदा। कहि नित नेति निरूपहिं वेदा॥

यह विचार क्रोध न करना चाहिये और न किसी को दोष देना चाहिये। मोहरूपी निशा में सब सोने वाले हैं और वे अनेक प्रकार के स्वप्न देखा करते हैं। इस संसार रूपी रात में वे योगी ही जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपञ्च से पृथक् रहा करते हैं। जीव को संसार में उसी समय जागा हुआ समझना चाहिये, जब वह सब विषय भोगों से हट जाय। क्योंकि जब विवेक उत्पन्न होता है, तब अज्ञान और सन्देह दूर हो जाते हैं और तभी श्रीराम जी के चरणों में अनुराग उत्पन्न होता है। हे मित्र! परम परमार्थ तो यह है कि मनसा वाचा कर्मणा श्री-रामचन्द्र जी के चरणों में अनुराग हो। भगवान् श्रीराम परमब्रह्म हैं और परमार्थ रूप हैं। इनकी गति न तो किसी ने जान पायी, न यह अनुभव द्वारा जानने योग्य है। ये अनादि हैं और उपमारहित हैं। यह सब विकारों से रहित हैं, भेद से परे हैं और नेति नेति कह कर वेद नित्य इनका निरूपण करते हैं।

दो०—भक्त भूमि भूसुर सुरभि, सुरहित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटै जगजाल॥

यह दयानिधान, अपने भक्तों, पृथ्वी, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के हित के लिये मानव शरीर धारण कर, लीला करते हैं। उनकी उन लीलाओं के सुनने से संसार के फन्दे कट जाते हैं।

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुवीर चरण रत होहू॥
कहत राम गुण भा भिनसारा। जागे जग मङ्गल दातारा॥

सकल शौच करि राम अन्हाये। शुचि सुजान बटछीर मँगाये॥
अनुज सहित सिर जटा बनाये। देखि सुमन्त्र नयन जल छाये॥
हृदय दाह अति वदन मलीना। कह करजोरि वचन अति दीना॥
नाथ कहेउ अस कोशलनाथा। लै रथ जाहु राम के साथा॥
वन दिखाय सुरसरि अन्हवाई। आनेहु बेगि फेरि दोउ भाई॥
राम लषण सिय आनेहु फेरी। संशय सकल सकोच निवेरी॥

हे मित्र!! इस प्रकार समझ कर, अज्ञान को छोड़ो और सीताराम के चरणों में प्रीति करो। श्रीराम जी के गुणों का वर्णन करते करते सवेरा हो गया और जगत् के मङ्गल करने वाले जागे। फिर शौचादि क्रिया से निवृत्त हो श्रीराम जी ने स्नान किये और बड़ का दूध मँगवाया। तदनन्तर अपने और लक्ष्मण के सिर पर जटा बनाई। यह कृत्य देख सुमन्त्र के नेत्रों में आँसू भर आये। उनकी छाती जलने लगी, मुख की आकृति मलिन हो गयी। वे हाथ जोड़ अति दीन हो बोले—हे नाथ! महाराज दशरथ ने यह कह दिया था कि रथ ले श्रीराम जी के साथ जाओ और वन दिखा कर और गङ्गा जी में स्नान करा दोनों भाइयों को तुरन्त लौटा लाना। सारे भ्रम और सङ्कोच को दूर करा कर, श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी को लौटा लाना।

दो०—नृप अस कहेउ गुसाइँ जस, कहिय करौं बलि सोइ।
करि विनती पायन परेउ, दीन बाल जिमि रोइ॥

हे नाथ! महाराज ने तो यही कहा था—अब मैं आपकी बलैया लूं। आप अब जैसा कहें, मैं वैसा करूँ। इस प्रकार विनती कर और बालक के समान रो सुमन्त्र श्रीराम के पैरों पर गिर पड़े।

तात कृपा करि कीजिय सोई। जाते अवध अनाथ न होई॥
मन्त्रिहि राम उठाय प्रबोधा। तात धर्ममगु तुम सब शोधा॥
शिवि दधीचि हरिचन्द नरेशा। सहे धर्महित कोटि कलेशा॥
रन्तिदेव बलि भूप सुजाना। धर्म धरेउ सहि संकट नाना॥

धर्म न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुराण बखाना॥
मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा। तजे सो तिहुँ पुर अपयश छावा॥
सम्भावित कहँ अपयश लाहू। मरण कोटि सम दारुण दाहू॥
तुम सन तात बहुत का कहऊँ। दिये उतर पुनि पातक लहऊँ॥

हे तात! कृपा कर वही कीजिये जिससे अवध अनाथ न हो। तब श्रीराम जी ने मन्त्री को उठा कर समझाया और कहा हे तात! तुमने तो धर्म के मार्ग का भली प्रकार अनुसन्धान किया है। देखो शिवि, दधीचि और हरिश्चन्द्र नरेशों ने धर्म के लिये कैसे कैसे कष्ट सहे हैं। बड़े चतुर राजा रन्तिदेव ने अनेक कष्ट सह कर भी धर्म की रक्षा की। सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। यह बात वेद शास्त्र पुराण—सब ही कहते हैं। मैंने वही सत्य धर्म सुगमता से पाया है। यदि उसे मैं छोड़ दूँ, तो मेरी तीनों लोकों में हँसी हो। साथ ही यशस्वी को अपकीर्ति मिलना—करोड़ों बार मरने के समान दुःखदायी है। हे तात! तुमसे और अधिक मैं क्या कहूँ, क्योंकि उत्तर देने से पाप लगेगा।

दो०—पितुपद गहि कहि कोटि विधि, विनय करब करजोरि।
चिन्ता कवनिहुँ बात की, तात करिय जनि मोरि॥

तुम पिता के चरण छू और अनेक प्रकार से विनय कर, तथा हाथ जोड़ कर कहना—हे पिता! मेरी किसी बात की चिन्ता मत कीजिये।

तुम पुनि पितु समान हित मोरे। विनती करौं तात कर जोरे॥
सब विधि सोइ कर्तव्य तुम्हारे। दुख न पाव नृप सोच हमारे॥
सुनि रघुनाथ सचिव संवादू। भयउ सपरिजन विकल निषादू॥
पुनि कछु लषण कहेउ कटुबानी। प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी॥
सकुचि राम निज शपथ दिवाई। लषण सँदेश कहब जनि जाई॥
कह सुमन्त्र पुनि भूप सँदेशू। सहि न सकिहि सिय विपिन कलेशू॥
जेहि विधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुनाथ तुमहिं करणीया॥
नतरु निपट अवलम्ब विहीना। मैं न जियब जिमि जल बिनु मीना॥

फिर तुम भी पिता ही के समान मेरे लिये हितकारी हो अतः हे तात! मैं तुम्हारी भी हाथ जोड़ कर विनती करता हूँ कि सब प्रकार तुमको वही करना चाहिये जिससे महाराज हमारी चिन्ता कर के दुःख न पावें। श्रीराम और मन्त्री की इस बातचीत को सुन कर गुह, परिवार सहित व्याकुल हुआ। इतने में लक्ष्मण जी ने कुछ अप्रिय वचन कहे जिन्हें बहुत अनुचित समझ श्रीराम ने लक्ष्मण को वरज दिया और सकुच कर श्रीराम जी ने सुमन्त को अपनी शपथ दिला कर कहा कि लक्ष्मण जी का सन्देसा जा कर न कहना। तदनन्तर सुमन्त ने महाराज का यह सन्देसा भी कहा कि सीता जी वन के क्लेशों को नहीं सह सकेंगी। अतएव हे श्रीराम जी! तुम वही करो जिससे सीता जी अयोध्या को लौट जावें नहीं तो बिलकुल सहारा न होने के कारण मैं वैसे ही नहीं जीऊँगा जैसे बिना जल के मछली नहीं जीती है।

दो०—मैके ससुरे सकल सुख, जबहिं जहाँ मन मान।
तब तहँ रहब सुखेन सिय, जब लगि विपति बिहान॥

मायके और सासुरों में सब प्रकार के सुख हैं अतः जहाँ जब मन में आवे तब तहाँ आनन्द सहित सीता जी रहें जब तक यह विपत्ति दूर हो।

विनती कीन्ह भूप जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥
पितु सँदेश सुनि कृपा निधाना। सियहिं दीन्हशिष कोटिविधाना॥
सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू। फिरहु तो सब कर मिटै खभारू॥
सुनि पतिवचन कहति वैदेही। सुनहु प्राणपति परम सनेही॥
प्रभु करुणामय परम विवेकी। तनु तजि छाँह रहत किमि छेकी॥
प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई॥
पतिहि प्रेममय विनय सुनाई। कहत सचिव सन गिरा सुहाई॥
तुमपितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी॥

महाराज ने जिस प्रकार विनती की थी वह प्रेम और दुःख वर्णन नहीं किया जा सकता। पिता का सन्देसा सुन श्रीरामचन्द्र जी ने सीता को अनेक प्रकार के उपदेश दिये और कहा कि—यदि तुम लौट जाओ तो सास, ससुर, गुरु,

प्यारे कुटुम्बी आदि सब के दुःख मिट जायँ। पति के वचन सुन सीता जी कहने लगीं कि—हे परमसनेही प्राणपति! सुनिये, हे स्वामी! आप तो करुणानिधान बड़े ज्ञानवान् हैं आप ही बतलाइये कि शरीर को छोड़ छाया कैसे अलग रह सकती है? धूप सूर्य को और चाँदनी चन्द्रमा को छोड़ कर कहाँ जा सकती है? सीता जी इस प्रकार प्रेममय विनय सुना कर सुन्दर वाणी से मन्त्री से बोलीं—तुम पिता और ससुर के समान मेरी भलाई करने वाले हो अतः उत्तर देने से मेरी बड़ी अयोग्यता होगी।

दो०—आरत वश सन्मुख भयउँ, बिलग न मानब तात।
आरजसुत पदकमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात॥

हे तात! मैं विपत्ति के वश में होकर आपके सामने हुई हूँ इसका बुरा आप न मानियेगा, पति के चरणकमलों बिना सब नाते थोथे हैं।

पितु वैभव बिलास मैं दीठा। नृपमणि मुकुट मिलत पदपीठा॥
सुख निधान अस पितु गृह मोरे। पति विहीन मन भाव न भोरे॥
ससुर चक्कवै कोशलराऊ। भुवन चारि दश प्रकट प्रभाऊ॥
आगे ह्वै जेहि सुरपति लेई। अर्द्ध सिंहासन आसन देई॥
ससुर एतादृश अवध निवासू। प्रिय परिवार मातु सम सासू॥
बिनु रघुपति-पद-पद्म-परागा। मोहिंकोउ सपनेहुँसुखदनलागा॥
अगम पन्थ वन भूमि पहारा। करि केहरि सर सरिसअपारा॥
कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहिं सब सुखद प्राणपति संगा॥

पिता के वैभव के आनन्द को भी मैंने देखा है कि बड़े बड़े मुकुटधारी राजा उनके पैरों पड़ते हैं और ऐसा ही सुख का स्थान मेरा मायका है पर बिना पति के भूल कर भी मेरा मन उनकी ओर नहीं जाता, ससुर चक्रवर्ती महाराज दशरथ हैं कि जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में छा रहा है। इन्द्र भी उनकी अगवानी करता है और अपने आधे सिंहासन पर बैठाता है। मेरे ऐसे ससुर हैं फिर अयोध्या का निवास, फिर प्यारे कुटुम्बी और माता के समान सास हैं। किन्तु श्रीरामचन्द्र जी के चरणों की रज के बिना यह सब मुझको स्वप्न में भी सुख

नहीं दे सकते और कठिन रास्ता और वन की भूमि पर्वत हाथी, सिंह और बहुत से नदी तालाब, शूकर, भील, हिरन, पक्षी, आदि सब पति के साथ रहने से मुझ को सुख देने वाले हैं।

दो०—सासु ससुर सन मोरिहुति, विनय करब परिपाय।
मोर सोच जनि करिय कछु, मैं वन सुखी सुभाय॥

अतः तुम मेरी ओर से सास और ससुर के पैरों पर गिर के प्रार्थना करना कि मेरी कुछ भी चिन्ता न करें मैं वनमें सुखी हूँ और वन मुझे अच्छा लगता है।

प्राणनाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीण धरे धनु भाथा॥
नहिं मग श्रम भ्रम दुख मन मोरे। मोहिं लगि सोच करिय जनिभोरे॥
सुनि सुमन्त्र सिय शीतल बानी। भये विकल जनु फणि मणिहानी॥
नयन न सूझ सुनै नहिं काना। कहि न सकै कछु अति अकुलाना॥
राम प्रबोध कीन्ह बहु भाँती। तदपि होइ नहिं शीतल छाती॥
यत्न अनेक साथ हित कीन्हा। उचित उतर रघुनन्दन दीन्हा॥
मेटि जाय नहिं राम रजाई। कठिन कर्म गति कछु न बसाई॥
राम लषण सिय पद सिर नाई। फिरेउ बणिक जिमि मूर गँवाई॥

क्योंकि प्राणनाथ श्रीराम जी और प्यारे देवर मेरे संग हैं ये वीरों में धुरन्धर हैं और धनुष बाण धारण किये हुए हैं। न तो मुझको रास्ते की थकावट जान पड़ती है और न मेरे मन में किसी प्रकार का भ्रम और दुःख है। अतएव भूल कर भी मेरे लिये चिन्ता न करें। सुमन्त्र सीता जी की शीतल वाणी को सुन कर वैसे ही व्याकुल हो गये जैसे मणि के खोने से सर्प व्याकुल होता है। न तो नेत्रों से दिखाई पड़ता है न कानों से सुनाई पड़ता है और न कुछ कह ही सकते हैं, वे अति विकल हो गये। तब श्रीरामचन्द्र जी ने उनको बहुत समझाया किन्तु तो भी उनकी छाती ठण्डी नहीं हुई। श्रीराम जी आदि को साथ लौटने के लिये उन्होंने बहुत प्रयत्न किये परन्तु श्रीरामचन्द्र जी ने उनको यथोचित उत्तर दिये। श्रीराम जी की आज्ञा नहीं टाली जाती और कर्म की गति कठिन है। उसने कुछ नहीं बसाती,

यह विचार कर सुमन्त्र ने श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी जी को प्रणाम किया और वे वहाँ से ऐसे उदास लौटे जैसे व्यापारी अपनी पूँजी को नाश करके लौटता है।

दो०—रथ हाँके हय राम तन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद विषाद वश, सिर धुनि धुनि पछिताहिं॥

जब सुमन्त्र ने रथ आगे बढ़ाया तब घोड़े श्रीराम जी के शरीर की ओर देख देख कर हिनहिनाने लगे और यह देख कर निषाद विषाद के वश हो अपना सीस धुन धुन कर पछिताने लगे।

जासु वियोग विकल पशु ऐसे। प्रजा मातु पितु जीवहिं कैसे॥
बरबस राम सुमन्त्र पठाये। सुरसरि तीर आपु चलि आये॥
माँगी नाव न केवट आना। कहै तुम्हार मर्म मैं जाना॥
चरण कमल रज कहँ सब कहई। मानुष करणि मूरि कछु अहई॥
छुवत शिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई॥
तरणिउँ मुनि घरणी होइ जाई। बाट परे मोरि नाव उड़ाई॥
यहि प्रतिपालौं सब परिवारू। नहि जानौं कछु और कबारू॥
जो प्रभु अवशि पार गा चहहू। तौ पदपद्म पखारन कहहू॥

जिसके वियोग में पशु तक इतने विकल हैं उसके वियोग में उसके माता पिता और प्रजा के लोग कैसे जियें? श्रीराम जी ने सुमन्त्र को जैसे तैसे लौटाया और वे स्वयं गङ्गा जी के तट पर गये और वहाँ पहुँच कर जब उन्होंने केवट से नाव माँगी तब वह नहीं लाया और कहने लगा कि मैंने तुम्हारा भेद जान लिया है अर्थात् सब संसार कहता है कि आपके चरणकमलों की रज में मनुष्य बनाने की कोई ओषधि है। जब चरण के स्पर्श से शिला सुन्दर स्त्री बन गयी तब पत्थर से काठ अधिक कठोर नहीं होता। यदि नाव भी किसी मुनि की स्त्री बन गयी तो मेरे परिवार की तो जीविका ही जाती रहेगी! और मैं इसीसे अपने कुटुम्ब का पालन करता हूँ और जीविका का कोई अन्य उपाय भी नहीं जानता। अतः हे नाथ! यदि आप निश्चय ही पार उतरना चाहते हैं, तो मुझे आज्ञा दीजिये कि आप के चरणकमल को मैं पखारूँ।

छं०—पदपद्म धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहिं शपथ राउरि आन दशरथ बात सब साँचो कहौं॥
बरु तीर मारहु लषण पै जब लगि न पाँव पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौं॥

हे नाथ! आपके चरणकमलों को धोकर मैं आपको नाव पर चढ़ाऊँगा। मैं आपसे नाव की उतराई भी नहीं चाहता। हे श्रीरामजी! मुझे आपकी आन है और महाराज दशरथ की शपथ है मैं सब बातें सच्ची सच्ची कहता हूँ कि लक्ष्मण जी भले ही मुझे तीर से मार डालें परन्तु जब तक चरण नहीं धोऊँगा तब तक हे नाथ! हे कृपानिधान! मैं आपको गङ्गा के पार न उतारूँगा।

सो०—सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
विहँसे करुणाअयन, चितै जानकी लषण तन॥

केवट के प्रेम में सने अटपटे वचन सुन कर करुणानिधान श्रीरामचन्द्र जी सीता और लक्ष्मण जी की ओर देख कर हँसे।

कृपासिन्धु बोले मुसुकाई। सोइ करहु जेहि नाव न जाई॥
वेगि आनि जल पाँव पखारू। होत विलम्ब उतारहु पारू॥
जासु नाम सुमिरत यक बारा। उतरहिं नर भवसिन्धु अपारा॥
सो कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं किय जग तिहुँ पग तें थोरा॥
पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु वचन मोहमति करषी॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठौता भरि लै आवा॥
अति आनन्द उमँगि अनुरागा। चरण सरोज पखारन लागा॥
वर्षि सुमन सुर सकल सिहाहीं। इहि सम पुण्यपुञ्ज कोउ नाहीं॥

इस पर दयालु श्रीरामचन्द्र जी ने कहा कि—तुम वही करो जिससे तुम्हारी नाव न जाय। तुरन्त जल ला कर पैर पखारो—क्योंकि देर हो रही है हमें पार उतारो। जिसका एक बार भी नाम स्मरण करने से, नर भवसिन्धु के पार हो जाते हैं—वही कृपालु आज एक मल्लाह की खुशामद कर रहे हैं। यह वही है जिसने

तीनों लोकों को चरण से भी छोटा कर दिया था। चरणों के नखों को देख गङ्गा जी प्रसन्न हुईं, किन्तु श्रीराम जी के वचन सुन उनकी मति मोह गयी। केवट श्रीराम जी की आज्ञा के अनुसार कठौता भर गङ्गा जल ले आया और आनन्द की उमङ्ग में भर बड़ी प्रीति से वह चरणकमलों को धोने लगा। उस समय देवता पुष्प बरसाने लगे और उसके भाग्य को सराहने लगे और कहने लगे कि इससे बढ़ कर पुण्यात्मा और कोई नहीं है।

दो०—पद पखारि जल पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पार करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयउ लै पार॥

श्रीराम जी के पैर पखार और परिवार सहित चरणामृत पान कर उसने पहले तो अपने पितरों का उद्धार किया, तदनन्तर प्रसन्न हो भगवान् श्रीरामचन्द्र जी को वह पार ले गया।

उतरि ठाढ़ भये सुरसरि रेता। सीय राम गुह लषण समेता॥
केवट उतरि दण्डवत कीन्हा। प्रभु सकुचे कछु यहि नहिं दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जाननहारी। मणिमुदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपालु लेहु उतराई। केवट चरण गहेउ अकुलाई॥
नाथ आजु हम काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
अमित काल मैं कीन्ह मंजूरी। आजु दीन्ह विधि सब भरिपूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिय मोरे। दीनदयालु अनुग्रह तोरे॥
फिरति बार जो कछु मोहिं देवा। सो प्रसाद मैं सिर धरि लेवा॥

श्रीरामचन्द्र जी, सीता, लक्ष्मण और गुह सहित नाव से उतर बालू पर ठाढ़े हुए। केवट ने नाव से उतर कर उन्हें प्रणाम किया, तब भगवान् मन ही मन इस बात के लिये सकुचाने कि पार उतराई इसे कुछ भी हमने नहीं दी। यह बात सीता जी ताड़ गयीं और उन्होंने प्रसन्न हो मणि जटित अंगूठी उतारी तब कृपालु श्रीराम जी ने उस अंगूठी को दे कर कहा—यह तुम अपनी उतराई लो। इस पर केवट ने विकल हो भगवान् के चरण पकड़ लिये। हे नाथ! आज वह कौन सी अलभ्य वस्तु है जो हमें नहीं मिली—मेरे सारे पाप दुःख और दरिद्र दूर हो गये।

मैं तो बहुत दिनों से मजूरी करता था—किन्तु भाग्य ने आज मुझे मेरी सारी मजूरी दे दी। हे नाथ! आपकी कृपा से अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। लौटती समय जो कुछ प्रसाद आप देंगे—वह मैं अपने सीस पर रख कर ले लूँगा।

दो०—बहुत कीन्ह हठ लषण प्रभु, नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुणायतन, भक्ति विमल वर देइ॥

श्रीराम और लक्ष्मण ने बहुत आग्रह किया—किन्तु केवट ने कुछ भी न लिया—तब विमल भक्ति दे कर, करुणासागर ने उसे बिदा किया।

तब मज्जन करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथी नायउ माथा॥
सिय सुरसरिहि कहेउ करजोरी। मातु मनोरथ पुरवहु मोरी॥
पति देवर सँग कुशल बहोरी। आइ करौं जेहि पूजा तोरी॥
सुनि सिय विनय प्रेमरस सानी। भइ तब विमल बारि वरबानी॥
सुनु रघुवीर प्रिया वैदेही। तव प्रभाव जग विदित न केही॥
लोकप होहिं विलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि करजोरे॥
तुम जो हमहिं बड़ि विनय सुनाई। कृपा कीन्ह मोहिं दीन्ह बड़ाई॥
तदपि देव मैं देउँ अशीशा। सफल होन हित निज बागीशा॥

फिर श्रीरामचन्द्र जी ने स्नान कर और पार्थिव पूजन कर, प्रणाम किया। सीता जी ने हाथ जोड़ कर कहा-हे माता! मेरी मनोकामना पूरी करो जिससे मैं पति और देवर सहित कुशल लौट कर तुम्हारी पूजा करूँ। प्रेमरस में पगी सीता जी की विनय सुन जल से यह बाणी हुई कि हे श्रीरामचन्द्र जी की प्यारी सीता! सुन, संसार में कौन तेरे प्रभाव को नहीं जानता? तेरे कृपाकटाक्ष से रङ्क लोकपाल हो जाते हैं और सिद्धियाँ हाथ जोड़े तेरी सेवा किया करती हैं। तूने मेरी विनती कर, मुझ पर कृपा की है और मुझे बड़ाई दी है। तो भी हे देवी! मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि तेरी वाणी सफल हो।

दो०—प्राणनाथ देवर सहित, कुशल कोशला आय।
पूरिहि सब मन कामना, सुयश रहिहि जग छाय॥

तू अपने पति और देवर सहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटेगी-तेरी मनोकामना पूरी होगी और संसार में तेरा सुन्दर यश फैलेगा।

गङ्ग वचन सुनि मङ्गलमूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥
तब प्रभु गुहहिं कहा घर जाहू। सुनत सूख मुख भा उरदाहू॥
दीन वचन गुह कह करजोरी। विनयसुनिय रघु-कुल-मणिमोरी॥
नाथ साथ रहि पन्थ दिखाई। करि दिन चारि चरण सेवकाई॥
जेहि वन जाइ रहब रघुराई। पर्णकुटी मैं करब सुहाई॥
तब मो कहँ जस देव रजाई। सो करिहौं रघुवीर दुहाई॥
सहज सनेह राम लखि तासू। सँग लीन्ह गुह हृदय हुलासू॥
पुनि गुह ज्ञाति बोलि सब लीन्हें। करि परितोष बिदा सब कीन्हें॥

गङ्गा जी की मङ्गलमय वाणी सुन और उनको अपने अनुकूल जान-सीता जी प्रसन्न हुईं। तब श्रीरामचन्द्र जी ने गुह से घर लौट जाने को कहा—यह सुनते ही उसका मुख सूख गया और छाती जलने लगी। गुह ने दीन हो और हाथ जोड़ कर कहा—हे रघुकुलमणि! मेरी प्रार्थना सुन लीजिये। हे नाथ! मैं आपके साथ रह कर रास्ता बतलाऊँगा और चार दिन आपकी सेवा करूँगा। फिर जिस वन में आप रहना चाहेंगे, वहाँ पर्णकुटी बना कर, फिर आप जो आज्ञा देंगे—उसे मैं आप की शपथ खा कर कहता हूँ—पालन करूँगा। श्रीराम जी ने उसका सहज अनुराग देख और प्रसन्न हो उसे अपने साथ ले लिया। तब निषाद ने अपने परिवार के सब लोगों को बुला कर उन्हें समझाया और विदा किया।

दो०—तब गणपति शिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित वन गमन कीन्ह रघुनाथ॥

तब गणेश और शिव जी का स्मरण कर और गङ्गा को प्रणाम कर तथा लक्ष्मण, जानकी और मित्र गुह के साथ श्रीरामचन्द्र जी वन की ओर चले।

तेहि दिन भयउ विटप तर बासू। लषण सखा सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराज दीख प्रभु जाई॥

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीत हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भँडारू। पुण्य प्रदेश देश अति चारू॥
क्षेत्र अगम गढ़ गाढ़ सुहावा। सपनेहु जिहिं प्रतिपच्छि न पावा॥
सेन सकल तीरथ वर वीरा। कलुष अनीक दलन रणधीरा॥
संगम सिंहासन सुठि सोहा। छत्र अक्षयवट मुनि मन मोहा॥
चमर यमुन अरु गङ्ग तरङ्गा। देखि होंहि दुख दारिद भङ्गा॥

उस दिन वे सब एक वृक्ष के नीचे टिके और लक्ष्मण तथा गुह ने सब आवश्यक सामग्री एकत्र की। सबेरे श्रीरामचन्द्र जी ने नित्य क्रिया कर, तीर्थराज प्रयाग का जा कर दर्शन किया। तीर्थराज के सत्य दीवान हैं और श्रद्धा उनकी पटरानी है और वेणीमाधव सदृश उनके हितकारी मित्र हैं। उनके राजकोष में चारों पदार्थ अर्थात् अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष भरे हुए हैं। उनका राज्य पुण्य प्रदेश है और वह बहुत सुन्दर है। उनके क्षेत्र में अगम्य बड़ा दृढ़ दुर्ग है जिसे स्वप्न में भी कोई शत्रु पा ही नहीं सकता। इनकी सेना में अन्य सब तीर्थ वीर सैनिक हैं—जो पापरूपी सेना को नष्ट करने में बड़े रणधीर हैं। तीर्थराज का गङ्गा यमुना का सङ्गम ही सिंहासन है और मुनियों के मन को मोहने वाला अक्षय्यवट ही छत्र है और गङ्गा यमुना की तरङ्गें चँवर हैं—प्रयागराज को देख दुःख और दारिद्र मिट जाते हैं।

दो०—सेवहिं सुकृती साधु शुचि, पावहिं सब मन काम।
वन्दी वेद पुराण गण, कहहिं विमल गुण ग्राम॥

बड़े बड़े पुण्यात्मा पवित्र साधु उनकी सेवा कर, मनोवांछित फल पाते हैं और उनके निर्मल गुणों का गान करने वाले वेद पुराण बन्दीजन हैं।

को कहि सकै प्रयाग प्रभाऊ। कलुषपुञ्ज-कुञ्जर-मृगराऊ॥
अस तीरथपति देखि सुहावा। सुखसागर रघुपति सुख पावा॥
कहिसिय अनुजहिं सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई॥
करि प्रणाम देखत वन बागा। कहत महातम अति अनुरागा॥

इहि विधि आइ बिलोकेउ बेनी। सुमिरत सकल सुमङ्गल देनी॥
मुदित अन्हाइ कीन्ह शिवसेवा। पूजि यथा विधि तीरथ देवा॥
तब प्रभु भरद्वाज पहँ आये। करत दण्डवत मुनि उर लाये॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानन्द राशि जनु पाई॥

उन प्रयागराज का प्रभाव कौन कह सकता है जो पाप रूपी हाथियों के झुण्ड के लिये सिंह हैं। ऐसे तीर्थपति की शोभा देख-सुखसागर श्रीराम प्रसन्न हुए। फिर अपने श्रीमुख से तीर्थराज की प्रशंसा, सीता, लक्ष्मण और गुह को सुनायी। फिर प्रणाम कर तथा वन एवं पुष्पवाटिकाओं को देखते हुए, और वहाँ का माहात्म्य कहते हुए वे चले। इस प्रकार आगे बढ़ कर उन्होंने बेणी जी के दर्शन किये जो स्मरण करते ही सब सुमङ्गलों को देने वाली हैं। प्रसन्न हो उन्होंने स्नान किया और शिव जी का एवं यथाविधि तीर्थवासी देवों का पूजन किया। तदनन्तर भगवान् भरद्वाज जी के पास गये. मुनि ने श्रीराम जी को प्रणाम करते देख और प्रसन्न हो अपनी छाती से लगा लिया। उस समय भरद्वाज जी की प्रसन्नता का ठिकाना ही क्या था--मानों उन्हें ब्रह्मानन्द का ढेर मिल गया।

दो०—दीन्ह अशीश मुनीश उर, अति आनँद अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किये विधि आनि॥

मुनिप्रवर ने आशीर्वाद दिया और मन में यह विचार बहुत प्रसन्न हुए कि आज विधि ने हमारे सारे पुण्यों के फलों को नेत्रों के सामने ला कर दिखा दिया।

कुशल प्रश्न करि आसन दीन्हा। पूजि प्रेम परिपूरण कीन्हा॥
कन्दमूल फल अंकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहुँ अमीके॥
सीय लषण जन सहित सुहाये। अति रुचि राम मूलफल खाये॥
भये विगत श्रम राम सुखारे। भरद्वाज मृदु वचन उचारे॥
आजु सुफल तप तीरथ यागू। आजु सुफल जप योग बिरागू॥
सुफल सकल शुभ साधन साजू। राम तुमहिं अवलोकत आजू॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरश आश सब पूजी॥
अब करि कृपा देव वर येहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥

मुनि ने कुशल प्रश्न कर बैठने को आसन दिया फिर बड़ी श्रद्धा से पूजन कर उन्हें सब प्रकार से सन्तुष्ट किया। फिर उन्होंने अमृत के समान स्वादिष्ट कन्दमूल फल और अङ्कुर ला कर दिये। सीता, लक्ष्मण और गुह सहित श्रीरामचन्द्र जी ने बड़ी रुचि के साथ उनको खाया। जब श्रीरामचन्द्र जी की थकावट दूर हो गयी और वे प्रसन्न जान पड़े, तब भरद्वाज ने उनसे मीठे वचन कहे। आज मेरा तप करना, तीर्थसेवन, यज्ञ करना, जप, योग, वैराग्य --सभी सफल हुए। आज तक मैंने जितने शुभ साधन किये थे--हे राम! आपके दर्शन से वे सब सफल हो गये। लाभ और सुख की सीमा दूसरी नहीं है, आपके दर्शन से सब आशा पूरी हुई। अब कृपा कर आप यह वर दीजिये कि आपके चरणकमलों में सच्ची भक्ति हो।

दो०—कर्म वचन मन छाँड़ि छल, जब लगि जन न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहि, किये कोटि उपचार॥

मनसा वाचा कर्मणा छल छोड़ कर जब तक प्राणी आपको शरण नहीं आता, तब तक वह कोटि उपाय क्यों न करे उसे स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता।

सुनि मुनिवचन राम सकुचाने। भाव भक्ति आनन्द अघाने॥
तब रघुवर मुनि सुयश सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहिं सुनावा॥
सो बड़ सो सब गुणगणगेहू। जेहि मुनीश तुम आदर देहू॥
मुनि रघुवीर परस्पर नवहीं। वचन अगोचर सुख अनुभवहीं॥
यह सुधि पाइ प्रयागनिवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आश्रम सब आये। देखन दशरथसुवन सुहाये॥
राम प्रणाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोचन लाहू॥
देहिं अशीश परम सुख पाई। फिरे सराहत सुन्दरताई॥

मुनि के वचन सुन श्रीराम जी सकुचाने और मुनि की भाव भक्ति के आनन्द से अघाये। तब श्रीराम जी ने मुनि का सुयश सब को अनेक प्रकार से सुनाया। हे मुनीश! वही बड़ा है और वही सब गुणों का घर है जिसे आप आदर दें। मुनि और श्रीराम जी आपस में नवते हैं और वर्णनातीत सुख का अनुभव

करते हैं। यह सुन प्रयागनिवासी ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासी—भरद्वाज के आश्रम में महाराज दशरथ के पुत्रों के दर्शन करने को आये। उन सब को श्रीरामचन्द्र जी ने प्रणाम किया और उन्होंने भी श्रीराम जी का दर्शन कर अपने नेत्र सफल किये। परम प्रसन्न हो उन्होंने श्रीराम जी को आशीर्वाद दिये और उनके सौन्दर्य की बड़ाई करते हुए लौटे।

दो०—राम कीन्ह विश्राम निशि, प्रात प्रयाग अन्हाइ।
चले सहित सिय लखण जन, मुदित मुनिहिं सिर नाइ॥

श्रीराम जी ने भरद्वाज के आश्रम में उस रात विश्राम किया और सबेरे प्रयाग स्नान कर, मुनि को सीता, लक्ष्मण और गुह सहित प्रणाम कर और प्रसन्न हो वहाँ से प्रस्थान किया।

राम सप्रेम कह्यो मुनि पाहीं। नाथ कहहु हम किहि मगु जाहीं॥
सुनिमुनिबिहँसि रामसन कहहीं। सुगम सकलमगु तुमकहँ अहहीं॥
साथ लागि मुनि शिष्य बुलाये। सुनि मन मुदित पचासक आये॥
सबहिं राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मगु दीख हमारा॥
मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन बहु जन्म सुकृत बड़ कीन्हे॥
करि प्रणाम मुनि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई॥
ग्राम निकट जब निसरहिं जाई। देखहिं दरश नारि नर धाई॥
होहिं सनाथ जन्म फल पाई। फिरहिं मुदित मन संग पठाई॥

चलने के पहिले श्रीराम जी ने प्रीतिपूर्वक भरद्वाज जी से कहा—हे नाथ! यह बतलाइये कि हम किस रास्ते से जाँय। यह सुन और हँस कर मुनि ने श्रीराम जी से कहा—तुम्हारे लिये सब मार्ग सुगम है। साथ भेजने के लिये मुनि ने शिष्यों को बुलाया तो प्रसन्न हो पचास आये। क्योंकि श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में सब ही की अपार भक्ति थी इसलिये सब कहने लगे—हमारे सब मार्ग जाने और देखे हुए हैं। तब उन चार ब्रह्मचारियों को भरद्वाज जी ने श्रीराम के साथ कर दिया—जिन्होंने जन्म जन्मान्तरों में बड़े पुण्य कार्य किये थे। फिर मुनि को प्रणाम कर और उनसे आशीर्वाद पा, श्रीरामचन्द्र जी प्रसन्न होते हुए चले।

जिस गाँव के समीप हो कर वे जाते हैं उस गाँव के रहने वाले पुरुष तथा स्त्रियाँ दौड़ कर उनके दर्शन करते हैं। दर्शन कर अपने जन्म को सफल करते हैं और कुछ दूर श्रीराम जी के साथ जा कर, दुःखी मन हो लौट आते हैं।

दो०—बिदा कीन्ह बटु विनय करि, फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाये यमुन जल, जो शरीर सम श्याम॥

श्रीराम जी ने बहुत कुछ अनुनय विनय कर विद्यार्थियों को लौटाया और वे भी अपनी मनोकामना पाकर लौटे। फिर भगवान् ने उस यमुना जल में पैठ कर स्नान किये जो उनके शरीर के समान श्याम वर्ण है।

सुनत तीरवासी नर नारी। धाये निज निज काज बिसारी॥
राम लषण सिय सुन्दरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥
अति लालसा सबहि मन माहीं। नाम ग्राम पूछत सकुचाहीं॥
जे तिन महँ बय वृद्ध सयाने। तिन करि युक्ति राम पहिचाने॥
सकल कथा कहि तिनहिं सुनाई। वनहिं चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सविषाद सकल पछिताहीं। रानी राव कीन्ह भल नाहीं॥
तेहि अवसर तापस यक आवा। तेजपुञ्ज लघु बैस सुहावा॥
कवि अलखित गति वेष विरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी॥

श्रीरामचन्द्र जी का आगमन सुन यमुना तीरवासी नर नारी, अपने अपने काम छोड़ दौड़े आये। श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता जी के सौन्दर्य को देख अपने अपने भाग्यों की सराहना करने लगे। लालसा तो सब ही के मन में है, पर उनका नाम ग्राम पूँछते वे लजाते हैं। उनमें जो बड़े बूढ़े और सयाने थे-उन्होंने युक्ति से श्रीराम जी को पहचान लिया। तब उन्होंने अपने साथियों को, सब हाल कह सुनाया कि श्रीराम, लक्ष्मण और सीता सहित पिता की आज्ञा से वन को जाते हैं। यह सुन सब लोग दुःखी हो पछताने लगे और कहने लगे कि महाराज और रानी ने यह काम अच्छा नहीं किया। उसी समय एक तपस्वी आया वह यद्यपि कम अवस्था वाला था, तथापि तेज उसमें बहुत था। उसको

गति कवि भी नहीं जानते। वह बैरागी का भेष धारण किये हुए था और श्री-रामचन्द्र जी का परम अनुरागी था।

दो०—सजल नयन तनु पुलक निज, इष्टदेव पहिंचानि।
परेउ धरणि तल दण्ड जिमि, दशा न जाय बखानि॥

अपने इष्टदेव को पहचानते ही उसके नेत्र सजल हो गये और रोंगटे खड़े हो गये। वह डण्डे की तरह भूमि पर गिर पड़ा—उसकी दशा वर्णन करना असम्भव है।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रङ्क जनु पारस पावा॥
मनहुँ प्रेम परमारथ दोऊ। मिलत धरे तनु कह सब कोऊ॥
बहुरि लषण पायँन सो लागा। लीन्ह उठाय उमँगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरण धूरि धरि शीशा। जननि जानि सुत दीन्ह अशीशा॥
कीन्ह निषाद दण्डवत तेही। मिले मुदित लखि राम सनेही॥
पियत नैनपुट रूप पियूषा। मुदित सुअशन पाय जिमि भूखा॥
पुनि प्रभु पद सरोज सिर नावा। देखि प्रीति रघुबर मन भावा॥
उर धरि धीर रजायसु पाई। चले मुदित मन अति हरषाई॥
राम लषण सिय रूप निहारी। सोच सनेह विकल नरनारी॥
ते पितु मातु कहौ सखि कैसे। जिन पठये वन बालक ऐसे॥

श्रीरामचन्द्र जी ने पुलकित हो प्रेमपूर्वक उसे छाती से लगा लिया। तब तो वह तपस्वी ऐसा प्रसन्न हुआ, मानों किसी कङ्गाल को पारस मिल गया हो। इस सम्मिलन के समय सब कहने लगे कि इन दोनों का मिलाप मानों स्नेह और परमार्थ का मिलाप है। वह तपस्वी फिर लक्ष्मण के पैरों पर गिरा, तब लक्ष्मण ने भी बड़े अनुराग के साथ उसे उठा लिया। फिर उसने सीता जी के चरण की रज को अपने माथे पर रखा। माता जानकी ने अपना पुत्र समझ उसे असीस दी। केवट ने उसे प्रणाम किया और वह उसे श्रीरामचन्द्र जी का अनु-रागी समझ उससे मिला। नेत्ररूपी दोने से स्वरूप रूपी अमृत को वह पान करके ऐसे प्रसन्न होने लगा—जैसे कोई भूखा भोजन पा कर प्रसन्न होता है। इतने

में स्त्रियाँ आपस में कहने लगीं वे माता पिता कैसे होंगे, जिन्होंने ऐसे बालकों को वन भेजा है। श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी के रूप को देख, चिन्ता और स्नेह से नर नारी विकल हो गये।

दो०—तब रघुवीर अनेक विधि, सखहिं सिखावन दीन्ह।
राम रजायसु शीश धरि, गवन भवन तिहिं कीन्ह ॥

तब श्रीरामचन्द्र जी ने अपने मित्र गुह को अनेक प्रकार का उपदेश दिया। वह श्रीराम जी की आज्ञा को माथे चढ़ा अपने घर गया।

पुनि सियराम लषण कर जोरी। यमुनहिं कीन्ह प्रणाम बहोरी ॥
गवने सीय सहित दोउ भाई। रवितनयाकर करत बड़ाई ॥
पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
राज सुलक्षण अङ्ग तुम्हारे। देखि सोच हिय होत हमारे ॥
मारग चलहु पयादेहि पाये। ज्योतिष झूठ हमारे भाये ॥
अगम पन्थ गिरि कानन भारी। तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी ॥
करि केहरि वन जाहिं न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई ॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुमहिं सिर नाई ॥

फिर श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता ने हाथ जोड़ कर यमुना को प्रणाम किया और सीता सहित दोनों भाई प्रसन्न होते और यमुना जी की बड़ाई करते चले। रास्ते में उन्हें अनेक राहगीर आते जाते मिले। वे दोनों भाइयों को सप्रेम देख कर कहते कि तुम्हारे शरीर में तो राजचिह्न हैं, किन्तु तुम्हारी यह दशा देख हमें बड़ी चिन्ता है। तुम पैदल चल रहे हो; इससे तो ज्योतिष ही झूठा पड़ गया। एक तो यह अगम रास्ता जिस पर बड़ा भारी यह पहाड़ी वन, उसमें भी तुम्हारे साथ यह सुकुमार स्त्री है। इस वन में हाथी तथा सिंह बड़े भयानक हैं, अतः यदि आज्ञा हो तो हम आपके साथ चलें। आप जहाँ तक जावेंगे—वहाँ तक आपको पहुँचा कर और प्रणाम कर हम लौट आवेंगे।

दो०—इहि विधि बूझहिं प्रेमवश, पुलक गात जल नैन।
कृपासिन्धु फेरहिं तिनहिं, करि बिनती मृदु बैन ॥

पुलकित शरीर हो और नेत्रों में जल भर वे इस प्रकार श्रीराम से पूछते हैं, किन्तु कृपासिन्धु श्रीरामचन्द्र जी उनको बड़ी नम्रता के साथ लौटा देते हैं।

जे पुर ग्राम बसहिं मगु माँहीं। तिनहिं नाग सुर नगर सिहाहीं॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुण्यमय परम सुहाये॥
जहँ जहँ रामचरण चलि जाहीं। तेहि समान अमरावति नाहीं॥
पुण्य पुञ्ज मगु निकट निवासी। तिनहिं सराहहिं सुर पुरवासी॥
जे भरि नयन विलोकहिं रामहिं। सीता लषण सहित घनश्यामहिं॥
जेहि सरसरित राम अवगाहहिं। तिनहिं देव सर सरित सराहहिं॥
जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥
परसि राम-पद-पद्म-परागा। मानति भूरि भूमि निज भागा॥

श्रीरामचन्द्र जो मार्ग में जिस ग्राम में टिकते हैं, उनकी नाग और देवलोक भी प्रशंसा करते हैं कि किस पुण्यात्मा ने किस शुभ घड़ी में ये बसाये थे, ये धन्य हैं—क्योंकि ये तो परम पुण्यमय हैं और सुन्दर हैं, जहाँ जहाँ श्रीरामचन्द्र जी के चरण पड़ते हैं—वहाँ वहाँ के समान इन्द्र की अमरावती पुरी भी नहीं है। उस मार्ग के समीप रहने वाले पुरुष बड़े पुण्यात्मा हैं—और देवलोक वासी भी उनकी प्रशंसा करते हैं। जो सीता लक्ष्मण सहित घनश्याम राम को देखते हैं और जिन तालाब और नदियों में राम स्नान करते हैं उनकी देवता, मानसरोवर और मन्दाकिनी नदी बड़ाई करते हैं। जिस वृक्ष के नीचे श्रीराम जी बैठते हैं—उसकी कल्पवृक्ष बड़ाई करते हैं और उनके चरणकमल की रज को स्पर्श कर पृथिवी भी अपने भाग्य को बड़ा मानती है।

दो०—छाँह करहिं घन बिबुधगण, बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरिबन बिहँग मृग, राम चले मगु जाहिं॥

मेघ छाया करते जाते हैं और देवतागण फूल बरसाते जाते हैं और श्रीराम जी रास्ते में पहाड़, जंगल, पक्षी और हिरनों को देखते हुए चले जाते हैं।

सीता लषण सहित रघुराई। गाँव निकट जब निसरहिं जाई॥
सुनि सब बाल बृद्ध नरनारी। चलहिं तुरत गृह काज बिसारी॥

राम लषण सिय रूप निहारी । पाइ नयन फल होहिं सुखारी ॥
सजल नयन अति पुलक शरीरा । सब भये मगन देखि दोउ वीरा ॥
बरणि न जाइ दशा तिन केरी । लही रङ्क जनु सुरमणि ढेरी ॥
एकहिं एक बोलि सिष देहीं । लोचन लाहु लेहु क्षण येहीं ॥
रामहिं देखि एक अनुरागे । चितवत चले जाहिं सँग लागे ॥
एक नयन मगु छवि उर आनी । होहिं शिथिल तन मानस बानी ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी, सीता लक्ष्मण सहित किसी गाँव के पास जा निकलते हैं, तब उनका आगमन सुन क्या बालक क्या बूढ़े, क्या पुरुष और क्या स्त्री--सभी अपने अपने घरों का काम काज छोड़ दर्शन के लिये दौड़े चले आते हैं। उनकी दशा वर्णन नहीं की जाती--मानों कङ्गालों को कौस्तुभ मणियों का ढेर मिल गया हो। एक दूसरे को बुला कर सीख देते हैं कि अपने नेत्रों को सफल कर लो। कोई कोई श्रीरामचन्द्र जी को देख प्रेम से उनके साथ हो लिये हैं और कोई नेत्रों द्वारा उनकी शोभा को हृदय में धारण कर, तन मन और वचन से शिथिल हो रहे हैं।

दो०--एक देखि बट छाँह भलि, डालि मृदुल तृण पात ।
कहहिं गँवाइय क्षणक श्रम, गवनव अबहिं कि प्रात ॥

कोई कोई सुन्दर सघन वट की छाया को देख, उसके नीचे कोमल घास और पत्तों को बिछा कर कहते हैं कि हे नाथ ! क्षण भर यहाँ विश्राम कीजिये, फिर अभी या सबेरे चले जाइयेगा।

एक कलश भरि आनहिं पानी । अँचइय नाथ कहहिं मृदुबानी ॥
सुनि प्रिय वचन प्रीति अति देखी । राम कृपालु सुशील विशेखी ॥
जानीय सीय श्रमित मन माहीं । घरिक बिलम्ब कीन्ह बट छाहीं ॥
मुदित नारि नर देखहिं शोभा । रूप अनूप देखि मन लोभा ॥
इक टक सब जोहहिं चहुँओरा । रामचन्द्र-मुख-चन्द्र चकोरा ॥
तरुण तमाल बरण तनु सोहा । देखत काम कोटि मन मोहा ॥

दामिनि वरण लषण सुठि नीके। नखशिख सुभग भावते जीके॥
मुनि पट कठिन कसे तूणीरा। सोहत करकमलन धनु तीरा॥

कोई घड़ा भर कर पानी लाता है और नम्रतापूर्वक कहता है, हे नाथ! इस जल से आचमन कीजिये। इस प्रकार के प्यारे वचन सुन कृपालु और सुशील रामचन्द्र जी बहुत प्रसन्न हुए और सीता को थकी हुई जान उस वट वृक्ष की छाया में घड़ी भर विश्राम किया। उस शोभा को स्त्री पुरुष देखते हैं और उस अनूप रूप को देख, उनका मन लुभा जाता है। रामचन्द्र जी के मुख रूपी चन्द्रमा के चारों ओर सब लोग चकोर के समान टकटकी लगाये हुए देख रहे हैं और तरुण तमाल वृक्ष के समान उनकी देह ऐसी शोभायुक्त है कि उसे देखते ही असंख्यों कामदेव मोहित हो जाते हैं। लक्ष्मण जी बिजली की तरह सुन्दर और अच्छे लगते हैं। नख से सिख तक ऐसे लगते हैं कि मन मोह लेते हैं। मुनियों जैसे वस्त्र धारण किये कमर में तरकस कसे और कमल समान कोमल हाथों में धनुष बाण लिये हुए हैं।

दो०—जटा मुकुट सीसन सुभग, उर भुज नयन विशाल।
शरद पर्व विधु बदनवर, लसत स्वेद कणजाल॥

सिर पर सुन्दर जटा जूट का मुकुट है। उनकी चौड़ी छाती है, लम्बी भुजाएँ हैं और नेत्र बड़े बड़े हैं। शरद् पूर्णिमा चन्द्रमा के समान उनके सुन्दर मुख पर पसीने की बूँदों का जाल शोभायमान है।

बरणि न जाइ मनोहर जोरी। शोभा अमित, मोरि मति थोरी॥
राम लषण सिय सुन्दरताई। सब चितवहिं मन बुधि चितलाई॥
थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दियासे॥
सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूछत अति सनेह सकुचाहीं॥
बार बार सब लागहिं पाये। कहहिं वचन मृदु सरल सुहाये॥
राजकुमारि विनय हम करहीं। तिय स्वभाव कछु पूछत डरहीं॥
स्वामिनि अविनय छमब हमारी। बिलग न मानब जानि गवाँरी॥
राजकुँवर दोउ सहज सलोने। इनते लहि द्युति मरकत सोने॥

इस मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं हो सकता क्योंकि इनकी शोभा अपार है और मेरी बुद्धि छोटी है। राम लक्ष्मण और सीता की सुन्दरता को मन लगा कर लोग देखते हैं। प्रेम के प्यासे स्त्री पुरुष ऐसे थक गये हैं, जैसे मृग मृगी दीपक को देख कर थकित रह जाते हैं। ग्राम की स्त्रियाँ सीता जी के पास जा, अति स्नेह के साथ प्रश्न करती हुई भी सकुचाती हैं। वे सब बार बार उनके पैरों पड़ती हैं और कोमल तथा सादा वचन कहती हैं। वे कहती हैं--हे राजकुमारी! हम विनती करती हैं, परन्तु स्त्री स्वभाव होने के कारण हम पूँछने में भयभीत होती हैं। अतः स्वामिनि! हमारी इस अविनय को क्षमा करना और हमको गवाँरिन समझ बुरा न मानना। ये स्वभाव ही से सुन्दर दोनों राजकुमार हैं, इनसे मरकत मणि और सुवर्ण भी शोभा पाता है।

दो०—श्यामल गौर किशोर वर, सुन्दर सुखमा ऐन।
शरद शर्वरीनाथ-मुख, शरद सरोरुहनैन॥

ये सुन्दर श्यामल गोरे और किशोर अवस्था वाले, सुन्दर शोभा के स्थान, शरद चन्द्र जैसे इनके मुख और शरद कमल समान इनके नेत्र हैं।

कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे॥
सुनि सनेहमय मञ्जुल बानी। सकुचि सीय मन महँ मुसुकानी॥
तिनहिं बिलोकि बिलोकेउ धरणी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरणी॥
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बोली मधुर वचन पिकबयनी॥
सहज स्वभाव सुभग तन गोरे। नाम लषण लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदन बिधु अँचल ढाँकी। पिय तन चितै भौंह करि बाँकी॥
खञ्जन मञ्जु तिरीछे नयनन। निजपतिकह्योतिनहिंसियसयनन॥
भईं मुदित सब ग्रामबधूटी। रङ्कन रतन राशि जनु लूटी॥

ये करोड़ों कामदेव को लजाने वाले--हे समुखी! बतलाओ तो तुम्हारे कौन हैं? प्रेम भरी कोमल वाणी को सुन सीता जी सकुच मन ही मन हँस और उन स्त्रियों को देख पृथिवी की ओर देखने लगीं। उनको दो बात का सङ्कोच है। फिर मृगनयनी कोकिलबयनी ने सकुचा कर सस्नेह कहा--सहज स्वभाव

और सुन्दर गोरे शरीर वाले और उमर में छोटे मेरे देवर हैं और उनका नाम लक्ष्मण है। फिर चन्द्रमा के समान मुख को आँचर से छिपा टेढ़ी भौंहें कर और स्वामी के शरीर की ओर देख और खञ्जन पक्षी जैसे मंजु तिरछे नयनों की सैन से सीता जी ने अपने पति को बतलाया। इस छबि को देख ग्राम की स्त्रियाँ ऐसी प्रसन्न हुईं मानों कङ्गालों ने रत्न की ढेरी लूटी हो।

दो०—अति सप्रेम सिय पाँयपरि, बहु बिधि देहिं अशीश।
सदा सुहागिनि रहहु तुम, जब लगि महि अहिशीश॥

वे बड़े प्रेम से सीता जी के चरण छू कर उनको अनेक प्रकार के अशीर्वाद देती हैं कि जब तक पृथिवी शेषनाग के माथे पर रहे, तब तक तुम सदा सुहागिन बनी रहो।

पारबती सम पति प्रिय होहू। देवि न हम पर छाँड़ब छोहू॥
पुनि पुनि विनय करहिं करजोरी। जो यहि मारग फिरिय बहोरी॥
दरशन देब जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेम पियासी॥
मधुर वचन कहि कहि परितोषी। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी॥
तबहिं लषण रघुवर रुख जानी। पूछेउ मगु लोगन मृदुबानी॥
सुनत नारि नर भये दुखारी। पुलकित अङ्ग विलोचन बारी॥
मिटा मोद मन भये मलीने। विधि निधिदीन्हलीन्हजनुछीने॥
समुझि कर्मगति धीरज कीन्हा। शोधिसुगममगुतिन्हकहिदीन्हा॥

तुम पारवती के समान अपने पति की प्यारी हो परन्तु हे देवि! तुम हम पर अपनी दया मत छोड़ना वे बार बार हाथ जोड़ यह बिनती करती हैं कि तुम इसी मार्ग से लौटना और हमको अपनी दासियाँ समझ दर्शन देती जाना। इस प्रकार सीता ने उन सब को प्रेम की प्यासी देख उनसे मीठे वचन कह उनको सन्तुष्ट किया मानो चाँदनी ने कुमोदिनी को खिला दिया। फिर लक्ष्मण जी ने श्रीरामचन्द्र जी की अनुमति जान नम्रतापूर्वक लोगों से मार्ग पूँछा। यह सुन नर नारी सब ही विकल हो उठे। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्र सजल हो गये। आनन्द तो दूर हो गया और वे मन में ऐसे उदास हुए, मानों विधाता

ने दी हुई सम्पत्ति फिर छीन ली। अन्त में अपने कर्मों का फल समझ धीरज धरा और ढूँढ कर उनको सीधा मार्ग बतला दिया।

दो०—लषण जानकी सहित वन, गमन कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय वचन कहि, लिये लाइ मन साथ॥

तब लक्ष्मण और जानकी सहित श्रीरामचन्द्र जी चल दिये। और प्रिय वचन कह कह कर लोगों को लौटाया—परन्तु उनके मनों को वे अपने साथ ही लेते गये।

फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैवहि दोष देहिं मन माहीं॥
सहित बिषाद परस्पर कहहीं। विधि करतब सब उलटे अहहीं॥
निपट निरंकुश निठुर निशंकू। जेहिं शशि कीन्ह सरुज सकलंकू॥
रूख कलपतरु सागर खारा। तेहिं पठये वन राजकुमारा॥
जो पै इनहिं दीन्ह वनवासू। कीन्ह बादि विधि भोग बिलासू॥
ये बिचरहिं मगु बिनु पदत्राना। रचे बादि विधि बाहन नाना॥
ये महि परहिं डासि कुश पाता। सुभग सेज कत कीन्ह विधाता॥
तरुतर बास इनहिं विधि दीन्हा। धवलधाम रचि कतश्रमकीन्हा॥

लौटते हुए पुरुष और स्त्रियाँ बहुत पछताती थीं और मन ही मन ब्रह्मा को दोष देती थीं। दुःख के साथ वे लोग आपस में कहते थे कि ब्रह्मा के सारे विधान उलटे हैं। वह बिलकुल निरंकुश, निर्दयी और निडर है। क्योंकि उसने चन्द्रमा को तो घटने बढ़ने का रोग और कलंक लगा दिया है और सब मनवाँछित फलों के देनेवाले को कल्पवृक्ष बनाया है। समुद्र को खारा बनाया है और उसीने इन राजकुमारों को वन में भेजा है। यदि इन्हींको वनवास दिया तो उसने भोग बिलास व्यर्थ बनाये जब ये बिना जूते के पैदल पृथिवी पर विचरते हैं तब उसने अनेक सवारियाँ क्यों बनायीं। जब ये पृथिवी पर कुश और पत्ते बिछा कर सोते हैं, तब उसने सुन्दर पलंग क्यों बनाये। यदि इन्हें तरुओं के नीचे टिकासरा देना था तो उसने बड़े बड़े राजभवनों को सृष्टि कर परिश्रम क्यों उठाया।

दो०—जो ये मुनि पटधर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
विविध भाँति भूषण बसन, बादि किये करतार॥

जब यह अति सुन्दर और सुकुमार मुनीश्वरों के वस्त्र आदि धारण किये हैं और जटाजूट बढ़ाये फिरते हैं, तब ब्रह्मा ने अनेक भाँति के वस्त्रालङ्कार व्यर्थ ही बनाये।

जो ये कन्दमूल फल खाहीं। बादि सुधादि अशन जग माहीं॥
एक कहहिं यह सहज सुहाये। आपु प्रगट भे विधि न बनाये॥
जहँलगि वेदकहहिं विधि करणी। श्रवण नयन मन गोचर बरणी॥
देखहु खोजि भुवन दशचारी। कहँ अस पुरुष कहाँ अस नारी॥
इनहिं देखि विधि मन अनुरागा। पटतर योग बनावन लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम एक न आये। तेहि ईर्षा वन आनि दुराये॥
एक कहहि हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं॥
ते पुनि पुण्यपुञ्ज हम लेखे। जे देखहिं देखिहैं जिन देखे॥

जब ये ही कन्दमूल फल खाते हैं; तब संसार में अमृतादि भोजन वृथा है। उनमें से कोई कोई कहते हैं कि यह स्वयं व्यक्त और शोभायुक्त हैं। इन्हें ब्रह्मा जी ने नहीं बनाया। वेदों में कही हुई ब्रह्मा की यावत् रचना श्रवण नयन और मन द्वारा प्रत्यक्ष सुनी देखी और विचारी जा सकती है, किन्तु तुम चौदहों भुवन खोज डालो ऐसे पुरुष और ऐसी नारी कहीं नहीं मिलेगी। इनको देख ब्रह्मा के मन में इनका जोड़ा बनाने की लालसा उत्पन्न हुई होगी और वह बनाने भी लगा होगा। किन्तु जब अनेक यत्न करने पर भी वह ऐसा न बना सका तब उसके मन में डाह पैदा हुआ और उसने इनको वन को भेज दिया। यह सुन किसी किसी ने कहा कि हम तो बहुत जानते बूझते नहीं—हम तो (इनके दर्शन पाकर) अपने ही भाग्य को सराहते हैं। हमारे निकट तो वे बड़े पुण्यात्मा हैं, जिन्होंने इन्हें देखा है और जो इन्हें देखेंगे।

दो०—इहि विधि कहि कहि वचन प्रिय, लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलि हैं मारग अगम, सुठि सुकुमार शरीर॥

वे लोग इस प्रकार प्रिय वचन कह कह नेत्रों में आँसू भर लाते हैं और मन ही मन कहते हैं कि इस कठिन मार्ग को यह सुन्दर कोमल शरीर वाले क्यों कर तै करेंगे।

नारि सनेह विकल सब होहीं। चकई साँझ समय जिमि सोहीं॥
मृदु पदकमल कठिन मग जानी। गह्वरि हृदय कहहिं मृदु बानी॥
परसत मृदुल चरण अरुणारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥
जो जगदीश इनहिं वन दीन्हा। कस न सुमनमय मारग कीन्हा॥
जो माँगे पाइय विधि पाहीं। राखिय सखि इन आँखिन माहीं॥
जे नर नारि न अवसर आये। ते सिय राम न देखन पाये॥
सुनि स्वरूप पूँछहिं अकुलाई। अब लगि गये कहाँ लगि भाई॥
समरथ धाइ विलोकहिं काई। प्रमुदित फिरहिं जन्मफल पाई॥

स्नेहवश सब स्त्रियाँ बहुत विकल हो गयीं—जैसे सन्ध्या के समय चकई विकल होती है। कमल सदृश चरणों को कोमल और मार्ग को कठिन जान वे गद्गद् कंठ से कोमल वचन कहती हैं कि इनके कोमल एवं लाल चरणों के स्पर्श से पृथिवी हमारे हृदय की तरह सकुचाती है। हे जगदीश! यदि तुम्हें इन्हें वनवास ही देना था तो तुमने मार्ग फूलों का क्यों न बना दिया। हे सखी! यदि ब्रह्मा से मुँहमाँगा मिले तो इन्हें तो नेत्रों में रखना उचित है। जो स्त्री पुरुष उस समय न आ पाये और जिन्हें सीताराम के दर्शन न होसकें, वे उनके स्वरूप का वर्णन सुन अपने साथियों से पूँछते हैं हे भाई! वे अब कितनी दूर पहुँचे होंगे? इनमें से जिनके शरीर में सामर्थ्य थी वे दौड़ कर देख आते थे और दर्शन कर सुखी मन लौटते थे।

दो०—अबला बालक वृद्धजन, कर मींजहिं पछिताहिं।
होहिं प्रेमवश लोग इमि, राम जहाँ जहँ जाहिं॥

स्त्री, बालक और बूढ़े, हाथ मींज कर पछताते हैं और जहाँ जहाँ श्रीरामचन्द्र जी जाते हैं, वहाँ वहाँ के लोग इसी प्रकार प्रेम के वशवर्त्ती हो जाते हैं।

गाँव गाँव अस होहि अनन्दा। देखि भानु-कुल कैरव चन्दा॥
जे कछु समाचार सुनि पावहिं। ते नृप रानिहिं दोष लगावहिं॥
कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहिं जिन लोचन लाहू॥
कहहिं परस्पर लोग लुगाई। बातें सरल सनेह सुहाई॥
ते पितु मातु धन्य जिन जाये। धन्य सो नगर जहाँ तें आये॥
धन्य सो शैल देश वन गाऊँ। जहँ जहँ जाहिं धन्य सो ठाऊँ॥
सुख पायो विरञ्चि रचि तेही। ये जेहि के सब भाँति सनेही॥
राम लषण सिय कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥

सूर्यवंश रूपी कुमुद वन के चन्द्र के समान श्रीराम जी को देख, प्रत्येक गाँव में ऐसा ही आनन्द होता है। जो कोई कुछ भी समाचार सुन पाता है—वही महाराज और रानी को दोषी ठहराता है। कोई कहता है महाराज बहुत अच्छे हैं, जिन्होंने हमको इनके दर्शन कराये। अन्य स्त्री पुरुष परस्पर स्नेह से सनी बातें कहते हैं कि वे माता पिता धन्य हैं, जिन्होंने इनको पैदा किया है और वही नगर धन्य है जहाँ से ये आये हैं। वे पर्वत, देश, वन और गाँव तथा स्थान भी धन्य हैं, जहाँ ये जायँगे। ब्रह्मा ने भी तो उनकी रचना कर सुख पाया है, जिनके यह सब भाँति से प्रेमी हैं। श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता जी की सुन्दर कथा वन के सब रास्तों में प्रचारित हो गयी।

दो०—इहि विधि रघुकुल-कमल-रवि, मग लोगन सुख देत।
जाहिं चले देखत विपिन, सिय सौमित्रि समेत॥

रघुकुल रूपी कमल को रवि की तरह खिलाने वाले श्रीरामचन्द्र जी, रास्ते के लोगों को सुख देते हुए, सीता, लक्ष्मण सहित वन को देखते आगे चलते चले जाते हैं।

आगे राम लषण पुनि पाछे। तापस वेष विराजत आछे॥
उभय मध्य सिय शोभित कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
बहुरि कहौं छवि जस मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहौं जिय जोही। जनु बुध विधु बिच रोहिणिसोई॥

प्रभु-पद-रेख बीच बिच सीता। धरहिं चरण मग चलत सभीता॥
सीय रामपद अङ्क बराये। लषण चलहिं मगु दाहिन बाँये॥
राम लषण सिय प्रीति सुहाई। वचन अगोचर किमि कहि जाई॥
खगमृग मगन देखि छवि होहीं। लिये चोरि चित राम बटोहीं॥

आगे श्रीराम जी हैं और उनके पीछे तपस्वी का वेष धारण किये लक्ष्मण शोभायमान हैं। इन दोनों के बीच में सीता जी उसी प्रकार सुहावनी लगती हैं जैसे ब्रह्म और जीव के बीच माया। इनकी जैसी छवि मन में बस रही है उसको कहता हूँ। मानों चन्द्रमा और बुध के बीच रोहिणी शोभ रही है। भगवान् के चरणों की रेखा के बीच बीच चरण रखती हुई सीता जी सशङ्कित चली जाती हैं और सीता तथा श्रीराम जी के चरणों के चिह्नों को बचा कर, लक्ष्मण दहिने बायें बचते चले जाते हैं। श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी जी की सुन्दर प्रीति का कौन वर्णन कर सकता है। उनकी छवि को देख वनवासी पशु पक्षी भी सुखी होते हैं, क्योंकि पथिक श्रीरामचन्द्र जी ने सब के जी को चुरा लिया है।

दो०—जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सीय सहित दोउ भाइ।
भव मग अगम अनन्द ते, बिनु श्रम रहे सिहाइ॥

जिस जिसने सीता जी सहित प्रिय दोनों पथिकों को देखा वे संसाररूप कठिन मार्ग के सुख सहित बिना श्रम ही के पार हो गये।

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहिं राम सिय लषण बटाऊ॥
राम धाम पथ जाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥
तब रघुवीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बट शीतल पानी॥
तहँ बसि कन्दमूल फल खाई। प्रात अन्हाय चले रघुराई॥
देखत वन सर शैल सुहाये। बालमीकि आश्रम प्रभु आये॥
राम दीख मुनि बास सुहावन। सुन्दर गिरि कानन जल पावन॥
सरन सरोज विटप वन फूले। गुञ्जत मञ्जु मधुप रस भूले॥
खगमृग विपुल कुलाहल करहीं। रहित वैर प्रमुदित मन चरहीं॥

अब भी जिसके मन में स्वप्न में भी पथिक श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता—तीनों बसते हैं वे श्रीराम जी के स्थान के उस मार्ग को पावेंगे-जिसको कभी कोई विरला मुनीश्वर पाता है। श्रीरामचन्द्र जी ने सीता जी को थकी हुई जान और पास ही वट वृक्ष और शीतल जल देख वे टिक गये और कन्दमूल फल खा तथा प्रातःकाल का स्नान कर वहाँ से चल दिये। वे मार्ग में सुन्दर वन, तालाब, पर्वतों को देखते हुए वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचे। श्रीराम जी ने देखा कि उस आश्रम के निकट सुन्दर वन, पर्वत हैं और निर्मल जल बह रहा है। सरोवरों में कमल खिल रहे हैं और रस से तृप्त भ्रमर उन पर गूँज रहे हैं। पशु पक्षी कोलाहल कर रहे हैं और परस्पर का स्वाभाविक वैर परित्याग कर, सुखी हो विचरते हैं।

दो०—शुचि सुन्दर आश्रम निरखि, हरषे राजिव नैन।
सुनि रघुवर आगमन मुनि, आगे आये लैन॥

उन पवित्र सुन्दर आश्रम को देख श्रीरामचन्द्र जी प्रसन्न हुए और वाल्मीकि जी उनका आगमन सुन उनकी अगवानी को आगे आये।

मुनि कहँ राम दण्डवत कीन्हा। आशिर्वाद विप्रवर दीन्हा॥
देखि राम छवि नयन जुड़ाने। करि सनमान आश्रमहिं आने॥
तब मुनि आसन दिये सुहाये। मुनिवर अतिथि प्राणप्रिय पाये॥
कन्दमूल फल मधुर मँगाये। सिय सौमित्रि राम फल खाये॥
वालमीकि मन आनँद भारी। मङ्गल मूरति नयन निहारी॥
तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले वचन श्रवण सुखदाई॥
तुम त्रिकाल दरशी मुनिनाथा। विश्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा॥
अस कहि सब प्रभु कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह वन रानी॥

श्रीरामचन्द्र जी ने मुनि को प्रणाम किया और मुनिवर्य ने उन्हें आशीर्वाद दिया। श्रीराम जी की छवि को देख उनके नेत्र शीतल हुए और बड़े सम्मान के साथ वे उन्हें अपने आश्रम में ले गये। वहाँ उन्हें सुन्दर आसन बैठने को दिये। मुनिवर को आज प्राणों से भी अधिक प्यारे अतिथि मिले हैं। उन्होंने मधुर कन्दमूल फल मँगवाये और उनको सीता, लक्ष्मण और श्रीराम जी ने खाया।

इस मङ्गलमयी मूर्ति को देख वाल्मीकि जी बहुत प्रसन्न हुए। कमल के समान हाथों को जोड़ श्रीरामचन्द्र जी श्रवणों को सुखप्रद वचन कहने लगे—हे मुनि-नाथ! आप त्रिकालदर्शी हैं और हाथ में बेर के समान सारे विश्व का आपको ज्ञान है। यह कह श्रीराम जी ने फिर अपना सारा वृत्तान्त कहा, जिस प्रकार कैकेयी ने उन्हें देशनिकाला दिया था।

दो०—तात वचन पुनि मातु मत, भाइ भरत अस राउ।
मो कहँ दरश तुम्हार प्रभु, सब मम पुण्य प्रभाउ॥

पिता की आज्ञा, माता की भलाई और भरत सदृश भाई को राज्य और मुझको आपका दर्शन—हे प्रभो! ये सब मेरे पुण्यों ही के फल हैं।

देखि पाँय मुनि राय तुम्हारे। भये सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उद्वेग न पावहिं कोई॥
मुनि तापस जिनते दुख लहहीं। ते नरेश बिनु पावक दहहीं॥
मङ्गल मूल विप्र परितोषू। दहै कोटि कुल भूसुर रोषू॥
अस जिय जानि कहिहि सो ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित तहँ जाऊँ॥
तहँ रचि रुचिर पर्ण तृणशाला। बास करौं कछु काल कृपाला॥
सहज सरल सुनि रघुवर बानी। साधु साधु बोले मुनि ज्ञानी॥
कस न कहहु अस रघुकुल केतू। तुम पालक सन्तत श्रुति सेतू॥

हे मुनिराज! आपके चरणों के दर्शन करने से हमारे सारे पुण्य सफल हो गये। अब आप जहाँ आज्ञा दें और जहाँ रहने से अन्य मुनियों को दुःख न हो—वहाँ हम रहें। क्योंकि जिन राजाओं के कारण मुनियों को क्लेश होता है वे राजा बिना अग्नि के भस्म हो जाते हैं। ब्राह्मणों की प्रसन्नता ही सब मङ्गलों की जड़ है और उनका क्रोध ही करोड़ों कुलों को जलाने वाला है। अतः आप ऐसा कोई स्थान बतलाइये जहाँ सीता और लक्ष्मण सहित मैं रहूँ और हे कृपालु! जहाँ मैं पर्णकुटी बना कर कुछ दिनों वास करूँ। ज्ञानी मुनि, श्रीरामचन्द्र जी की सहज सरल वाणी सुन साधु साधु कहने लगे। फिर बोले—हे श्रीरामचन्द्र! तुम सदा वेद की मर्य्याद को रखने वाले हो, अतः ऐसा तुम क्यों न कहो?

छं०-श्रुति-सेतु-पालक राम तुम जगदीश माया जानकी।
जो सृजति जगपालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की॥
जो सहस शीश अहीश महिधरु लषण सचराचर धनी।
सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निशिचर अनी॥

हे श्रीराम जी! तुम वेद की मर्य्यादा के रक्षक और संसार के स्वामी हो तथा सीता जी माया हैं। यह आपकी अनुमति से संसार को उत्पन्न पालन और नाश करती हैं। जो शेष जी हज़ार फणों पर धरणी को धारण किये हुए हैं—वे ही चराचर के स्वामी यह लक्ष्मण जी हैं। अतः आप देवताओं के कार्य के लिये राजाओं का शरीर धारण कर और दुष्ट राक्षसों के दलों को वध करने के अभिप्राय से जा रहे हैं।

सो०—राम स्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धिपर।
अविगत अकथ अपार, नेति नेति नित अगम कह॥

हे श्रीराम जी! आपका वचन और रूप बुद्धि के परे हैं, न तो किसी ने उनके भेद आज तक पाये और न कोई उनको वर्णन ही कर सका—क्योंकि वे ऐसे अपार हैं कि वेद भी उनको अनन्त (नेति) कह रहा है।

जग पेखन तुम देखनहारे। विधि हरि शम्भु नचावनहारे॥
तेउ न जानहिं मर्म तुम्हारा। अपर तुमहिं को जाननहारा॥
सो जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुमहिं तुमहिं ह्वै जाई॥
तुम्हरी कृपा तुमहिं रघुनन्दन। जानहिं भक्त भक्ति उर चन्दन॥
चिदानन्द मय देह तुम्हारी। विगत विकार जान अधिकारी॥
नरतनु धरेउ सन्त सुरकाजा। कहहु धरहु जस प्राकृत राजा॥
राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिय तस चाहिय नाचा॥

इस संसाररूपी खिलौने के तुम देखने वाले हो और ब्रह्मा विष्णु महेश को नचाने वाले हो। जब ये तीनों भी तुम्हारा भेद नहीं पा सकते, तब और कौन

है जो तुम्हें जान पावे। हाँ वह तुम्हें जान सकता है, जिसे तुम स्वयं जना दो और जो तुम्हें जान लेता है वह तुम्हीं सा हो जाता है। हे भक्तउरचन्दन! हे रघुनन्दन! तुम्हारी कृपा से तुम्हें तुम्हारे भक्त ही जान पाते हैं। तुम्हारी देह चिदानन्दमय और विकार रहित है अत: अधिकारी ही जानते हैं। तुमने यह मनुष्य का चोला सन्त और देवताओं के काम के लिये धारण किया है अतः साधारण राजा के समान तुम बोलते और आचरण करते हो। हे श्रीराम जी! तुम्हारे चरित्रों को देख और सुन कर, मूर्ख तो मुग्ध हो जाते हैं और विद्वान् प्रसन्न होते हैं। तुम जो कुछ कहते और करते हो—सो सब ठीक है, क्योंकि जैसा स्वाँग भरा जाय वैसा ही नाच नाचना उचित है।

दो०—पूछेउ मोहि कि रहौं कहँ, मैं कहतेउ सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहुँ कहि, तुमहिं दिखावौं ठाउँ॥

तुमने पूँछा कि मैं कहाँ रहूँ—किन्तु आपको सर्वव्यापक जान यह कहता मैं सकुचाता हूँ कि आप वहाँ रहो जहाँ आप न हो और वही स्थान रहने के लिये बता दूँ।

सुनि मुनि वचन प्रेमरस साने। सकुचि राम मन महँ मुसुकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। वाणी अमिय मधुररस बोरी॥
सुनहुँ राम अब कहौं निकेता। वसहु जहाँ सिय लषण समेता॥
जिनके श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिनके हिये सदन तव रूरे॥
लोचन चातक जिन करि राखे। रहहिं दरश जलधर अभिलाखे॥
निदरहिं सिन्धु सरितसरवारी। रूप बिन्दु लहि होहिं सुखारी॥
तिनके हृदय सदन सुखदायक। वसहु लषण सिय सह रघुनायक॥

वाल्मीकि का प्रेम रस से सना उत्तर सुन, श्रीरामचन्द्र जी सकुचाये और मन ही मन हँसे। तब तो वाल्मीकि भी हँस कर अमृत रस सी मधुर वाणी बोले—हे श्रीराम जी! सुनो, अब मैं तुम्हें स्थान बतलाता हूँ, जहाँ जा कर तुम सीता और लक्ष्मण सहित रहो। जिनके समुद्ररूपी कान तुम्हारी अनेक सुन्दर

कथारूपी अनेक नदियों के निरन्तर गिरने से नहीं भरते, उनका हृदय आपके रहने के लिये उत्तम स्थान है। जिनके नेत्र रूपी पपीहे, आपके दर्शनरूपी मेघों की इच्छा किया करते हैं और जो समुद्र*, सरिता और सरोवरों के जल की निन्दा कर तुम्हारे स्वरूपरूपी जल की बूँद ही से सुखी होते हैं, उनके हृदयरूपी मन्दिर में हे सुखदाता श्रीरामचन्द्र जी ! तुम सीता लक्ष्मण सहित जा कर बसो।

दो०—यश तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुक्ताफल गुण गण चुगहिं, वसहु राम हिय तासु॥

हे श्रीराम जी ! तुम्हारा यश मानसरोवर है, तुम्हारे गुण मोती हैं। इन मोतियों को जिनकी जिह्वा हंसिनी बन कर चुगें, तुम उन्हीं के मन में जा बसो।

प्रभु प्रसाद शुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहै नित नासा॥
तुमहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं॥
शीश नवहिं सुरगुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करिविनयविशेखी॥
कर नित करहिं रामपद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा॥
चरण राम तीरथ चलि जाहीं। राम वसहु तिनके मन माहीं॥
मन्त्रराज नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा॥
तर्पण होम करहिं विधि नाना। विप्र जेंवाइ देहिं बहु दाना॥
तुमतें अधिक गुरुहि जिय जानी। सकल भाव सेवहिं सनमानी॥

जिनकी नाक आपके प्रसाद की पवित्र सुन्दर सुगन्ध को आनन्द से सूँघती है, जो आपको अर्पण कर भोजन करते हैं, जो आपही के उतारे कपड़े और गहने पहनते हैं, जो ब्राह्मण, देवता और गुरु को देख प्रीतिपूर्वक नम्र वचन कह सिर नवाते हैं, जिनके हाथ सदा श्रीराम जी के पूजन में लगे रहते हैं, जिनको आपको छोड़ अन्य किसी का भरोसा नहीं है, जिनके चरण श्रीरामचन्द्र जी के तीर्थों में जाते हैं, हे श्रीराम ! आप उन्हींके मनों में बसो। जो तुम्हारे मन्त्र को सदा जपते हैं और परिवार सहित तुम्हारा पूजन करते हैं, जो अनेक प्रकार के होम और

* अन्य देवताओं की भक्ति।

तर्पण कर, ब्राह्मणों को भोजन कराते और उन्हें दान देते हैं। जो आपसे भी अधिक अपने गुरु को मान उनका सब प्रकार से आदर करते हैं।

दो०—सब कर माँगहिं एक फल, रामचरण रति होउ।
तिनके मन मन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ॥

और जो सब का यही एक फल चाहते हैं आपके चरणों में प्रीति हो—उन्हींके मनरूपी मन्दिर में सीता सहित आप बसें।

काम क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न क्षोभ न राग न द्रोहा॥
जिनके कपट दम्भ नहिं माया। तिनके हृदय बसहु रघुराया॥
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रशंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी। जागत सोवत शरण तुम्हारी॥
तुमहिं छाँड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिनके मन माहीं॥
जननी सम जानहिं पर नारी। धन पराय विष ते विष भारी॥
जे हरषहिं पर सम्पति देखी। दुखित होहिंपर विपति विशेखी॥
जिनहिं राम तुम प्राण पियारे। तिनके मन शुभ सदन तुम्हारे॥

जिनके मन में काम, क्रोध, मद, मान, मोह, लोभ, छोह, राग और द्रोह नहीं है, जो कपट, अहङ्कार और माया से रहित हैं, हे श्रीराम जी! आप उन्हींके हृदय में वास कीजिये। जो सब को प्रिय और सब के हितैषी हैं, जो सुख, दुःख मान, अपमान, निन्दा को समान समझते हैं, जो समझ बूझ कर सत्य किन्तु प्रिय वचन बोलते हैं, जो जागते सोते तुम्हारी शरण में रहते हैं, जो आपको छोड़ दूसरी गति नहीं जानते, हे श्रीराम जी! आप उन्हीं के मन में जा कर बसो। जो दूसरी स्त्री को माता के समान, और पराये धन को विष से भी बढ़ कर विष समझते हैं, जो दूसरों की बढ़ती देख प्रसन्न होते हैं और दूसरों के विपत्ति में देख दुःखी होते हैं, जो तुमको अपने प्राण के समान प्रिय समझते हैं, हे श्रीराम जी! उनके हृदय तुम्हारे रहने के लिये शुभ स्थान हैं।

दो०—स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम तात।
तिनके मन मन्दिर बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥

जो तुमको अपना स्वामी, मित्र, पिता, माता, गुरु और सर्वस्व समझते हैं, हे तात! तुम उन्हीं के सीता समेत दोनों भाई मन रूपी मन्दिर में निवास करो।

अवगुण तजि सब के गुण गहहीं। विप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुण जिनकी जगलीका। घर तुम्हार तिनके मन नीका॥
गुण तुम्हार समुझहिं निज दोसू। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसू॥
रामभक्ति प्रिय लागहि जेही। तेहि उर वसहु सहित वैदेही॥
जाति पाँति धन धर्म बड़ाई। प्रिय परिवार सदन समुदाई॥
सब तजि तुमहिं रहैं लवलाई। ताके हृदय वसहु रघुराई॥
स्वर्ग नरक अपवर्ग समाना। जहँ तहँ दीख धरे धनुबाना॥
मन क्रम वचन जो राउर चेरा। राम करहु ताके मन डेरा॥

जो दोषों को छोड़ सब के गुण ग्रहण करते हैं, जो गौ ब्राह्मण के हित के लिये दुःख सहते हैं, उनका हृदय आपके बसने के लिये उत्तम स्थान है। जो तुम्हारे गुणों को और अपने दोषों को समझते हैं, जिनको तुम्हारा ही भरोसा है जिनको आपकी भक्ति प्यारी लगती है, उनके मन में आप वैदेही सहित बसो। जो जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई, प्रिय परिवार, घर आदि सब को छोड़ तुममें लौ लगाता है, हे श्रीराम जी! उनके हृदय में तुम बसो। जो स्वर्ग, नरक और मोक्ष को समान जानता है, जिसे तुम सर्वत्र धनुष बाण लिये देख पड़ते हो, जो मनसा वाचा कर्मणा तुम्हारा दास है, हे श्रीराम जी! तुम उसीके मन में डेरा डालो।

दो०—जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम सन सहज सनेह।
बसहु निरन्तर तासु उर, सो राउर निज गेह॥

जिसको कभी कुछ न चाहिये और जो आपसे सहज स्नेह रखता है, उसीके हृदय में आप बसो। वही आपका निज का घर है।

इहि विधि मुनिवर ठाँव दिखाये। वचन सप्रेम राम मन भाये॥
कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक। आश्रम कहौं समय सुखदायक॥
चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥

शैल सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू॥
नदी पुनीत पुराण बखाना। अत्रितीय निज तपबल आनी॥
सुरसरि धार नाम मन्दाकिनि। जो सब पातक पोतकडाकिनि॥
अत्रिआदि मुनिवर तहँ वसहीं। करहि योग जपतप तनुकसहीं॥
चलहु सफल श्रम सबकर करहु। राम देहु गौरव गिरवरहू॥

श्रीरामचन्द्र जी को वाल्मीकि जी ने इस प्रकार अनेक रहने के स्थान बतलाये जो श्रीरामचन्द्र जी को बहुत अच्छे प्रतीत हुए। फिर मुनि ने कहा—हे भानुकुलनायक! सुनो, अब समयानुकूल सुखप्रद स्थान बतलाता हूँ। तुम चित्रकूट नामक पर्वत पर निवास करो। वहाँ तुमको सब प्रकार की सुविधा रहेगी। वहाँ का पर्वत और वन सुहावन है और हाथी, सिंह, हिरन तथा पक्षी वहाँ विहार करते हैं। पुराणों में जिसका यश वर्णित है और जिसे अत्रि मुनि की धर्मपत्नी अनसूया जी अपने तपोबल से लायी हैं-वही नदी जिसकी धार गङ्गा जल जैसी है और नाम मन्दाकिनी है-और जो पापरूपी समस्त बालकों को खाने के लिये डाकिनी हैं, वहाँ बहती है। वहाँ अत्रि आदि अनेक श्रेष्ठ मुनि रहते हैं और योगाभ्यास तथा जप तप करते हैं और बसते हैं। हे श्रीराम जी! तुम वहाँ चल कर, सब का श्रम सफल कर दो और उस सुन्दर पर्वत को गौरवान्वित करो।

दो०—चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाय।
आइ अन्हाने सरितवर, सीय सहित दोउ भाय॥

जब वाल्मीक ने चित्रकूट की अमित महिमा कही, तब सीता जी सहित दोनों भाई उस श्रेष्ठ नदी में जा कर नहाये।

रघुवर कहेउ लषण भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लषण सीय पथ उतर करारा। चहुँदिशिफिरोधनुषजिमिनारा॥
नदी पनच शर शम दम दाना। सकल कलुष कलिसाउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चूक न घात मार मुठ भेरी॥
अस कहि लषण ठाउँ दिखरावा। थल बिलोकिरघुपतिसुखपावा॥
रमेउ राम मन देवन जाना। चले सहित सुरपति परधाना॥

कोल किरात वेष धरि आये। रच्यो परण तृण सदन सुहाये ॥
बरणि न जाहिं मञ्जुद्वयशाला। एक ललित लघु एक विशाला ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से कहा—घाट बाट तो ठीक है अब कहीं ठहरने का प्रबन्ध करो। नदी पार कर लक्ष्मण जी उत्तर ओर वाले उस टीले को पसन्द किया जिसके चारों ओर धनुषाकार एक नाला बह रहा था। नदी मानों उस धनुष का रोंदा है, शम दम और दान ये बाण है और कलि के यावत् पाप उसके निशाने हैं। चित्रकूट मानों अचल शिकारी हैं, जिसका एक भी निशान नहीं चूकता—और वह एक ही मूके में काम तमाम कर देता है। यह कह लक्ष्मण जी ने वह टीला दिखलाया। जिसे श्रीरामचन्द्र जी ने भी पसन्द किया। वहाँ श्रीरामचन्द्र जी के मन को लगा जान, देवतागण, इन्द्र को आगे कर चले। वे कोल किरात का वेष धारण कर आये, और फूँस की सुन्दर कुटियाँ उन लोगोंने बनायीं। उन दोनों कुटियों की, शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। इनमें से एक बड़ी और एक छोटी थी।

दो०—लषण जानकी सहित प्रभु, राजत परण निकेत।
सोहत मदन मुनिवेष जनु, रति ऋतुराज समेत ॥

लक्ष्मण, सीता और श्रीरामचन्द्र जी उस पर्णकुटी में ऐसे शोभायमान हैं, मानों रति और वसन्त के साथ कामदेव मुनि का रूप धारण कर शोभायमान हैं।

अमर नाग किन्नर दिगपाला। चित्रकूट आये तेहि काला ॥
राम प्रणाम कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू ॥
बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भये हम आजू ॥
करि विनती दुख दुसह सुनाये। हरषित निज निज गेह सिधाये ॥
चित्रकूट रघुनन्दन छाये। समाचार सुनि सुनि मुनि आये ॥
आवत देखि मुदित मुनि वृन्दा। कीन्ह दण्डवत रघुकुल चन्दा ॥
मुनि रघुवरहि लाइ उर लेहीं। सुफल होनहित आशिष देहीं ॥
सिय सौमित्र राम छवि देखहिं। साधन सकलसुफलकरिलेखहिं ॥

उस समय देवता, नाग, किन्नर, दिक्पाल चित्रकूट में पहुँचे। श्रीराम जी ने उन सब को प्रणाम किया और देवता नेत्रों को सफल कर प्रसन्न हुए। देवताओं ने पुष्पों की वर्षा करके कहा--हे नाथ ! हम आज सनाथ हुए। फिर अपना दारुण दुःख सुना और प्रसन्न हो-वे अपने अपने स्थानों को लौट गये। चित्रकूट में श्रीरामचन्द्र जी का आगमन सुन सब ऋषि मुनि वहाँ पहुँचे। श्रीरामचन्द्रजी ने ऋषियों को आते देख उनको प्रणाम किया। मुनि श्रीरामचन्द्र जी को छाती से लगा कर सफल मनोरथ होने के अर्थ आशीर्वाद देते हैं। वे श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी की छवि देख अपनी सब साधनाओं को सफल समझते हैं।

दो०—यथायोग्य सनमानि प्रभु, विदा किये मुनि वृन्द।
करहिं योग जप यज्ञ तप, निज आश्रमन स्वछन्द॥

उन मुनियों का यथायोग्य सम्मान कर, श्रीराम जी ने उन्हें विदा किया और वे स्वच्छन्द हो अपने आश्रमों में रह कर-जप, यज्ञ, तप करने लगे।

यह सुधि कोल किरातन पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कन्दमूल फल भरि भरि दोना। चले रङ्क जनु लूटन सोना॥
तिन महँ जिन देखे दोउ भ्राता। अपर तिनहिं पूछहिं मगु जाता॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आय सबन देखे दोउ भाई॥
करहिं जोहारि भेंट धरि आगे। प्रभुहिं विलोकत अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढ़े। पुलक शरीर नयन जल बाढ़े॥
राम सनेह मगन सब जाने। कहिप्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। वचन विनीत कहहिं करजोरी॥

जब यह संवाद कोल किरातों ने सुना तब वे प्रसन्न हुए मानों उनके घर में नयी सम्पत्ति आ गयी हो। वे दोनों में कन्दमूल फल भर भर कर ऐसे दौड़े मानों कंगाल मोहरें लूटने जा रहे हों। उनमें से जिन लोगों ने दोनों भाइयों को देख लिया था-उनसे राह चलतू लोग पूँछपाँछ करते जाते थे। फिर वे आपस में श्रीरामचन्द्र जी के सौन्दर्य की चर्चा करते हुए पहुँचे और श्रीरामचन्द्र जी तथा लक्ष्मण जी के उन्होंने दर्शन किये, वे भेंट आगे रख कर प्रणाम करते और बड़े

अनुराग से अपने स्वामी को देखते थे। कोई कोई तो भीत पर लिखे चित्र की तरह अचल खड़े रह गये। उनके शरीर पुलकित हो गये और नेत्रों में आँसू भर गये। श्रीरामचन्द्र जी ने उन्हें स्नेह में डूबा जान, मीठे वचन कह कर उनका सम्मान किया। वे बार बार भगवान् को प्रणाम कर और हाथ जोड़ कर विनीत वचन कहते हैं।

दो०—अब हम नाथ सनाथ सब, भये देखि प्रभु पाय।
भाग्य हमारे आगमन, राउर कोशलराय॥

हे नाथ! अब हम सब आपके दर्शन कर सनाथ हुए। हे अवध के स्वामी! हमारे भाग्य ही से आपका यहाँ आना हुआ है।

धन्य भूमि वन पन्थ पहारा। जहँ तहँ नाथ पाँव तुम धारा॥
धन्य बिहँग मृग कानन-चारी। सुफल जन्म भये तुमहिं निहारी॥
हम सब धन्य सहित परिवारा। देखि नयन भरि दरश तुम्हारा॥
कीन्ह बास भल ठाँव विचारी। इहाँ सकल ऋतु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥
वन बेहड़ गिरि कन्दर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥
तहँ तहँ तुमहिं अहेर खेलाउब। सर निर्झर सब ठाँव दिखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥

हे नाथ! वह पृथिवी, वन, मार्ग और पहाड़ धन्य हैं, जिन पर आपके चरण पड़ चुके हैं। वे पक्षी, मृग और वनचारी धन्य हैं, जिन्होंने आपके दर्शन कर अपना जन्म सफल कर लिया है। परिवार सहित हम लोग भी धन्य हैं जिन्होंने नेत्र भर आपके दर्शन पाये हैं। आपने ढूँढ कर यहाँ रहने का स्थान बहुत अच्छा पसन्द किया है। यहाँ आपको सब ऋतुओं में सुख मिलेगा। हम सब लोग हर प्रकार से आपकी सेवा करेंगे और हाथी, सिंहों, सर्पों और शार्दूलों को दूर भगाते रहा करेंगे। हे नाथ! वन, बेहड़, पहाड़, कन्दरा और खोह-सभी हमारी तिल तिल देखी हुई हैं। जहाँ तहाँ हम आपको शिकार खिलावेंगे और

सरोवर झरने आदि दिखलावेंगे। हे नाथ! हम कुटुम्ब सहित आपके दास हैं, हमें आज्ञा देते आप सकुचाइयेगा नहीं।

दो०—वेद वचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुणा ऐन।
वचन किरातन के सुनत, जिमि पितु बालक बैन॥

जिनकी गति को न तो वेद और न मुनियों के मन ही जान पाते हैं, वे करुणामय भगवान् उन किरातों के वचन वैसे ही (रुचिपूर्वक) सुनते हैं जैसे पिता अपने बालकों के वचन सुनता है।

रामहिं केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननहारा॥
राम सकल बनचर परितोषे। कहि मृदु वचन प्रेम परिपोषे॥
बिदा किये सिरनाय सिधाँये। प्रभु गुण कहत सुनत घर आये॥
यहि विधि सीय सहित दोउ भाई। बसहिंबिपिनसुरमुनि सुखदाई॥
जब ते आइ रहे रघुनायक। तब ते भो वन मङ्गलदायक॥
फूलहिं फलहिं विटप विधिनाना। ललित मञ्जु बरबेलि बिताना॥
सुरतरु सरिस स्वभाव सुहाये। मनहुँ बिबुध वन परिहरि आये॥
गुञ्जत मञ्जुल मधुकर श्रेनी। त्रिविध बयारि बहै सुखदेनी॥

जिसको जानना हो वह जान लें कि श्रीरामचन्द्र जी को केवल प्रेम ही प्यारा है। श्रीरामचन्द्र जी ने सब वन के बसने वालों को सन्तुष्ट किया और मधुर वचनों से प्रेमपूर्वक उन्हें धीरज बँधाया तथा उनको बिदा किया। वे प्रणाम कर और रास्ते भर प्रभु के गुणों को कहते सुनते अपने अपने घरों को लौट गये। इस प्रकार सुर मुनि सुखदायी सीता जी सहित दोनों भाई वन में निवास करने लगे। जब से श्रीरामचन्द्र जी वन में आये हैं, तब से वह मङ्गलदायक हो गया है। अनेक प्रकार के सुन्दर वृक्ष फलते फूलते हैं और उनके ऊपर सुन्दर बेलों के वितान तने हुए हैं। वे सब कल्पवृक्ष की तरह स्वभाव ही से शोभायमान हैं, मानों वे सब नन्दनकानन को छोड़ कर चले आये हैं। वहाँ सुन्दर भ्रमरों के झुण्ड गूँजते हैं और सुखप्रद त्रिविध हवा चल रही है।

दो०—नीलकण्ठ कलकण्ठ शुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहग, श्रवणसुखद चित्त चोर॥

नीलकण्ठ, कोकिल, तोता, पपीहा, चकवा और चकोर-आदि भाँति भाँति के पक्षी कानों को सुख देने वाली और चित्त को चुराने वाली बोलियाँ बोल रहे हैं।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। विगत बैर बिहरहि यक संगा॥
फिरत अहेर राम छवि देखी। होहिं मुदित मृगवृन्द विशेखी॥
विबुध बिपिन जहँ लग जगमाहीं। देखि राम वन सकल सिहाहीं॥
सुरसरिसरस्वति दिनकर-कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या॥
सब सर सिन्धु नदी नद नाना। मन्दाकिनि कर करहिं बखाना॥
उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मन्दर मेरु सकल सुरबासू॥
शैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट यश गावहिं तेते॥
बिन्ध्य मुदित मन सुख न समाई। बिनु श्रम बिपुल बड़ाई पाई॥

हाथी, सिंह, बन्दर, शूकर, हिरन स्वाभाविक वैर भाव छोड़, एक संग खेल रहे हैं। अनेक हिरनों के झुण्ड शिकार खेलते हुए श्रीरामचन्द्र जी की छवि को देख प्रसन्न होते हैं। संसार में जहाँ तक देवताओं के रहने के वन हैं, वे सब श्रीरामचन्द्र जी के रहने के वन को देख उसकी सराहना करते हैं। गङ्गा, सरस्वती, यमुना, नर्मदा और गोदावरी आदि बड़ी बड़ी नदियाँ तथा समस्त सरोवर और सागर तथा नदी नाले मन्दाकिनी की प्रशंसा करते हैं। उदयाचल, अस्ताचल, कैलास, मन्दराचल सुमेरु आदि सुन्दर और देवताओं के रहने के पर्वत तथा हिमालयादि पर्वत सब चित्रकूट की बड़ाई करते हैं। विन्ध्याचल के मन में बड़ा ही आनन्द है। वह मारे सुख के फूला अङ्ग नहीं समाता। क्योंकि उसे तो बिना श्रम ही गौरव प्राप्त हुआ है।

दो०—चित्रकूट के विहँग मृग, बेलि बिटप तृण जाति।
पुण्य पुञ्ज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति॥

देवता लोग रात दिन कहा करते हैं कि चित्रकूटवासी पक्षी, मृग, बेल, वृक्ष और घास पात बड़े पुण्यात्मा और धन्य हैं।

नयनवन्त रघुपतिहि बिलोकी। पाइ जन्म फल होहिं बिशोकी ॥
परसि चरण रज अचर सुखारी। भये परमपद के अधिकारी ॥
सो बन शैल सुभाय सुहावन। मङ्गलमय अतिपावन पावन ॥
महिमा कहैा कवन विधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू ॥
पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सियराम लषण रहे आई ॥
कहि न सकहिंसुखभाजसकानन। जो शत सहस होहिं सहसानन ॥
सो मैं बरणि कहैा विधि केहीं। डावर कमठ कि मन्दर लेहीं ॥
सेवहिं लषण कर्म मन बानी। जाइ न शील सनेह बखानी ॥

जो नेत्र वाले हैं वे तो श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन पा कर शोकरहित हो जाते हैं और अपना जीवन सफल कर लेते हैं। जो भूमि पर्वत आदि अचल पदार्थ हैं वे चरण की रज के स्पर्श से परम पद के अधिकारी होते हैं। वह वन, और पहाड़ स्वभाव ही से सुन्दर मङ्गलमय और बड़े पवित्र को भी पवित्र करने वाला है। जहां पर स्वयं श्रीरामचन्द्र जी ने निवास किया, उसका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकता हूं। जिस जगह श्रीराम, लक्ष्मण और जानकी क्षीरसागर और अयोध्या को तज कर रहे उसकी बड़ाई कौन कर सकता है। जङ्गल में जैसा मङ्गल हुआ उसे यदि शेष जी भी कहना चाहे तो नहीं कह सकते। फिर मैं उसका वर्णन किस प्रकार कर सकता हूँ। कहीं तालाब का कछुआ भी मन्दराचल को उठा सकता है। श्रीराम जी की सेवा लक्ष्मण जी मनसावाचा कर्मणा करते हैं उनका शील और स्नेह का वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो०—क्षण क्षण सिय लखि रामपद, जानि आपु पर नेह।
करत लषण सपने न चित्त, बन्धु मातु पितु गेह ॥

प्रत्येक क्षण सीताराम के चरणों का दर्शन कर, अपने ऊपर उनका स्नेह समझ लक्ष्मण अपने अन्य भाइयों, माता पिता और अयोध्या को स्वप्न में भी कभी याद नहीं करते।

राम संग सिय रहहिं सुखारी। पुरपरिजन गृह सुरति बिसारी ॥
क्षणक्षण पियबिधुबदननिहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोरकुमारी ॥

नाह नेह नित बढ़त विलोकी । हर्षित रहत दिवस जिमि कोकी ॥
सिय मन रामचरण अनुरागा । अवध सहससम बन प्रिय लागा ॥
पर्णकुटी प्रिय प्रीतम संगा । प्रिय परिवार कुरंग बिहंगा ॥
सासुससुरसममुनितियमुनिवर । अशन अमियसम कन्दमूलफर ॥
नाथ साथ साथरी सुहाई । मदन शयन शतसम सुखदाई ॥
लोकप होहिं विलोकत जासू । तेहि किमि मोहै विषय विलासू ॥

सीता जी भी श्रीरामचन्द्र जी के साथ रह कर, इतनी प्रसन्न हैं कि नगर, कुटुम्ब और घर को भूल गयी हैं । प्रत्येक क्षण पति के चन्द्र के सदृश मुख मण्डल को देख ऐसी प्रसन्न होती हैं ; जैसे चकोर की बच्चा चन्द्र को देख कर, प्रसन्न होती है । वे अपने ऊपर अपने स्वामी का नेह बढ़ते देख ऐसी प्रसन्न रहती हैं, जैसे चकवी दिन में । सीता जी को श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में स्नेह होने के कारण, वन, अयोध्या से सहस्रगुणा अधिक अच्छा अथवा प्यारा लगा । श्रीरामचन्द्र जी के साथ पर्णकुटी अच्छी लगी और पशु पक्षी कुटुम्बी जैसे जान पड़े । मुनि और उनकी स्त्रियाँ ससुर सास, जैसे जान पड़ीं और कन्दमूल फल अमृत के समान स्वादिष्ट जान पड़े । श्रीरामचन्द्र जी के साथ रहने के कारण तृण कुश आदि की चटाई सीता जी को कामदेव के सजे १०० पलंगों के समान जान पड़े । जिसके कृपाकटाक्ष से लोकपाल हो जाते हैं—स्वयं क्या विषयभोग मोहित कर सकते हैं ।

दो०—सुमिरत रामहिं तजहिं जन, तृण सम विषय विलास ।
राम प्रिया जगजननि सिय, कछु न आचरज तास ॥

जिन श्रीरामचन्द्र जी के स्मरण मात्र से लोग विषयभोगों को तिनके की तरह छोड़ दिया करते हैं, उन्हीं की प्यारी स्त्री और जगज्जननी जानकी जी ने यदि उन्हें छोड़ दिया तो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।

सीयलषणजेहिविधिसुखलहहीं । सोइ रघुनाथ करैं सोइ कहहीं ॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी । सुनहिं लषणसिय अतिसुखमानी ॥
जब जब राम अवध सुधिकरहीं । तब तब वारि बिलोचन भरहीं ॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई । भरत सनेह शील सेवकाई ॥

कृपासिन्धु प्रभु होहि दुखारी। धीरज धरहिं कुसमय बिचारी ॥
लखिसिय लषण बिकल ह्वै जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुहर परिछाहीं ॥
प्रिया बन्धुगति लखि रघुनन्दन। धीर कृपालु भक्त-उर-चन्दन ॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनिसुखलहहिंलषण अरु सीता ॥

श्रीरामचन्द्र जी वही करते और कहते हैं जिससे लक्ष्मण और जानकी सुख पावें। श्रीरामचन्द्र जी पुरानी कथाएँ और कहानी कहते और लक्ष्मण तथा जानकी उन्हें सुन बहुत प्रसन्न होते हैं। श्रीराम जी को जब कभी अयोध्या का स्मरण हो आता है, तब उनके नेत्रों में आँसू भर आते हैं। माता, पिता, कुटुम्बी भाई भरत और उनके प्रेम, शील और उनकी सेवा को स्मरण कर, कृपासिन्धु श्रीराम जी दुःखी होते हैं, परन्तु कुसमय समझ धैर्य धारण कर लेते हैं। सीता और लक्ष्मण श्रीरामचन्द्र जी को दुःखी देख, ऐसे विकल और दुःखी हो जाते हैं, जैसे मनुष्य की नक़ल उसकी परछाईं करती है। धीर, कृपालु और भक्तों के हृदय के चन्दन, श्रीरामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण की यह दशा देख, उनका मन बहलाने को कोई पवित्र कथा कहने लगते हैं और उसे सुन लक्ष्मण और सीता प्रसन्न हो जाती हैं।

दो०—राम लषण सीता सहित, सोहत पर्णनिकेत।
जिमि वासव बस अमरपुर, शची जयन्त समेत ॥

श्रीरामचन्द्र जी अपने भाई लक्ष्मण और अपनी भार्या जानकी जी सहित उस पर्णकुटीर में उसी प्रकार शोभायमान हैं, जैसे इन्द्र अपनी पत्नी शची और पुत्र जयन्त के साथ अमरावतीपुरी में शोभायुक्त होते हैं।

जुगवहिं प्रभु सिय अनुजहि कैसे। पलक विलोचन गोलक जैसे ॥
सेवहिं लषण सीय रघुवीरहिं। जिमि अविवेकी पुरुष शरीरहिं ॥
यहिविधिप्रभु वन बसहिं सुखारी। खगमृग सुर तापस हितकारी ॥
कहेउँ राम वन गवन सुहावा। सुनहुँ सुमन्त अवध जिमिआवा ॥
फिरेउ निषाद प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेउ आई ॥
मन्त्री विकल विलोकि निषादू। कहि न जाय जस भयउ विषादू ॥

राम राम सिय लषण पुकारी । परेउ धरणि तल व्याकुल भारी ॥
देखि दखिन दिशिहय हिहिनाहीं । जिमि बिनु पङ्ख बिहग अकुलाहीं ॥

श्रीरामचन्द्र जी, सीता और लक्ष्मण की वैसे ही रक्षा करते हैं जैसे पलक, नेत्रों की और लक्ष्मण जी तथा जानकी जी उसी प्रकार रघुनाथ जी की सेवा करते हैं, जिस प्रकार अविवेकी पुरुष शरीर की करता है। खग, मृग, तपस्वी और देवताओं के हितैषी श्रीरामचन्द्र जी इस प्रकार प्रसन्न हो वन में बसते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी का वनगमन सुन्दर रीति से कह अब हम सुमन्त का अयोध्यापुरी में पहुँचना वर्णन करते हैं। जब निषाद भगवान् को पहुँचा कर लौटा, तब उसने मन्त्री सहित खाली रथ को वहाँ ही खड़ा पाया—जहाँ वह उसे पहले खड़ा देख गया था। मन्त्री को विकल देख निषाद को जैसा दुःख हुआ वह कहा नहीं जा सकता। वह हा राम! हा लक्ष्मण! हा सीता! कहता हुआ तथा व्याकुल हो पृथिवी पर पड़ा लोट रहा था और दक्षिण दिशा की ओर देख देख कर घोड़े हिनहिना रहे थे—मानों बिना पंख के पक्षी विकल हो रहे हों।

दो०—नहिं तृण चरहिं न पियहिं जल, मोचत लोचन बारि ।
ब्याकुल भयउ निषाद गण, रघुबर बाजि निहारि ॥

वे घोड़े न तो घास खाते हैं और न जल ही पीते हैं। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारें बह रही हैं। निषाद और उनके साथ वाले श्रीरामचन्द्र जी के घोड़ों की यह दशा देख बहुत दुःखी हुए।

धरि धीरज तब कहहिं निषादू । अब सुमन्त परिहरहु विषादू ॥
तुम पण्डित परमारथ ज्ञाता । धरहु धीर लखि वाम बिधाता ॥
विविधकथा कहि कहि मृदुबानी । रथ बैठारेउ बरबस आनी ॥
शोकशिथिलरथसकहि न हाँकी । रघुबर विरह पीर उर बाँकी ॥
तरफराहिं मगु चलहिं न घोरे । वन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे ॥
अटकिपरहिंफिरिचितवहिं पोछे । राम वियोग विकल दुख तीछे ॥

जो कह राम लषण बैदेही। हिकरि हिकरि हय हेरहिं तेही॥
बाजिबिरहगतिकिमिकहिजाती। बिनुमणिफणिकविकलजेहिभाँती॥

तब धैर्य धारण कर के निषाद कहने लगा—हे सुमन्त्र ! अब व्याकुल मत हो। तुम तो पण्डित और परमार्थ के जानने वाले हो। यह सब ब्रह्मा के वाम होने का उपद्रव समझ तुम धीरज रखो। अनेक मधुर शब्दों से युक्त कथाएँ कह-कह ज़बरदस्ती उठा कर निषाद ने सुमन्त्र को रथ पर बिठाया। किन्तु मारे शोक के सुमन्त्र तो शिथिल हो गये थे अतः वे रथ न हाँक सके। उनके हृदय में श्रीरामचन्द्र जी का वियोग खटक रहा था। घोड़े खड़े तड़फड़ाते थे किन्तु चलते न थे, मानों बनैले हिरनों को ला कर किसी ने रथ में जोत दिया हो। कुछ दूर चल वे अड़ जाते थे और वे श्रीरामचन्द्र जी के वियोग में दुःखी फिर कर पीछे देखते थे। जो कोई श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी का नाम उनके सामने लेता है उसकी ओर हिनहिना कर वे देखने लगते हैं। घोड़ों की वियोग-वेदना का वर्णन करना असम्भव है। वे मणिहीन सर्प की तरह विकल थे।

दो०—भयेउ निषाद विषाद वश, देखत सचिव तुरंग।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिये सारथी संग॥

मन्त्री के घोड़ों की दशा देख निषाद भी दुःखी हो गया और चार चतुर उसने नौकर बुला कर, सारथी के साथ कर दिये।

गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरह विषाद बरणि नहिं जाई॥
चले अवध लै रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन विषादा॥
सोच सुमन्त विकल दुख दीना। धिक जीवन रघुबीर विहीना॥
रहिहि न अन्तहु अधम शरीरू। यश न लहेउ बिछुरत रघुबीरू॥
भये अयश अघभाजन प्राना। कौन हेतु नहिं करत पयाना॥
अहह मन्दमति अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका॥
मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहुँ कृपण धन राशि गवाँई॥
बिरद बाँधि बर बीर कहाई। चलेउ सुभट जनु समर पराई॥

गुह सारथी को पहुँचा कर लौट तो आया, किन्तु श्रीरामचन्द्र जी के वियोग का दुःख जैसा उसे हुआ, उसका वर्णन हो नहीं सकता। चारों निषाद उस रथ को ले अयोध्या को चले, किन्तु वे भी बहुत दुःखी थे। सुमन्त्र दुःखी और उदास हो सोचते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी के बिना जीने को धिक्कार है। यह अधम शरीर अन्त में रहने वाला तो है नहीं—किन्तु रघुनाथ जी का वियोग होते ही यह यश क्यों नहीं ले लेता। हा! मेरे प्राण अपयश और पाप के पात्र बन गये, नहीं तो यह क्यों शरीर नहीं छोड़ते। अरे हृदय! तू बड़ा मन्दमति है कि तूने समय हाथ से निकल दिया—पर अब भी तो तेरे दो टूक नहीं होते। हाथों को मल और सिर को धुन सुमन्त्र ऐसे ही पछताते हैं जैसे कोई सूम धन गँवा कर पछताता है। जैसे कोई नामी योद्धा, बाना बाँध कर, और बड़ा वीर कहला कर, रणक्षेत्र में पहुँचे किन्तु वहाँ से भाग कर पछतावे।

दो० जिमि बिबेकी बेदबिद, सम्मत साधु सुजाति।
जिमि धोखे मद पान कर, सचिव सोच तेहि भाँति॥

जिस प्रकार वेदवेत्ता, ज्ञानी, कुलीन, चतुर और श्रेष्ठ ब्राह्मण धोखे में पड़ मदिरा पान कर पछताता है, ऐसे ही सुमन्त्र भी पछताने लगे।

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता कर्म मन बानी॥
रहै कर्मबश परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुण दाहू॥
लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनै न श्रवण विकल मति भोरी॥
सूखो अधर लागि मुँह लाटी। जिय न जाइ उर अवधि कपाटी॥
विवरण भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी॥
हानि गलानि विपुल मन व्यापी। यमपुर पन्थ सोच जिमि पापी॥
वचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह कहिहौं मैं जाई॥
राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहिं विलोकत सोई॥

जिस प्रकार मनसा वाचा कर्मणा सती चतुर कुलीन स्त्री, कर्म के अधीन पति को छोड़ दुःखी हो, उसी प्रकार सुमन्त्र बड़े दुःखी हुए। नेत्रों में जल भर जाने के कारण दृष्टि मन्द पड़ गयी, कानों से कम सुनाई पड़ने लगा और घबड़ा-

हट के मारे मति भी चक्कर में पड़ गई। होठों पर पपड़ी पड़ गयी और वे हाँफने लगे। तिस पर भी प्राण नहीं निकलते, क्योंकि वहाँ तो चौदह वर्ष के अवधि-रूपी कपाट जड़े हैं। उनका रूप रङ्ग ऐसा मन्द पड़ गया है कि उनकी ओर देखने को मन नहीं चाहता, मानों वे अपने माता पिता को मार कर आये हैं। श्रीराम चन्द्र जी के वियोग को उन्होंने हानि समझी और इससे उनके मन में ऐसी ग्लानि उत्पन्न हुई मानों यमपुर के मार्ग में कोई पापी जाता हुआ अपने मन में ग्लानि उत्पन्न होने के कारण उदास होता हो। उनके मुँह से बोल तो निकलता नहीं, किन्तु मन ही मन वे पछता रहे हैं और सोचते हैं कि अब मैं अयोध्या किस प्रकार जाऊँ। रामरहित इस रथ को जो कोई देखेगा— वही मुझे लज्जित करेगा।

दो०—धाइ पूछिहहिं मोहि जब, विकल नगर नर नारि।
उतर देब मैं सबहिं तब, हृदय वज्र बैठारि॥

जिस समय व्याकुल हो नगर के नरनारी दौड़ कर मुझसे पूँछेंगे, तब हृदय पर वज्र रख कर मुझे उत्तर देना पड़ेगा।

पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिनहिं विधाता॥
पुछिहहिं जबहिं लषण महतारी। कहिहौं कौन सँदेस सुखारी॥
रामजननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छ जिमि धेनु लवाई॥
पूछत उतर देब मैं तेही। गे वन राम लषण वैदेही॥
जेइ पूछिहि तेहि उत्तर देबा। जाइ अवध अब यह सुख लेबा॥
पूछहिं जबहिं राउ दुख दीना। जीवन जासु राम आधीना॥
देहौं उतर कवन मुँह लाई। आयउँ कुशल कुँवर पहुँचाई॥
सुनत लषण सिय राम सँदेशू। तृण इव तनु परिहरहि नरेशू॥

हे विधाता! जब सब माताएं दीन दुखी हो मुझसे प्रश्न करेंगी—तब मैं उनको क्या उत्तर दूँगा। जिस समय लक्ष्मणजी की माता पूँछेगी, उस समय उसके मन को प्रसन्न करने वाला मैं क्या उत्तर दूँगा? जब श्रीरामचन्द्र जी की माता दौड़ी दौड़ी आवेंगी—मानों बछड़े की याद कर, गौ दौड़ कर आयी हो—तब क्या मैं उनके प्रश्न के उत्तर में यह कहूँ कि राम लक्ष्मण वैदेही वन को

गये। जो पूँछेगा उसे यही उत्तर दूँगा और अयोध्या में जा अब यही सुख लूटूँगा। जिनका जीना राम के अधीन है वे दीनदुखी महाराज जब पूँछेंगे, तब मैं किस मुँह से उनको यह उत्तर दूँगा कि मैं राजकुमारों को सकुशल वन में पहुँचा आया! रामचन्द्र लक्ष्मण और सीता का सन्देसा सुन महाराज तो तिनके की तरह शरीर छोड़ देंगे।

दो०—हृदय न विदरत पङ्क जिमि, बिछुरत प्रीतम नीर।
जानत हैं। मोहि दीन्ह विधि, यमयातना शरीर॥

जिस प्रकार प्यारे जल के बिछुड़े कीच फट जाती है, उसी प्रकार प्यारे राम के वियोग में हृदय नहीं फटता, इससे यह जान पड़ता है कि विधाता ने यह यमयातना मेरे शरीर को दी है।

यहि विधि करत पन्थ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथ आवा॥
बिदा किये करि विनय निषादू। फिरे पाँय परि विकल विषादू॥
पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुरु ब्राह्मण गाई॥
बैठि विटप तर दिवस गवाँवा। साँझ समय तेइ अवसर पावा॥
अवध प्रवेश कीन्ह अँधियारे। पैठ भवन रथ राखि दुआरे॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाये। भूप द्वार रथ देखन आये॥
रथ पहिचानि बिकल लखि घोरे। गलहिं गात जिमि आतप ओरे॥
नगर नारि नर व्याकुल कैसे। निघटत नीर मीनगण जैसे॥

इस प्रकार पछताते हुए सुमंत्र रथ सहित तमसा नदी के तट पर पहुँचे। तब सुमंत्र ने विनय कर चारों निषादों को बिदा किया और वे दुःख में बिकल हो पैरों पड़ पीछे चल दिये। मंत्री नगर में घुसते वैसे ही लज्जित होते हैं जैसे गुरु ब्राह्मण और गौ का मारने वाला लज्जित होता है। सुमंत्र दिन भर एक वृक्ष के नीचे बैठे रहे और जब साँझ हुई तब अवसर देख अंधेरे में नगर में घुसे। फिर रथ को ड्योढ़ी पर छोड़ वे भीतर चले गये। जिन जिन ने रथ के लौटने का सवाद सुना—वे सब वहाँ रथ देखने गये। रथ को पहचान और घोड़ों को विकल देख देखने वालों के शरीर वैसे ही छीजने लगे, जैसे धूप से ओले।

नगर निवासी नरनारी वैसे ही विकल हैं जैसे तालाब का पानी घट जाने से मछलियाँ विकल होती हैं।

दो०—सचिव आगमन सुनत सब, विकल भयो रनिवास।
भवन भयङ्कर लाग तेहि, मानहुँ प्रेत निवास॥

अकेले मंत्री का आना सुन—सारा रनवास विकल हुआ और राजभवन उनको प्रेत के रहने के घर की तरह भयङ्कर जान पड़ने लगा।

अति आरति सब पूछहिं रानी। उतर न आव विकल भइ बानी॥
सुनै न श्रवण नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा॥
दासिन्ह दीख सचिव विकलाई। कौशल्या गृह गईं लिवाई॥
जाइ सुमन्त दीख कस राजा। अमिय रहित जस चन्द्र विराजा॥
अशन न शयन विभूषण हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना॥
भूपति विकल परयो यहि भाँती। सुरपुर तें जनु खस्यो ययाती॥
लेत सोच भरि छन छन छाती। जनु जरि पङ्ख परेउ सम्पाती॥
को कहि सकै भूप बिकलाई। रघुवर विरह अधिक अधिकाई॥
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लषण वैदेही॥

सब रानियाँ अत्यन्त दुखी हो पूँछती हैं, किन्तु सुमंत्र को उत्तर नहीं देते बनता—उनका बोल बन्द है न तो उनके कानों को सुनाई पड़ता और न नेत्रों को सुझ पड़ता है—वे हर किसी से यही पूँछते हैं कि महाराज कहाँ हैं? दासियों ने जब मंत्री को इस प्रकार विकल देखा—तब वे उन्हें कौशल्या जी के भवन में लिवा ले गयीं। वहां जो मंत्री ने राजा को देखा कि अमृतशून्य चन्द्रमा विराजमान है। राजा पलंग-बिछौना और आभूषणों को छोड़ अत्यन्त मलिन वेष से पृथिवी पर पड़े हैं। राजा पड़े पड़े उसाँसे ले रहे हैं—मानों स्वर्ग से गिरे हुए ययाति उसाँसे लेते हों। सोच से वे क्षण क्षण में छाती भर लेते हैं मानों पंख जलने से सम्पाती पड़ा है। वे बार बार राम, लक्ष्मण और जानकी जी का नाम ले उन्हें स्मरण करते हैं।

दो०—देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेसि दण्ड प्रणाम।
सुनत उठे व्याकुल नृपति, कहु सुमन्त कहँ राम॥

सुमंत्र, ने महाराज को देख और "महाराज की जय हो" कह प्रणाम किया। मंत्री का शब्द सुनते ही महाराज हड़बड़ा कर उठ बैठे और पूँछा—"सुमंत्र, बतलाओ राम कहाँ हैं"?

भूप सुमन्त लीन्ह उर लाई। बूड़त कछु अधार जनु पाई॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूछत राउ नयन भरि वारी॥
राम कुशल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लषण वैदेही॥
आनेहु फेरि कि वनहि सिधाये। सुनत सचिव लोचन जल छाये॥
शोक विकल पुनि पूछ नरेशू। कहु सिय राम लषण संदेशू॥
राम रूप गुण शील सुभाऊ। सुमिर सुमिर उर सोचत राऊ॥
राज्य सुनाय दीन वनवासू। सुनि मन भयउ न हर्ष हरासू॥
सो सुत बिछुरत गये न प्राना। को पापी जग मोहिं समाना॥

महाराज ने सुमन्त्र को छाती से लगा लिया मानों बूड़ते हुए को सहारा मिला। बड़ी प्रीति के साथ अपने पास बैठा कर और नेत्रों में जल भर वे पूँछते हैं—प्रेमी मित्र! श्रीरामचन्द्र जी का कुशल सुनाओ। श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता कहाँ हैं? लौटा कर उन्हें लाये या वे वन को ही चले गये? इन प्रश्नों को सुन सुमन्त्र के नेत्रों में आंसु भर आये। फिर शोक से विकल हो महाराज ने पूँछा कि सीता, राम और लक्ष्मण का सन्देसा कहो। राम के गुण, स्वरूप और शील तथा स्वभाव को स्मरण कर महाराज सोचते हैं हा! मैंने राज्य देना कह कर उनको वनवास दिया—यह सुन कर भी जिसका मन प्रसन्न और तिल भर भी मैला न हुआ—उस पुत्र के बिछुड़ने पर भी यदि मेरे प्राण न निकलें, तो मुझसे बढ़ कर पापी इस संसार में दूसरा और कौन हो सकता है।

दो०—सखा राम सिय लषण जहँ, तहाँ मोहिं पहुँचाउ।
नाहित चाहत चलन अब, प्राण कहौं सतिभाउ॥

हे मित्र ! मुझे वहीं ले चल, जहाँ सीता, राम और लक्ष्मण हैं—नहीं तो सच समझना मेरे प्राण निकलना चाहते हैं ।

पुनि पुनि पूछत मन्त्रिहि राऊ। प्रीतम सुवन संदेस सुनाऊ ॥
सुनहु सखा सोइ करिय उपाऊ। राम लषण सिय आनि दिखाऊ ॥
सचिव धीर धरि कह मृदुबानी। महाराज तुम पण्डित ज्ञानी ॥
वीर सुधीर धुरन्धर देवा। साधु समाज सदा तुम सेवा ॥
जन्म मरण सब दुख सुख भोगा। हानि लाभ प्रियमिलनवियोगा ॥
काल कर्म वश होहिं गुसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं ॥
सुख हर्षहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ समधीर धरहिं मन माहीं ॥
धीरज धरहु विवेक विचारी। छाँड़िय सोच सकल हितकारी ॥

महाराज बारम्बार मन्त्री से कहते हैं कि हे मित्र ! पुत्रों का सन्देसा सुनाओ। हे मित्र ! ऐसा कोई उपाय करो, जिससे राम, लक्ष्मण और सीता जी को मैं आँखों देखूँ। तब मन्त्री ने धीरज धर कोमल वाणी से कहा—हे महाराज ! तुम तो पण्डित और ज्ञानी हो। तुम बड़े धैर्य्यवान् वीर और भार धारण करने में देवता के समान हो और तुमने सदा साधुओं की सेवा की है। जन्म, कर्म सुख, दुःख का भोग, हानि लाभ, प्रिय का मिलन और वियोग—हे राजन् ! ये सब पराधीन दिन रात की तरह काल कर्म के वशवर्त्ती हैं। मूर्ख सुख में प्रसन्न होते और दुःख में रोते हैं ; परन्तु बुद्धिमान् और धीर दोनों को बराबर समझ मन में धैर्य्य रखते हैं। ज्ञान से विचार धैर्य्य रखो, तुम तो सब के हितैषी हो, अतः तुम सोच मत करो।

दो०—प्रथम बास तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर।
न्हाय रहे जल पान करि, सिय समेत दोउ वीर ॥

पहले दिन तो श्रीराम जी तमसा तट पर ठहरे, दूसरे दिन गङ्गा तट पर रहे। वहाँ स्नान कर सीता सहित दोनों वीर भाई जलपान कर रह गये।

केवट कीन्ह बहुत सेवकाई। सो यामिनि सिंगरौर गँवाई ॥
होत प्रात वट क्षीर मँगावा। जटा मुकुट निज शीश बनावा ॥

राम सखा तब नाव मंगाई। प्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई॥
लषण धरे धनु बाण बनाई। आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई॥
विकल विलोकि मोहिं रघुवीरा। बोले मधुर वचन धरि धीरा॥
तात प्रणाम तात सन कहेऊ। बार बार पदपङ्कज गहेऊ॥
करब पायँ परि विनय बहोरी। तात करिय जनि चिन्ता मोरी॥
वनमग मङ्गल कुशल हमारे। कृपा अनुग्रह पुण्य तुम्हारे॥

केवट ने बड़ी सेवा की और वह रात शृङ्गवेरपुर में बिताई। सवेरा होते ही बड़ का दूध मँगा–दोनों ने अपने मस्तकों पर जटा का मुकुट लगाया तब श्रीराम जी के मित्र निषाद ने नाव मँगायी उस पर सीता जी को चढ़ा श्रीराम जी स्वयं चढ़े। लक्ष्मण जी हाथ में धनुषबाण ले, श्रीराम जी की आज्ञा से चढ़े। मुझको विकल देख श्रीरामचन्द्र जी ने धैर्य्य धर मुझसे मीठे शब्दों में कहा—हे प्यारे! मेरी ओर से बारंबार चरण छू, पिता जी से मेरा प्रणाम और फिर चरण छू कर मेरी ओर से विनय करना कि हे तात! मेरी आप कुछ भी चिन्ता न करें। आपके अनुग्रह और पुण्यबल से हमें वन के मार्ग मङ्गल और कुशलप्रद होंगे।

छं०—तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुख पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुशल देखन पायँ पुनि फिरि आइहौं॥
जननी सकल परितोष करि परि पाँय करि विनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ यत्न जेहि विधि कुशल रह कोशलधनी॥

हे पिता! आपकी कृपा से वन में सब प्रकार के सुख पाऊँगा और आपकी आज्ञा का पालन कर फिर आकर आपके चरणों के दर्शन करूँगा। मेरी ओर से (हे सुमन्त्र) माताओं के भी बार बार चरण छू कर प्रार्थना करके कहना कि वे वही प्रयत्न करें जिससे महाराज प्रसन्न रहें।

सो०—गुरुसन कहब सँदेश, बार बार पदपद्म गहि।
करब सोई उपदेश, जेहि न सोच मोहिं अवधपति॥

गुरु जी के चरण कमलों को बार बार छू कर, यह सन्देसा कहना कि वे

महाराज को समझा बुझा कर ऐसे सावधान कर दें जिससे महाराज को मेरी चिन्ता न हो।

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनायहु विनती मोरी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जाते रह नरनाह सुखारी॥
कहब सँदेश भरत के आये। नीति न तजब राजपद पाये॥
पालहु प्रजहि कर्म मन बानी। सेयहु मातु सकल सम जानी॥
और निबाहब भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहि करहिं न काऊ॥
लषण कहेउ कछु वचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहिं निहोरा॥
बार बार निज शपथ दिवाई। कहब न तात लषण लरिकाई॥

हे तात! नगरनिवासियों और सब कुटुम्ब वालों को निहोर कर कह देना कि मैं उसको अपना हितैषी समझूँगा जो महाराज को प्रसन्न रखेगा। जब भरत आवें तब उनसे मेरा यह सन्देसा कह देना कि वे राज पा कर नीति को न छोड़ दें। मनसा वाचा कर्मणा-सब प्रकार से प्रजा का पालन करना और सब माताओं को बराबर समझ उनकी सेवा करना। हे भाई! माता पिता और श्रेष्ठ पुरुषों की सेवा कर सौभ्रातृ का निर्वाह करना। हे तात! महाराज को इस प्रकार रखना जिससे वे मेरी चिन्ता न करें। इस पर लक्ष्मण जी ने कुछ कठोर वचन कहे, तब उन्हें बरजा और मुझे निहोरा। फिर मुझे बार बार अपनी शपथ दिला कर कहा कि लक्ष्मण जी के लड़कपन की बात वहाँ पिता जी से मत कहना।

दो०—कहि प्रणाम कछु कहन लिय, सिय भइ शिथिल सनेह।
थकित वचन लोचन सजल, पुलक पल्लवित देह॥

फिर प्रणाम कर सीता जी ने कुछ कहना चाहा, पर वे सनेह से शिथिल हो गयीं और उनसे बोला न गया। नेत्रों में आँसु आ गये और शरीर पुलकित हो गया।

तेहि अवसर रघुवर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई॥
रघुकुल-तिलक चले यहि भाँती। देखेउँ ठाढ़ कुलिश धरि छाती॥

मैं आपन किमि कहब कलेशू। जियत फिरेउँ लै राम सँदेशू॥
अस कहिसचिव वचनरहि गयऊ। हानि गलानि सोचवश भयऊ॥
सुनत सुमन्त्र वचन नरनाहू। परेउ धरणि उर दारुण दाहू॥
तलफल विषम मोह मन मापा। माँजा मनहुँ मीन कहँ ब्यापा॥
करि विलाप सब रोवहिं रानी। महाविपति किमि जाइ बखानी॥
सुनि विलाप दुखहू दुख लागा। धीरजहू कर धीरज भागा॥

इतने में श्रीरामचन्द्र जी की अनुमति से केवट ने नाव चला दी श्रीरामचन्द्र जी इस प्रकार चल दिये और मैं अपनी छाती को वज्र के समान बना खड़ा देखता रहा। मैं अपना दुःख क्या कहूँ—किसी प्रकार श्रीराम जी का सन्देसा ले जीता लौट आया हूँ। यह कहते कहते मन्त्री का बोल बन्द हो गया और श्रीराम जी के वियोग में मन्त्री दुःखी हुआ। महाराज ने मन्त्री के मुख से सारा हाल सुना और वे पृथिवी पर गिर पड़े और उनका हृदय जलने लगा। मोहवश हो वे वैसे तलफने लगे जैसे वर्षा के प्रथम जल के लगने से मछली तड़फड़ाती है। विलाप कर के रानियाँ रोने लगीं—इस महाविपत्ति का वर्णन कैसे किया जाय? उनके इस विलाप को सुन दुःख को भी दुःख हुआ और धीरज का भी धीरज भाग गया।

दो०—भयो कोलाहल अवध अति, सुनि नृप राउर शोर।
बिपुल बिहग वन परेउ निशि, मानहुँ कुलिश कठोर॥

रनवास का कुहराम सुन सारी राजधानी में कुहराम पड़ गया—मानों बहुत से पक्षियों से भरे वन पर वज्रपात हुआ हो।

प्राण कण्ठगत भयउ भुआलू। मणिबिहीनजिमिव्याकुलव्यालू॥
इन्द्रिय सकल बिकल भईं भारी। जनु सर सरसिजबन बिनुबारी॥
कौशल्या नृप दीख मलाना। रविकुल रविअथयेउजियजाना॥
उर धरि धीर राम महतारी। बोली वचन समय अनुहारी॥
नाथ समुझि मन करिय विचारू। राम वियोग पयोधि अपारू॥
कर्णधार तुम अवधि जहाजू। चढ़े सकल प्रिय बनिक समाजू॥

धीरज धरिय तो पाइय पारू। नाहिंत बूड़हि सब परिवारू ॥
जो जिय धरिय विनय पिय मोरी। राम लषण सिय मिलहिं बहोरी ॥

जैसे मणि के बिना सर्प कण्ठगत प्राण हो जाता है वैसे ही महाराज भी हो गये। उनकी सारी इन्द्रियाँ बहुत विकल हो गयी मानों बिना जल के सरोवर में कमल का वन हो। कौशल्या ने महाराज को मलीन देख जाना कि अब सूर्यवंश का सूर्य अस्त होने वाला है। तब तो रामजननी ने धैर्य्य धारण करके समयानुसार प्रसङ्ग छेड़ा। हे स्वामी! समझ देखिये कि श्रीरामचन्द्र जी के वियोग का समुद्र अपार है। उसमें आप केवट हैं और चौदह वर्ष की अवधि जहाज़ है; जिस पर सब कुटुम्बी व्यापारियों के समान सवार हैं। यदि धैर्य्य से काम लिया गया तो वह जहाज़ पार लग जायगा नहीं तो सब को ले डूब जायगा। यदि आप धैर्य्य धारण करेंगे, तो श्रीरामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण फिर भी मिलेंगे।

दो०—प्रिया वचन मृदु सुनत नृप, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सींचत शीतल वारि ॥

कौशल्या जी के वचन सुन महाराज ने नेत्र खोल कर ऐसे देखा, मानो दुखी तथा तड़फती हुई मछली ने शीतल जल पाया हो।

धरि धीरज उठि बैठु भुआलू। कहु सुमन्त्र कहँ राम कृपालू ॥
कहाँ लषण कहँ राम सनेही। कहँ प्रिय-पुत्र-बधू वैदेही ॥
बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ युग सरिस सिराति न राती ॥
तापस अन्ध शाप सुधि आई। कौशल्यहि सब कथा सुनाई ॥
भयउ विकल बरणत इतिहासा। राम रहित धिक् जीवन श्वासा ॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेइ न प्रेम प्रण मोर निबाहा ॥
हा रघुनन्दन प्राण पिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते ॥
हा जानकी लषण हा रघुवर। हा पितु हित चित चातक-जलधर॥

धैर्य्य धारण कर महाराज उठ बैठे और बोले—हे सुमंत्र! बतलाओ कृपालु श्रीराम कहाँ हैं? लक्ष्मण जी कहाँ है और स्नेही राम कहाँ हैं और प्यारी

बहू सीता कहाँ है। राजा अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। वह रात युग के समान हो गयी जो काटे नहीं कटती। इतने में सरवन के पिता अन्ध तपस्वी के शाप का स्मरण महाराज को हो आया और उसका सारा वृत्तान्त कौशल्या को सुनाया। वृत्तान्त कहते कहते महाराज व्याकुल हो गये और कहने लगे—राम बिना जीने को धिक्कार है। उस शरीर को रख कर ही अब मैं क्या करूंगा जिसने मेरे प्रेम प्रण का निर्वाह न किया। प्राणों के प्यारे हे राम! तुम्हारे बिना जीते बहुत दिन हो गये। हा जानकी! हा लक्ष्मण! हा रघुवर! हा पिता के हितैषी! हा चित्तरूपी चातक के मेघ!!!

दो०—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुवर विरह, राव गयो सुरधाम॥

महाराज दशरथ इस प्रकार बार बार राम राम कह, राम के वियोग में शरीर त्याग स्वर्ग गये।

जियन मरण फल दशरथ पावा। अण्ड अनेक अमल यश छावा॥
जियत राम विधु बदन निहारी। राम विरह मरि मरण सँवारी॥
शोक विकल सब रोवहिं रानी। रूप शील बल तेज बखानी॥
करहिं विलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा॥
बिलपहिं विकलदास अरु दासी। घर घर रुदन करहिं पुरवासी॥
अथउब आजु भानुकुल भानू। धर्म अवधि गुणरूप निधानू॥
गारी सकल केकयिहि देहीं। नयन विहीन कीन्ह जग जेहीं॥
यहि विधि बिलपत रैनि बितानी। आये सकल महामुनि ज्ञानी॥

जीने मरने का फल महाराज दशरथ को मिल गया—क्योंकि उनका विमल यश अनेक ब्रह्माण्डों में व्याप्त हो गया। जीते हुए तो श्रीरामचन्द्र जी का चन्द्रोपम मुख देखा और राम वियोग में प्राण दे मरना सफल किया। शोक में विकल सब रानियाँ रोने लगीं—और बार बार महाराज के रूप, शील, बल, और तेज का बखान करने लगीं। वे अनेक प्रकार का विलाप करके भूमि पर बार बार गिरती हैं। दास और दासी भी विलाप करने लगे और नगर भर में घर घर रोना

का अभिषेक करते हैं। शिव जी की मन ही मन मनौती मान, माता पिता एवम् कुटुम्बियों की तथा भाइयों की कुशल माँगते हैं।

दो०—यहि विधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे जाय।
गुरु अनुशासन श्रवण सुनि, चले गणेश मनाय॥

भरत जी इस प्रकार सोच रहे थे कि इतने में अयोध्या के दूत उनके पास पहुँचे। उनके मुख से गुरु की आज्ञा सुन—वे गणेश को मना कर चल दिये।

चले समीर वेग हय हाँके। लाँघत सरित शैल बन बाँके॥
हृदय सोच बड़ कछु न सुहाई। अस जानहिं जिय जाउँ उड़ाई॥
एक निमेष वर्ष सम जाई। यहि विधि भरत नगर नियराई॥
अशकुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥
खर शृगाल बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होहिं भरत उर शूला॥
श्रीहत सर सरिता वन बागा। नगर विशेष भयावन लागा॥
खग मृग हय गज जाहिं न जोये। राम वियोग कुरोग विगोये॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबहिं सब सम्पतिहारी॥

पवन के वेग की तरह घोड़ों को हाँक और मार्ग में अनेक विकट नदी पहाड़ और सरोवरों को पार करते-भरत जी चले। मन में बड़ी भारी चिन्ता होने के कारण उनको कुछ भी अच्छा नहीं लगता-उनका मन यह कहता है कि जैसे हो वैसे मैं उड़ कर अयोध्या पहुँच जाऊँ। एक एक पल उनको वर्ष के समान बीतता है इस प्रकार भरत अयोध्या के समीप पहुँचे। नगर में प्रवेश करते ही अपशकुन होने लगे। काले कौवे बुरी तरह बुरे खेतों में काँय काँय करने लगे। गधे, शृगाल विपरीत बोलने लगे। उनके शब्द सुन भरत जी के मन में बड़ी पीड़ा होने लगी। सरोवर नदी वन और उद्यान सभी श्रीहीन से जान पड़े और नगरी तो महा भयानक लगने लगी। नगर भर में हाथी, मृग, पक्षी घोड़े न दीख पड़े। क्योंकि इन सब को तो श्रीराम के वियोगरूपी असाध्य रोग ने मृततुल्य कर दिया है। नगर के नर नारी बहुत दुखी हैं, मानों इन सब की सम्पत्ति लुट गयी है।

का अभिषेक करते हैं। शिव जी की मन ही मन मनौती मान, माता पिता एवम् कुटुम्बियों की तथा भाइयों की कुशल माँगते हैं।

दो०—यहि विधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे जाय।
गुरु अनुशासन श्रवण सुनि, चले गणेश मनाय॥

भरत जी इस प्रकार सोच रहे थे कि इतने में अयोध्या के दूत उनके पास पहुँचे। उनके मुख से गुरु की आज्ञा सुन—वे गणेश को मना कर चल दिये।

चले समीर वेग हय हाँके। लाँघत सरित शैल बन बाँके॥
हृदय सोच बड़ कछु न सुहाई। अस जानहिं जिय जाउँ उड़ाई॥
एक निमेष वर्ष सम जाई। यहि विधि भरत नगर नियराई॥
अशकुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥
खर शृगाल बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होहिं भरत उर शूला॥
श्रीहत सर सरिता वन बागा। नगर विशेष भयावन लागा॥
खग मृग हय गज जाहिं न जोये। राम वियोग कुरोग विगोये॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबहिं सब सम्पतिहारी॥

पवन के वेग की तरह घोड़ों को हाँक और मार्ग में अनेक विकट नदी पहाड़ और सरोवरों को पार करते—भरत जी चले। मन में बड़ी भारी चिन्ता होने के कारण उनको कुछ भी अच्छा नहीं लगता—उनका मन यह कहता है कि जैसे हो वैसे मैं उड़ कर अयोध्या पहुँच जाऊँ। एक एक पल उनको वर्ष के समान बीतता है इस प्रकार भरत अयोध्या के समीप पहुँचे। नगर में प्रवेश करते ही अपशकुन होने लगे। काले कौवे बुरी तरह बुरे खेतों में काँय काँय करने लगे। गधे, शृगाल विपरीत बोलने लगे। उनके शब्द सुन भरत जी के मन में बड़ी पीड़ा होने लगी। सरोवर नदी वन और उद्यान सभी श्रीहीन से जान पड़े और नगरी तो महा भयानक लगने लगी। नगर भर में हाथी, मृग, पक्षी घोड़े न दीख पड़े। क्योंकि इन सब को तो श्रीराम के वियोगरूपी असाध्य रोग ने मृततुल्य कर दिया है। नगर के नर नारी बहुत दुखी हैं, मानों इन सब की सम्पत्ति लुट गयी है।

दो०—पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गवँहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुशल पूछि न सकहिं, भय विषाद मन माहिं॥

नगरवासी जो लोग मिलते हैं वे कहते सुनते कुछ नहीं—चुपके से प्रणाम कर चल देते हैं। भरत जी कुशल तक नहीं पूँछ पाते—क्योंकि उनके मन में तो भय और विषाद व्याप्त है।

हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दस दिशिलागिदवारी॥
आवत सुत सुनि केकयनन्दनि। हर्षी रविकुल जलरुह चन्दनि॥
सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारहि भेंटि भवन लै आई॥
भरत दुखित परिवार निहारी। मानहुँ तुहिन वनज वन मारी॥
कैकेयी हर्षित यहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥
सुतहि ससोच देखि मन मारे। पूछति नैहर कुशल हमारे॥
सकल कुशल कहि भरत सुनाई। पूछी निज कुल कुशल भलाई॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय रामलषण प्रियभ्राता॥

हाट बाट की ओर देखा तक नहीं जाता—मानों नगर की दसों दिशाओं में आग लगी हो। सूर्यवंशरूपी कमल को चन्द्रमा की तरह दुख देने वाली कैकेयी पुत्र का आगमन सुन प्रसन्न हुई। आरती सजा वह प्रसन्न हो दौड़ी और द्वार ही पर भरत से जामिली और अपने घर में उन्हें ले गयी। भरत ने परिवार के लोगों को ऐसा दुखी देखा मानों पाले का मारा कमलों का वन हो। जिस प्रकार भिलनी आग लगा कर प्रसन्न होती है, वैसे ही कैकेयी भी प्रसन्न है। पुत्र को चिन्तित और उदास देख उसने भरत जी से पूँछा—मेरे पीहर में तो सब प्रसन्न हैं? इसके उत्तर में भरत जी ने सब की कुशल कही और अपने कुल की कुशल पूँछी। भरत ने पूँछा—यह तो बतलो हमारे पिता और अन्य सब माताएँ कहाँ हैं? सीता जी कहाँ है और प्यारे भाई राम लक्ष्मण कहाँ हैं?

दो०—सुनि सुत वचन सनेह मय, कपट नीर भरि नैन।
भरत श्रवण मन शूल सम, पापिनि बोली बैन॥

पुत्र के स्नेहमय वचन सुन और नेत्रों में बनावटी आँसू भर, उस पापिन ने भरत के हृदय में शूल की तरह चुभने वाले वचन कहे।

तात बात मैं सकल सँवारी। भइ मन्थरा सहाय बिचारी ॥
कछुक काज विधि बीच बिगारो। भूपति सुरपतिपुर पगु धारो ॥
सुनत भरत भये विवश विषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा ॥
तात तात हा तात पुकारी। परेउ भूमितल व्याकुल भारी ॥
चलत न देखन पायउँ तोहीं। तात न रामहिं सौंपेउ मोहीं ॥
बहुरि धीर धरि उठे सँवारी। कहु पितु मरण हेतु महतारी ॥
सुनि सुत वचन कहत कैकेई। मर्म पोंछि जनु माहुर देई ॥
आदिहि तें सब आपनि करणी। कुटिल कठोर मुदित मनबरणी॥

बेटा! मैंने मंथरा की सहायता से सब ठीक ठाक कर रखा है किन्तु विधाता ने कुछ काम बिगाड़ दिया कि महाराज स्वर्गवासी हो गये। पिता की मृत्यु का दुस्संवाद सुन भरत जी ऐसे विकल हुए जैसे सिंह की दहाड़ सुन हाथी व्याकुल होता है। हा तात! हा तात!! कहते हुए वे पृथिवी पर लोटने लगे। हे तात! आपको जाते मैंने अपने नेत्रों से न देख पाया और न आपने मुझे श्रीरामचन्द्र ही को सौंपा। कुछ देर बाद धैर्य धर भरत जी उठे और बोले हे माता! पिता के मरने का कारण तो बतलाओ। भरत के प्रश्न के उत्तर में कैकेयी ने घाव पोंछ कर उस पर विष लगाया। उसने आरम्भ से लेकर अन्त तक अपनी करतूत, प्रसन्न हो सुनाई।

दो०—भरतहिं बिसरेउ पितु मरण, सुनत राम वन गौन।
हेतु आपनो जानि जिय, थकित रहे धरि मौन ॥

श्रीरामचन्द्र जी का वनगमन सुन भरत जी पिता का मरण भूल गये और इन सब बखेड़ों का कारण अपने को समझ स्तम्भित और मौन रह गये।

बिकल बिलोकि सुतहिं समुझावति। मनहुँ जरे पर लोन लगावति ॥
तात राव नहिं सोचन योगू। बिढ़इ सुकृत यश कीन्हेउ भोगू ॥

जीवत सकल जन्म फल पाये। अन्त अमरपति सदन सिधाये॥
अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज्य पुर करहू॥
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारा। पाके छत जनु लाग अँगारा॥
धीरज धरि भरि लेहिं उसाँसा। पापिनि सबहिभाँतिकुलनासा॥
जो पै कुरुचि रही अस तोहीं। जन्मत काहे न मारेसि मोहीं॥
पेड़ काटि तै पल्लव सींचा। मीन जियन हित बारि उलीचा॥

भरत जी को विकल देख कैकेयी उन्हें समझाने लगी मानों जले पर निमक लगाती हैं। वह बोली हे बेटा! महाराज की मृत्यु शोचनीय नहीं है—क्योंकि जैसे भोग उन्होंने भोगे वे बड़े पुण्य से प्राप्त होते हैं। जब तक वे जीवित रहे तब तक उन्हें जीने का फल मिला। जब मरे तब स्वर्ग गये। यह सोच तुम दुखी मत हो और समाज सहित नगर के राज्य को अपने हाथ में लो। राजकुमार भरत इन बातों को सुन ऐसे सहमे, मानों पके घाव पर अंगार लगा हो। मन को पोढ़ा कर भरत ने उसाँस ली और कहा अरे पापिन! तैने हर तरह कुल को डुबोया। यदि तेरी बुद्धि इसी प्रकार बिगड़ी थी, तो जन्मते ही मुझे क्यों न मार डाला। तैने वृक्ष को काट पत्तों को सींचा और मछली जिलाने के लिये जल ही उलीच डाला।

दो०—हंस वंस दशरथ जनक, राम लषण से भाय।
जननी तू जननी भई, विधि तें कछु न बसाय॥

मुझे सूर्य का वंश, दशरथ से पिता और श्रीराम लक्ष्मण से भाई मिले, परन्तु तेरी जैसी मुझे जननी मिली—क्या किया जाय—भाग्य से किसी का वश नहीं चलता।

जब तैं कुमति कुमत मन ठयऊ। खण्ड खण्ड ह्वै हृदय न गयऊ॥
वर माँगत मन भइ नहिं पीरा। जरि न जीभमुँहपरेउ नकीरा॥
भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्हीं। मरणकालविधिमतिहरिलीन्हीं॥
बिधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुणखानी॥

सरल सुशील धर्मरत राऊ। सो किमि जानहिं तीय स्वभाऊ॥
अस को जीव जन्तु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्राणप्रिय नाहीं॥
भे अति अहित राम तेउ तोहीं। को तू अहसि सत्य कहु मोहीं॥
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥

हे दुष्टे! तेरे मन में जब यह दुष्ट बुद्धि उत्पन्न हुई तब तेरा हृदय फट क्यों न गया? अरे वर माँगते तेरे पीड़ा भी न हुई—तेरा मुँह जला क्यों नहीं और जीभ में कीड़े क्यों न पड़ गये? राजा ने तेरी बात मान कैसे ली—जान पड़ता है, मरते समय ब्रह्मा ने उनकी बुद्धि हर ली। सम्पूर्ण कपट और अवगुणों की खानि स्त्रियों के मन को चालें ब्रह्मा भी नहीं जान सकते। तब हमारे पिता तो सीधे साधे, सुशील और धर्मज्ञ थे—वे भला स्त्रियों की चाल को क्यों कर समझ सकते थे। इस जगत में ऐसा कौन सा जीव जन्तु है, जिसे श्रीरघुनाथ जी प्राणों से प्यारे नहीं है? वे श्रीरामचन्द्र तुझे बुरे लगे-अतः तू सच सच कह तू है कौन? अथवा तू जो कोई हो सो बनी रह, परन्तु तू अब यहाँ से काला मुँह कर आँखों की ओट हो जा।

दो०—राम विरोधी हृदय तें, प्रकट कीन्ह विधि मोहिं।
मो समान को पातकी, बादि कहौं कछु तोहि॥

ब्रह्मा ने राम विरोधी की कोख से मुझे उत्पन्न किया—अतः मुझसे बढ़ कर पापी दूसरा कौन हो सकता है? और तुझसे तो कुछ कहना सुनना वृथा ही है।

सुनि शत्रुघ्न मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन विभूषण विविध बनाई॥
लखि रिस भरेउ लषण लघुभाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥
हुमकि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भरि महि करत पुकारा॥
कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दशन मुख रुधिर प्रचारू॥
अहह दैव मैं काह नसावा। करत नीक फल अनइस पावा॥
पुनि रिपुहन लखि नखशिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥
भरत दयानिधि दीन्ह छुड़ाई। कौशल्या पहँ गे दोउ भाई॥

माता की इस कुटिलता को सुन शत्रुघ्न का शरीर मारे क्रोध के जलने लगा—पर उनका वश कुछ चलता नहीं। इतने ही में मंथरा अच्छे प्रकार सज धज कर जा पहुँची। उसे देख शत्रुघ्न को ऐसा क्रोध उत्पन्न हुआ मानों जलती हुई आग में घी की आहुति पड़ी हो। शत्रुघ्न ने हुमक कर उसके कूबर में ऐसी लात मारी कि मुँह के बल वह पृथिवी पर गिर पड़ी और पड़ी चिल्लाने लगी। उसका कूबर टूट गया और कपार फट गया तथा दाँतों के टूट जाने से मुँह से रुधिर बहने लगा। वह कहने लगी—अरे दैव! मैंने क्या बिगाड़ा था जो अच्छा करते बुरा फल मिला। यह सुन और उसे छटी हुई लुच्ची समझ शत्रुघ्न उसकी चोटी थाम आँगन में उसे कढ़ोरने लगे। तब भरत को उस पर दया आयी और उसे छुड़वा कर—दोनों भाई कौशल्या जी के पास गये।

दो०—मलिन वसन विवरण विकल, कृश शरीर दुख भार।
कनक कमल बरबेलि वन, मानहुँ हनी तुषार॥

कौशल्या जी मारे शोक के अति दुबली पतली हो गयी हैं। विकल और मलिन वस्त्र पहने वे ऐसी जान पड़ती हैं, मानों वन की सुन्दर सुवर्ण लता को पाला मार गया हो।

भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मूर्च्छित अवनि परी भहराई॥
देखत भरत विकल भये भारी। परे चरण तनु दशा बिसारी॥
मातु तात कहँ देहि दिखाई। कहँ सिय राम लषण दोउ भाई॥
केकयि कत जनमी जग माँझा। जो जनमी तौ भइ किन बाँझा॥
कुल कलङ्क जेहिं जन्मेउ मोही। अपयशभाजन प्रिय-जन-द्रोही॥
को त्रिभुवन मोहिं सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी॥
पितु सुरपुर वन रघु-कुल-केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥
धिक मोहिं भयउ बेणुबन आगी। दुसह दाह दुख दूषण भागी॥

भरत को देख कौशल्या जी उठ कर दौड़ी, किन्तु मूर्च्छित हो वे गिर पड़ीं। यह देख भरत जी विकल हो माता के चरणों पर अपने शरीर की सुध भूल गिर

पड़े। हे माता! पिता कहाँ हैं मुझे दिखा दो और सीता सहित दोनों भैया कहाँ हैं? कैकेयी का जन्म संसार में क्यों हुआ और यदि जन्म हुआ भी था तो वह बाँझ ही क्यों न हुई। उसने मुझ सरीखा कुलकलङ्क, बुराई का ठिकरा और प्रियजनों का द्रोही पैदा क्यों किया! त्रिभुवन में मुझ सरीखा अभागा और कौन है, जिसके कारण हे माता! तेरी यह दशा हुई है। पिता तो स्वर्ग को गये और श्रीरामचन्द्र वन को—इन सब बखेड़ों की जड़ मैं ही हूँ। मैं इस वंश के लिये वैसा ही हूँ जैसा बाँसों के वन के लिये आग। मैं दुस्सह दाह, दुःख और दूषण का पात्र हुआ।

दो०—मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिये उठाय लगाय उर, लोचन मोचति बारि॥

भरत जी के इन मृदु वचनों को सुन कौशल्या जी उठ बैठीं और भरत को उठा कर छाती से लगा लिया एवं आँसू बहाने लगीं।

सरल सुभाय मातु उर लाये। अति हित मनहुँ रामफिरिआये॥
भेंटेउ बहुरि लषण लघु भाई। शोक सनेह न हृदय समाई॥
देखि स्वभाव कहत सब कोई। राममातु अस काहे न होई॥
माता भरत गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु वचन उचारे॥
अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमय समुझि शोक परिहरहू॥
जनि मानहु जिय हानि गलानी। काल-कर्म-गति अघटित जानी॥
काहुहि दोष देहु जनि ताता। भा मोहिंसब विधिबामविधाता॥
जो ऐसेहु दुख मोहिं जियावा। अजहुँ को जानै का तेहि भावा॥

सरल स्वभाव से माता ने भरत को छाती से लगा लिया—मानों श्रीरामचन्द्र ही लौट आये। फिर शत्रुघ्न जी भेंटे। शोक और प्रीति दोनों का ठिकाना नहीं है। कौशल्या का बर्त्ताव देख सब लोग कहने लगे कि क्यों न हो-कौशल्या ठहरी तो श्रीराम ही की जननी। कौशल्या ने भरत को अपनी गोद में बिठाया और आँसू पोंछ मृदु वचन कहे। हे बेटा! अब धीरज धरो और कुसमय समझ

शोक मत करो। अब अपने मन से हानि और ग्लानि का विचार निकाल डालो क्योंकि काल की गति अनिवार्य है। हे बेटा! किसी को दोषी मत ठहराओ—क्योंकि इस समय सब प्रकार से विधाता मेरे लिये वाम है जो मुझे अभी तक जिला रहा है और कौन जानता है अभी और क्या होना शेष है।

दो०—पितु आयसु भूषण वसन, तात तजे रघुबीर।
विस्मय हर्ष न हृदय कछु, पहिरेउ बल्कल चीर॥

हे बेटा! पिता की आज्ञा से श्रीराम ने तो कपड़े और गहने छोड़, बिना दुःख के, किन्तु सहर्ष बल्कल वस्त्र धारण कर लिये।

मुख प्रसन्न मन राग न रोषू। सब करसबविधिकरि परितोषू॥
चले विपिन सुनिसियसँगलागी। रही न रामचरण अनुरागी॥
सुनतहि लषण चले लगि साथा। रहे न यत्न किये रघुनाथा॥
तब रघुपति सब ही सिर नाई। चले सँग सिय अरु लघु भाई॥
राम लषण सिय वनहिं सिधाये। गई न सँग न प्राण पठाये॥
यह सब भा इन आँखिन आगे। तउ न तजा तनु जीव अभागे॥
मोहिं न लाज निज नेह निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जियै मरै भल भूपति जाना। मोर हृदय शत कुलिश समाना॥

श्रीराम के मन में राग या रोष कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ, किन्तु वे प्रसन्न वदन सब को समझा बुझा कर वन को चल दिये। उनका वनगमन सुन जानकी भी उनके साथ हो ली। श्रीराम के चरणों में प्रीति होने के कारण वह यहाँ न रह सकी। श्रीराम जानकी को जाते सुन लक्ष्मण भी उनके साथ हो लिये। श्रीराम ने उन्हें बहुत रोका, पर वे न माने। तब श्रीरामचन्द्र जी सब को प्रणाम कर, सीता और लक्ष्मण सहित चल दिये। श्रीराम लक्ष्मण सीता तो बन को चले गये, परन्तु न तो मैं स्वयं उनके साथ गयी और न अपने प्राणों को उनके साथ भेजा। यह सब अनर्थ इन्हीं नेत्रों के सामने हो गये, तौ भी अभागे जीव ने यह शरीर न छोड़ा। मुझे अपने पुत्रस्नेह की ओर देख लज्जा भी तो नहीं आती कि श्रीराम सरीखे

तो मेरे पुत्र और मुझ जैसी उनकी माता ! जीने मरने का रहस्य तो महाराज ने भलीभाँति समझा। किन्तु मेरा हृदय तो सैा वज्रों के समान कड़ा है।

दो०—कौशल्या के वचन सुनि, भरत सहित रनिवास।
व्याकुल बिलपत राजगृह, मानहुँ शोक निवास॥

कौशल्या की बातें सुन सुन भरत जी सहित रनिवास ऐसा दुखी हो विलपने लगा—मानों वह राजभवन शोक का निवासस्थल हो रहा है।

बिलपहिं विकल भरत दोउ भाई। कौशल्या लिय हृदय लगाई॥
भाँति अनेक भरत समुझाये। कहि विवेकमय वचन सुनाये॥
भरतहु मातु सकल समुझाई। कहि पुराण श्रुति कथा सुनाई॥
छल विहीन शुचि सरल सुबाणी। बोले भरत जोरि युग पाणी॥
जो अघ मातु पिता गुरु मारे। गाइ गोठ महि सुरपुर जारे॥
जो अघ तिय बालक वध कीन्हे। मीत महीपति माहुर दीन्हे॥
जो पातक उपपातक अहहीं। कर्म वचन मनभव कवि कहहीं॥
ते पातक मोहिं होउ विधाता। जो यह होइ मोर मत माता॥

विकल होते हुए भरत और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को कौशल्या ने हृदय से लगा लिया। फिर अनेक प्रकार के विवेकमय वचन सुना भरत को समझाया। तब भरत जी ने भी वेद पुराण की कथाएँ सुना सब माताओं को समझाया। तदनन्तर कपट, छल छोड़ और हाथ जोड़ कर भरत जी कहने लगे—माता पिता, गुरु के मारने, गोशाला तथा ब्राह्मणों के नगर जलाने से जो पाप लगता है और जो पाप स्त्री, बालक को मारने और मित्र तथा राजा को विष खिलाने से लगता है-मनसा वाचा कर्मणा जितने पातक और उपपातक हैं—वे सब मुझे लगें—यदि ये सब बखेड़े मेरी सम्मति से हुए हों।

दो०—जे परिहरि हरि-हर-चरण, भजहिं भूतगण घोर।
तिनकी गति मोहिं देउ विधि, जो जननी मत मोर॥

हे माता ! जो गति उन लोगों की होती है जो भगवान् के चरणों को छोड़ भूतों का सेवन करते हैं, वही गति मेरी भी हो यदि इसमें मेरी कुछ भी सलाह हो ।

बेचहिं वेद धर्म दुहि लेहीं । पिशुन पराव पाप कहि देहीं ॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी । वेद विदूषक विश्व विरोधी ॥
लोभी लम्पट लोलुप चारा । जो ताकहिं परधन परदारा ॥
पावउँ मैं तिनकी गति घोरा । जो जननी यह सम्मत मोरा ॥
जे नहिं साधु सँग अनुरागे । परमारथ पथ विमुख अभागे ॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई । जिनहिं न हरिहर सुयश सुहाई ॥
तजि श्रुतिपन्थ वामपथ चलहीं । बंचक विरचि वेष जग छलहीं ॥
तिनकी गति शंकर मोहिं देऊ । जननी यह जो जानौं भेऊ ॥

वेद को बेंच जो धर्म को दुह लेते हैं, जो चुगलखोर दूसरे की पाप कथा लोगों को सुनाते फिरते हैं, जो कपटी, कुटिल, कलहप्रिय, क्रोधी, वेदनिन्दक और विश्वविरोधी हैं जो लोभी, लम्पट, ठग और लबार हैं और जो पराये धन और पराई स्त्री को ताकते हैं—इनकी जो गति होती है वही मेरी भी हो—यदि इसमें मेरी कुछ भी अनुमति हो । जो गति साधुओं में अनुराग न रखने वालों की, परमार्थ से विमुख अभागों की, नर तन पा कर श्रीराम जी को न भजने वाले की, हरि और हर का सुयश न सुनने वाले की, वैदिक विधि को छोड़ वाम मार्ग पर चलने वालों की, और ढोंग रच कर जग को ठगने वालों की होती है-वही गति मेरी भी हो—हे माता ! यदि मैं इसका कुछ भी भेद जानता होऊं ।

दो०—मातु भरत के वचन सुनि, साँचे सरल स्वभाव ।
कहत राम प्रिय तात तुम, सदा वचन मन काय ॥

भरत के सत्य एवं अकृत्रिम सरल वचन सुन कौशल्या जी बोली—हे बेटा ! तुम तो तन, मन, वचन से श्रीराम जी के प्यारे हो ।

राम प्राण तें प्राण तुम्हारे । तुम रघुपतिहि प्राण ते प्यारे ॥
विधु विष चुवै स्रवै हिम आगी । होइँ वारिचर वारि विरागी ॥

भये ज्ञान बरु मिटै न मोहू। तुम रामहिं प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यह जो जग कहहीं। सोसपनेहु सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरत हियलाई। थन पय स्रवहिं नयन जल छाई॥
करत विलाप बिपुल यहि भाँती। बैठे बीति गई सब राती॥
वामदेव वशिष्ठ मुनि आये। सचिव महाजन सकल बुलाये॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेशे। कहि परमारथ वचन सुदेशे॥

श्रीराम जी के प्राण से तुम्हारे प्राण हैं और तुम श्रीराम जी को प्राणों से भी बढ़ कर प्यारे हो। चन्द्रमा से विष की वर्षा भले ही हो, बर्फ़ से भले ही आग गिरे, जल के जीवों को भले ही जल से वैराग्य हो जाय, ज्ञान उत्पन्न होकर भी भले ही मोह दूर न हो, किन्तु हे भरत! तुम कभी श्रीराम जी के विरुद्ध नहीं हो सकते। जो कोई इसमें तुम्हारा हाथ बतलावेगा—वह नरकगामी होगा। यह कह कौशल्या ने भरत को हृदय से लगा लिया। उस समय कौशल्या जी के स्तनों से मारे स्नेह के दूध गिरने लगा और नेत्र सजल हो गये। इस प्रकार अनेक विलाप करते करते बैठे ही बैठे रात बीत गई। सबेरा होतेही वामदेव और वसिष्ठ जी पहुँचे और उन्होंने मन्त्रियों तथा महाजनों को बुला भेजा। मुनि ने आकर भरत को अनेक उपदेश दिये और परमार्थ समझाया।

दो०—तात हृदय धीरज धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरुवचन सुनि, करन कहेउ सब काजु॥

हे बेटा! मन में धैर्य धर, आज अवसर के अनुसार काम करो। गुरु जी के इन वचनों को सुन भरत जी उठे और सब काम करने को उद्यत हुए।

नृपतनु वेद विहित अन्हवावा। परम विचित्र विमान बनावा॥
गहि पद भरत मातु सब राखी। रहीं राम दरशन अभिलाखी॥
चन्दन अगर भार बहु आये। अमित अनेक सुगन्ध सुहाये॥
सरयुतीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई॥
यहिविधि दाह क्रिया सब कीन्हीं। विधिवतन्हायतिलाँजलिदीन्हीं॥
शोधि सुमृति सब वेद पुराना। कीन्ह भरत दशगात्र विधाना॥

जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा । तहँतस सहस भाँति सब कीन्हा ॥
भये विशुद्ध दिये सब दाना । धेनु बाजि गज बाहन नाना ॥

महाराज के मृत शरीर को वेद की विधि के अनुसार स्नान करवाये और अति विचित्र और सुन्दर एक विमान बनवाया । भरत ने सब माताओं के चरण पकड़ उनको सती होने से रोका और वे भी श्रीरामचन्द्र के दर्शनों की इच्छा से सती न हुईं । बहुत सा अगर चन्दन एकत्र किया गया तथा अन्य अनेक सुगन्ध की वस्तुएं भी मँगवायी गयीं । सरयू के तट पर सुन्दर चिता तैयार की गयी—वह ऐसी जान पड़ती थी मानों वह स्वर्ग की सीढ़ी है । इस प्रकार दाहक्रिया समाप्त कर, विधिवत् भरत ने स्नान किये और तिलाञ्जलि दी । सारी स्मृतियाँ वेद और पुराणों में ढूढ़ भरत ने दशगात्र का विधान किया । मुनि ने जो कुछ कहा—उसी प्रकार भरत ने अच्छे प्रकार किया । सब प्रकार के दान दे भरत जी विशुद्ध हुए । गौ, घोड़े और हाथी तथा अनेक सवारियाँ दीं ।

दो०—सिंहासन भूषण वसन, अन्न धरणि धन धाम ।
दिये भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूरण काम ॥

फिर भरत जी ने सिंहासन, भूषण, वस्त्र, धन, धान्य, भूमि और महल आदि दान में दिये । उन्हें ले ब्राह्मण पूर्णकाम अर्थात् अयाचक हो गये ।

पितुहित भरत कीन्ह जस करणी । सो मुख लाख जाइ नहिं बरणी ॥
सुदिन शोधि मुनिवर तहँ आये । सकल महाजन सचिव बुलाये ॥
बैठे राजसभा सब जाई । पठये बोलि भरत दोउ भाई ॥
भरत वशिष्ठ निकट बैठारे । नीति धर्ममय वचन उचारे ॥
प्रथम कथा सब मुनिवर बरणी । कैकयि कुटिल कीन्हजस करणी ॥
भूप धर्मव्रत सत्य सराहा । जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा ॥
कहत रामगुण शील स्वभाऊ । सजल नयन पुलके मुनि राऊ ॥
बहुरि लषण सिय प्रीति बखानी । शोक सनेह मगन मुनि ज्ञानी ॥

पिता के उद्धार के लिये भरत ने जो करनी की वह लाख मुख से भी नहीं कही जा सकतीं । फिर सुन्दर दिन विचार कर मुनिराज वहाँ गये और सब

महाजनों को तथा मंत्रियों को बुलवाया। जब सब लोग राजसभा में जाकर बैठ गये, तब भरत और शत्रुघ्न बुलवाये गये। वसिष्ठ जी ने भरत को अपने पास बिठाया और नीतिधर्ममय बातें उनको सुनायीं। वसिष्ठ जी ने पहले तो वह सारा वृत्तान्त कहा जो कैकेयी की कुटिलता से सम्बन्ध रखता था। फिर उन्होंने उन महाराज दशरथ के धर्मव्रत की प्रशंसा की, जिन्होंने मरते दम तक प्रेम को निभाया। फिर श्रीरामचन्द्र जी के गुण, शील और स्वभाव को कहते कहते वसिष्ठ जी के नेत्र तर हो गये और शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। तदनन्तर मुनि ने लक्ष्मण और सीता की प्रीति का बखान किया। उस समय वे शोक और प्रेम में निमग्न हो गये।

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ॥

बिलख कर वसिष्ठ जी ने कहा—हे भरत! सुनो, होनहार बड़ा प्रबल है और हानि लाभ, जीवन मरण, तथा यश अपयश विधाता के हाथ है।

अस विचारि केहि दीजिय दोषू। व्यर्थ काहि पर कीजिय रोषू॥
तात विचार करहु मन माहीं। सोच योग दशरथ नृप नाहीं॥
सोचिय विप्र जो वेद विहीना। तजि निज धर्म विषय लवलीना॥
सोचिय नृपति नीति नहिं जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना॥
सोचिय वैश्य कृपण धनवानू। जो न अतिथि शिवभक्त सुजानू॥
सोचिय शूद्र विप्र अपमानी। मुखर मान प्रिय ज्ञान गुमानी॥
सोचिव पुनि पतिबञ्चक नारी। कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी॥
सोचिय बटु निज व्रत परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥

यह विचार कर किसी को दोष देना या किसी पर रोष करना व्यर्थ है। हे बेटा! मन में विचारो तो महाराज दशरथ शोक करने योग्य नहीं हैं। शोच्य तो वह ब्राह्मण है जो वेद नहीं जानता, और जो अपने धर्म को छोड़ विषय-वासना में लवलीन रहता है। राजा वह शोच्य है जो राजनीतिनहीं जानता और जो अपनी प्रजा को प्राणों के समान प्रिय नहीं जानता। वह वैश्य शोच्य है जो

धनवान होकर भी कंजूसी करता है और जो अतिथि एवं महादेव का भक्त नहीं है। वह शूद्र भी शोच्य है जो ब्राह्मण का अपमान करता है, और जो वाचाल, मानलोलुप और पण्डितंमन्य है। वह स्त्री शोच्य है जो पति को छलती है, तथा कुटिल, कलहप्रिय और इच्छाचारिणी है। वह ब्रह्मचारी शोच्य है जो अपने व्रत को छोड़ अपने गुरु की आज्ञा के अनुसार नहीं चलता।

दो०—सोचिय गृही जो मोह वश, करै धर्मपथ त्याग।
सोचिय यती प्रपञ्चरत, विगत विवेक विराग॥

वह गृहस्थ शोच्य है जो मोह में पड़ कर्ममार्ग को छोड़ देता है और वह संन्यासी शोच्य है जो वैराग्य से विरक्त हो प्रपञ्च से प्रीति जोड़ता है।

वैखानस सोइ सोचन योगू। तप विहाय जेहि भावै भोगू॥
सोचिय पिशुन अकारण क्रोधी। जननि जनक गुरु बन्धुविरोधी॥
सब विधि सोचिय पर अपकारी। निज तनु पोषक निर्दय भारी॥
सोचनीय सब ही विधि सोई। जो न छाँड़ि छल हरिजन होई॥
सोचनीय नहिं कोशलराऊ। भुवन चारिदस प्रकट प्रभाऊ॥
भयउ न अहै न होनिउहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥
विधिहरिहरसुरपति दिशिनाथा। बरणहिं सब दशरथ गुण गाथा॥
तीनि काल त्रिभुवन जग माहीं। भूरि भाग्य दशरथ सम नाहीं॥

वह तपस्वी शोच्य है, जिसको तप छोड़ भोग अच्छा लगता है। शोच्य तो चुगलखोर और अकारण क्रोधी लोग हैं। जो माता पिता, गुरु और भाई के साथ द्वेष करता है वह भी शोच्य है। सब प्रकार से शोच्य तो दूसरों का बुरा करने वाला अपना शरीर पुष्ट करने वाला एवं जो बड़ा निष्ठुर है। अन्त में सब प्रकार से शोच्य तो वह है जो छल कपट छोड़ भगवान् का भक्त नहीं है। महाराज दशरथ शोच्य नहीं हैं। क्योंकि उनका यश और प्रभाव चौदहों भुवनों में फैला हुआ है। हे भरत! जैसे तुम्हारे पिता थे—वैसा महाराजा न तो कोई हुआ, न है और न होगा ही। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र, दिक्पाल, सब ही तो दश-

रथ के गुणों का वर्णन करते हैं। तीनों काल में और त्रिभुवन में दशरथ सा बड़भागी नहीं है।

दो०—कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बड़ाई तासु।
रामलषण तुम शत्रुहन, सरिस सुवन सुतजासु॥

हे बेटा! बतलाओ तो, जिनके राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और तुमसे पवित्र पुत्र हैं उनकी बड़ाई कौन किस प्रकार कर सकता है।

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि विषाद करिय तेहिलागी॥
यह सुनि समुझि सोच परिहरहू। सिर धरि राय रजायसु करहू॥
राव राजपद तुम कहँ दीन्हा। पिता वचन फुर चाहिय कीन्हा॥
तजेहु राम जेहि वचनहिं लागी। तनु परिहरेउ राम विरहागी॥
नृपहि वचन प्रिय नहिं प्रिय प्राणा। करहु तात पितु वचन प्रमाणा॥
करहु शीश धरि भूपरजाई। है तुम कहँ सब भाँति भलाई॥
परशुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥
तनय ययातिहि यौवन दयऊ। पितु आज्ञा अघ अयश न भयऊ॥

महाराज दशरथ सब प्रकार से बड़भागी थे उनके लिये वृथा शोक मत करो। यह सुन और समझ कर शोक छोड़ दो और महाराज की आज्ञा को शिरोधार्य कर राज्य करो। महाराज तुमको राजतिलक दे गये हैं, अतः पिता के वचन को सत्य करना चाहिये। महाराज ने जिस वचन के लिये राम त्यागे और राम के वियोगरूपी अग्नि में अपना शरीर छोड़ा—और जो वचन उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यारे थे—उन वचनों को हे बेटा! तुम पूरा करो। महाराज की आज्ञा को शीश पर धारण करो। इसमें सब प्रकार तुम्हारी भलाई है। सब संसार जानता है कि परशुराम जी ने बाप की बात रखने के लिये माता को मार डाला था। राजा ययाति के पुत्र ने अपने पिता को अपना यौवन दिया और पिता की आज्ञा पालन करने से उनको न तो पाप लगा और न उनकी किसी ने निन्दा ही की।

दो०—अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुयश के, बसहिं अमरपति ऐन॥

जो उचित अनुचित का विचार छोड़ अपने पिता के वचनों का पालन करते हैं, वे सुखी और सुन्दर यशस्वी होकर स्वर्ग में निवास करते हैं।

अवशि नरेश वचन फुर करहू। पालहु प्रजा शोक परिहरहू॥
सुरपुर नृप पाइहि परितोषू। तुम कहँ सुकृत सुयश नहिं दोषू॥
वेद विहित सम्मत सब ही का। जेहि पितु देइ सो पावै टीका॥
करहु राज्य परिहरहु गलानी। मानहु मोर वचन हित जानी॥
सुनि सुख लहब राम वैदेही। अनुचित कहब न पण्डित तेही॥
कौशल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी॥
मर्म तुम्हार राम सब जानहिं। सो सब विधि तुमसन भल मानहिं॥
सौंपहुँ राज्य राम के आये। सेवा करेहु सनेह सुहाये॥

तुम अवश्य महाराज की प्रतिज्ञा सत्य करो और प्रजा का पालन कर शोक दूर करो। तुम्हारे ऐसा करने से महाराज स्वर्ग में सन्तुष्ट होंगे और तुमको पुण्य और अच्छा यश मिलेगा—इसके लिये तुम्हें कोई दोष न लगेगा। यह प्रथा वेद विहित और सर्वसम्मत है कि राजतिलक उसीको होता है, जिसको पिता दें। ग्लानि को छोड़ अब तुम राज्य करो और मेरे वचनों को अपने लिये हितकर जान, मान लो। यह सुन कर सीता राम प्रसन्न होंगे और कोई पण्डित भी इस तुम्हारे काम को अनुचित नहीं बतलावेगा। प्रजा के सुख से कौशल्यादि तुम्हारी माताएं भी सुखी होंगी। राम तुम्हारे मन की सब बातें जानते हैं। अतः वे तुमसे सब प्रकार भला मानेंगे। फिर जब श्रीरामचन्द्र जी वन से लौट कर आवें, तब तुम सारा राजपाट उनको सौंप देना और प्रीति के साथ उनकी सेवा करना।

दो०—कीजिय गुरु आयसु अवशि, कहहिं सचिव करजोरि।
रघुपति आये उचित जस, तब तस करब बहोरि॥

मन्त्रि हाथ जोड़ कर कहने लगे—गुरू जी जो आज्ञा देते हैं, उसके अनुसार आप अवश्य करें—फिर जब श्रीरामचन्द्र जी आवें तब जैसा उचित जान पड़े वैसा करना।

कौशल्या धरि धीरज कहई। पूत पथ्य गुरु आयसु अहई॥
सो आदरिय करिय हित मानी। तजिय विषाद कालगति जानी॥
वन रघुपति सुरपुर नरनाहू। तुम यहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव कह अम्बा। तुमहीं सुत सबकर अवलम्बा॥
लखि विधि वाम काल कठिनाई। धीरज धरहु मातु बलिजाई॥
सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि पुरजन दुख हरहू॥
गुरु के वचन सचिव अभिनन्दन। सुनत भरत हियहिमजनुचन्दन॥
सुनी बहोरि मातु मृदुबानी। शील सनेह सरल रस सानी॥

मन को धैर्य बंधा कौशल्या जी ने कहा—बेटा! गुरु जी का कहना बहुत ठीक है। उनको हितकर समझ आदरपूर्वक करो—और काल की गति समझ दुःख मत करो। श्रीरामचन्द्र जी वन में हैं और महाराज स्वर्गवासी हो चुके और तुम अब इस प्रकार कचाते हो। माता ने कहा—बेटा! क्या कुटुम्बी, क्या प्रजा—सब को अब एक तुम्हारा ही सहारा है। हे बेटा! विधाता का वामपन और काल की कठिनाई को ओर ध्यान दे धैर्य धरो, माता तुम्हारी बलैया लेती हैं। तुम गुरु जी की आज्ञा शिरोधार्य्य कर, उसके अनुसार प्रजा का पालन कर कुटुम्बियों के दुःख को दूर करो। गुरु का प्रस्ताव और मंत्री का अनुमोदन सुन भरत जी के मन को वे चन्दन के समान हितकारी जान पड़े। फिर उन्होंने माता की मृदुवाणी जो शील सनेह और सरल थी—सुनी।

छं०—सानी सरलरस मातु बानी सुनि भरत व्याकुल भये।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत विरह उर अंकुर नये॥
सो दशा देखत समय तेहिं बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की॥

माता की सरल वाणी सुन भरत व्याकुल हुए। उनके नेत्र-कमलों से नीर प्रवाहित हुआ जो उनके मन के उत्पन्न वियोगरूपी नये अङ्कुरों को सींचने लगा। उस समय भरत की दशा देख सब लोग अपने आपे में न रहे। तुलसीदास जी कहते हैं कि सब लोग, स्वाभाविक प्रेम की सीमा को आदरपूर्वक सराहने लगे।

सो०—भरत कमलकर जोरि, धर्मधुरन्धर धीर धरि।
वचन अमिय जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहिं॥

धर्मधुरन्धर भरत जी ने धीरज धर और कमल के समान हाथों को जोड़, अमृत में भिंगोये हुए वचनों से सब को उचित उत्तर दिया।

मोहिं उपदेश दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिवसम्मतसब ही का॥
मातु उचित पुनि आयसु दीन्हा। अवसिशीशधरि चाहियकीन्हा॥
गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदितकरियभलजानी॥
उचित कि अनुचित किये विचारू। धर्म जाइ सिर पातक भारू॥
तुम तो देहु सरल शिष सोई। जो आचरत मोर हित होई॥
यद्यपि यह समुझत हैं नीके। तदपि होत परितोष न जीके॥
अब तुम विनय मोरि सुनि लेहू। मोहिं अनुहरत सिखावन देहू॥
उत्तर देउँ क्षमब अपराधू। दुखित दोष गुण गनहिं न साधू॥

गुरू जी ने मुझे जो उपदेश दिया है वह ठीक ही है, क्योंकि उसका अनुमोदन मंत्री तथा प्रजा के लोग भी करते हैं। फिर माता जी ने भी जो उचित आज्ञा दी है—वह भी सिर पर धर अवश्य माननी ही चाहिये। गुरू, पिता माता और स्वामी की हितकर बात को सुन प्रसन्न मन से उसे भली जान करना चाहिये। उस बात के औचित्य और अनौचित्य का निर्णय करने से धर्म जाता है और बड़ा पाप लगता है। आप लोग मुझे वही सीख देते हैं, जिसके अनुसार काम करने से मेरी भलाई होगी। यद्यपि मैं इस बात को भली प्रकार जानता हूँ तथापि मेरे मन को सन्तोष नहीं होता। अब आप मेरी विनय को सुन लीजिये और मेरी ओर देख कर मुझे उपदेश दीजिये। मैं आपकी बातों का उत्तर देता हूँ—इस धृष्टता के लिये मुझे आप लोग क्षमा करें। क्योंकि जो दुखी है उसके गुण वा दोषों पर साधुजन ध्यान नहीं देते।

दो०—पितु सुरपुर सिय राम वन, करन कहहु मोहिं राज।
यहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काज॥

पिता जी तो स्वर्ग सिधारे और सीता राम वन को गये—अब आप मुझे आज्ञा देते हैं कि तुम राज्य करो—क्या इसीमें आप मेरी भलाई और अपने किसी बड़े काम की सफलता समझते हैं ?

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥
शोक समाज राज्य केहि लेखे। लषण राम-सिय-पद बिनु देखे॥
बादि बसन बिनु भूषण भारू। बादि बिरति बिनुब्रह्म विचारू॥
सरुज शरीर बादि सब भोगा। बिनु हरिभक्तिबादि जप योगा॥
जाय देह बिनु जीव सुखाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई॥
जाउँ राम पहँ आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित येहू॥
मोहिं नृप करि आपन भल चहहू। सो सनेह जड़ता वश कहहू॥

मेरा हित तो सीताराम की सेवा करने में है। उससे मुझे मेरी माता की कुटिलता ने वञ्चित कर दिया। मैंने अपने मन में भलीभाँति समझ देखा कि अन्य किसी प्रकार मेरी भलाई नहीं हो सकती, लक्ष्मण को तथा श्रीराम जानकी के चरणों को देखे बिना शोक का सामान यह राजपाट मेरे निकट किसी गिनत में है। क्योंकि वस्त्रों के बिना भूषणों का भार उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे ज्ञान के बिना वैराग्य। रोगी के लिये सारे भोग वृथा हैं, और भगवद्भक्ति के बिना सब जपयोग व्यर्थ हैं। जैसे जीव रहित देह अच्छी नहीं लगती, वैसे ही श्रीराम जी के बिना मेरा सब ही व्यर्थ और बुरा है। मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं श्रीराम जी के पास जाऊँ, क्योंकि मेरी भलाई तो केवल इसीमें है। मुझे राजा बना कर आप लोगों का अपना भला चाहने की बात कहना—प्रम और अज्ञान के वश ही कहना है।

दो०—कैकेयीसुत कुटिल मति, राम विमुख गत लाज।
तुम चाहत सुख मोहवश, मोहिंसे अधम के राज॥

मैं कैकेयी का तो पुत्र हूँ, मेरी बुद्धि भी कुटिल है, श्रीराम के विमुख और निर्लज्ज हूँ। ऐसे मुझ जैसे पापी के राज्य में तुम अज्ञान के वश हो सुख पाने की आशा करते हो।

कहौं साँच सब सुनि पतियाहू। चाहिय धर्मशील नरनाहू॥
मोहिं राज्य हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥
मोहिं समान को पापनिवासी। जेहि लगि सीय राम वनवासी॥
राव राम कहँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमन अमरपुर कीन्हा॥
मैं शठ सब अनरथ कर हेतू। बैठि बात सब सुनउँ सचेतू॥
बिनु रघुवीर विलोकिय वासू। रहे प्राण सहि जग उपहासू॥
राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूप भोग के भूखे॥
कहँ लगि कहउँ हृदय कठिनाई। निदरि कुलिश जेहिं लही बड़ाई॥

मैं सत्य कहता हूँ, आप सब लोग विश्वास करलें कि राजा वह होना चाहिये जो धर्म्मात्मा हो। यदि आप मुझे राजा बनावेंगे तो यह पृथिवी रसातल को चली जायगी। क्योंकि मुझसे बढ़ कर दूसरा पापी और कौन है, जिसके कारण श्रीरामचन्द्र जी और सीता को वन जाना पड़ा। महाराज ने श्रीरामचन्द्र जी को वनवास दिया और उनके बिछुरते ही वे स्वयं स्वर्ग सिधारे। मैं ऐसा मूर्ख हूँ कि मैं सब अनर्थों की जड़ होकर भी-सारी बातें सचेत होकर सुन रहा हूँ। श्रीरामचन्द्र के सूने में इन स्थानों को देख-मेरे प्राण बने रहे—इसीसे मैंने सब लोगों की यह हँसी भी सहली। मेरे प्राण मानों श्रीरामजी के पवित्र विषय के रस से रूखे हैं और राज्य के तथा राजभोगों के भूखे हैं! मैं अपने मन की निष्ठुरता को कहाँ तक कहूँ—इसने तो इन्द्र के वज्र की कठोरता को भी हरा कर कठोरता में प्रशंसा प्राप्त की है।

दो०—कारण तें कारज कठिन, होय दोष नहिं मोर।
कुलिश अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर॥

कारण से कार्य कठिन हुआ ही करता है—इसमें मेरा दोष भी नहीं है। जैसे हड्डी से बना वज्र और पत्थर से उत्पन्न लोहा बड़ा कड़ा हुआ करता है।

कैकेयी-भव-तनु अनुरागे। पामर प्राण अघाइँ अभागे॥
जो प्रिय विरह प्राण प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे॥

लषण रामसिय कहँ बन दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा॥
लीन्ह बिधवपन अपयश आपू। दीन्हेउ प्रजहिं शोक सन्तापू॥
मोहिं दीन्ह सुख सुयश सुराजू। कीन्ह केकयी सब कर काजू॥
यहि ते मोर कहा अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम टीका॥
केकयि-जठर-जन्मि जग माहीं। यह मो कहँ कछु अनुचित नाहीं॥
मोरि बात सब विधिहिं बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई॥

कैकेयी की कोख से उत्पन्न और शरीर से अनुराग रखने वाले मेरे प्राण बड़े नीच और बड़े अभागे हैं। क्योंकि यदि उन्हें प्राणों से बढ़ कर प्यारे श्रीराम जी का वियोग प्यारा लगा है तो इन्हें आगे अब बहुत दुःख मिलेगा। कैकेयी ने लक्ष्मण, राम और सीता को वन में भेजा और स्वर्ग को भेज पति का बड़ा भला किया। स्वयं उसने अपने इस कार्य से रँड़ापन लिया और सारे संसार में अपनी निन्दा करायी और प्रजा के लोगों को दुःख और सन्ताप दिया। मुझे सुख, सुयश और अच्छा राज्य देकर कैकेयी ने सब का काम बनाया! इससे बढ़ कर मेरे पक्ष में और भलाई क्या होगी—तिस पर आप लोग मुझे राजगद्दी देना चाहते हैं। कैकेयी की कोख से जन्म लेकर इस संसार में मेरे लिये कोई बात अनुचित नहीं है। विधाता तो मेरी सब तरह बना ही चुका—अब प्रजा और पञ्च (विधाता की) सहायता क्यों करते हैं?

दो०—ग्रहगृहीत पुनि बातवश, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाइय वारुणी, कहहु कवन उपचार॥

जो बुरे ग्रहों की दशा में है, और तिस पर वह सन्निपात में खेल रहा है, तिस पर भी उसे बीछी ने काट खाया है, उसे यदि फिर मदिरा पिला दी जाय तो कहिये उसके बचने का क्या उपाय है?

केकयिसुवन योग जग जोई। चतुर विरञ्चि रचा मोहिं सोई॥
दशरथतनय राम लघु भाई। दीन्ह मोहिं विधि बादि बड़ाई॥
तुम सब कहहु कढ़ावन टीका। राय राज सब ही कहँ नीका॥

उतरदेउँ केहि विधि केहि केही । कहहु सुखेन यथा रुचि जेही ॥
मोहिं कुमातु समेत विहाई । कहहु कहिहि को कीन्ह भलाई ॥
मोहिं बिनु को सचराचर माहीं । जेहि सियराम प्राण प्रिय नाहीं ॥
परम हानि सब कहँ बड़ लाहू । अदिन मोर नहिं दूषण काहू ॥
संशयशील प्रेमवश अहहू । सबै उचित सब जो कछु कहहू ॥

कैकेयी के पुत्र के योग्य इस संसार में जो कुछ होना चाहिये था—वही तो चतुर विधाता ने मेरे लिये रचा है । किन्तु साथ ही मैं दशरथ का पुत्र और श्रीराम का छोटा भाई हूँ—अत: विधाता ने यह नेकनामी मुझे व्यर्थ दे दी । तुम सब लोग राजतिलक कराने का मुझसे अनुरोध करते हो—सो राज होना और राज्य करना—सब ही को अच्छा लगता है । परन्तु मैं किसे किसे और क्या क्या उत्तर दूँ । इसलिये जिसके जी में जो आवे सो कह डालें । (एक प्रकार से) आप लोगों का कथन भी ठीक है । क्योंकि मुझे और मेरी दुष्ट माता को छोड़-इस संसार में और कौन ऐसा है, जिसने ऐसा अच्छा काम किया हो । मुझे छोड़ इस स्थावर जंगम जगत में कौन ऐसा (अभागा) है, जिसे श्रीरामचन्द्र और सीता प्राणों के समान प्यारे नहीं हैं । श्रीराम के वनवास से इतनी बड़ी तो हानि हुई, किन्तु यह सब को बड़ा लाभ ही देख पड़ता है, इसमें दोष किसी का नहीं है-मेरे ही बुरे दिनों का यह भी एक फल है । आप लोग संशय और प्रेम के वशवर्त्ती हो रहे हो, अतः आप लोग जो कुछ कहते हैं सो सब ठीक ही है ।

दो०—राम मातु सुठि सरल चित, मो पर प्रेम विशेखि ।
कहहिं सुभाव सनेहवश, मोरि दीनता देखि ॥

कौशल्या जी तो सुन्दर सीधे स्वभाव की हैं और मेरे ऊपर उनका विशेष स्नेह है, अत: वे स्वाभाविक स्नेहवश हो और मेरी दीनता देख ऐसा कहतीं हैं ।

गुरु विवेकसागर जग जाना । जिनहिं विश्व कर बदर समाना ॥
मोकहँ तिलक साजि सजि सोऊ । भाविधिविमुखविमुखसबकोऊ ॥
परिहरि राम सीय जग माहीं । को नहिं कहिहिमोर मत नाहीं ॥

सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अन्तहु कीच तहाँ जहँ पानी ॥
डर न मोहिं जग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिंन सोचू ॥
एकै बड़ि उर दुसह दवारी। मोहिं लगि भे सियराम दुखारी ॥
जीवन लाहु लषण भल पावा। सबतजि रामचरण मन लावा ॥
मोर जन्म रघुवर वन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी ॥

और हमारे गुरु जी को संसार जानता है कि वे ज्ञान के सागर हैं और यह संसार जिनके हाथ में बेर के समान हो रहा है, वे भी मुझे राजगद्दी देने की तैयारी कर रहे हैं--सो जब विधाता उल्टा होता है, तब सभी विरुद्ध हो जाते हैं। श्रीराम जानकी को छोड़, इस संसार में और कोई भी यह न मानेगा कि श्रीरामचन्द्र जी को वन भेजने में मेरा हाथ नहीं है। इसे मैं सहर्ष सुनने को प्रस्तुत हूँ, किन्तु कीच वहीं होती है जहाँ पानी होता है। सारा संसार मुझे भले ही नीच कहे—मुझे इसकी रत्ती भर भी चिन्ता नहीं है—और न मुझे परलोक ही का डर है, किन्तु मेरे मन में यह एक बड़ी भारी जलन है कि मेरे कारण श्रीराम जानकी को दुःख हुआ। भैया लक्ष्मण का जन्म सफल है—जिसने सब छोड़ कर अपना मन श्रीराम के चरणों में लगाया है और मेरा जन्म तो श्रीरामचन्द्र जी को वन में भेजने के लिये हुआ है, मैं अभागा तो झूँठमूठ ही पछता रहा हूँ।

दो०—आपनि दारुण दीनता, सबहिं कह्यों समुझाय।
देखे बिनु रघुवीरपद, जियकी जरनि न जाय ॥

मैं अपनी दारुण दीनता सब को खोल कर सुनाये देता हूँ कि जब तक मैं श्रीरामचन्द्र जी से न मिलूँगा, तब तक मेरे जी की जलन दूर न होगी।

आन उपाय मोहिं नहिं सूझा। को जिय की रघुवर बिनु बूझा ॥
एकहि आँक यहै मन माहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं ॥
यद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहिं कारण सकल उपाधी ॥
तदपि शरण सन्मुख मोहिं देखी। छमिसब करिहहिं कृपा विशेखी ॥

शील सकुचि सुठिसरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं शिशु सेवक यद्यपि वामा॥
तुम पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आशिष देहु सुबानी॥
जेहिं सुनि विनय मोहिंजनजानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी॥

बिना श्रीरामचन्द्र के मेरे मन का हाल दूसरा कोई नहीं जान सकता--इसलिये इसका दूसरा उपाय मुझे नहीं सूझता। मुझे तो अब एक यही लगी है कि कल सबेरे मैं श्रीरामचन्द्र जी के पास चलूँगा। यद्यपि मैं बुरा हूँ और दोषी हूँ और मेरे ही कारण--सारी उपाधियाँ खड़ी हुई हैं, तो भी जब वे मुझे अपनी शरण में आया देखेंगे, तब मेरे सब अपराधों को वे क्षमा कर मेरे ऊपर विशेष कृपा करेंगे। क्योंकि श्रीराम जी कृपालु, बड़े शीलवान और सरल स्वभाव के हैं। श्रीराम जी ने तो अपने शत्रु का भी कभी कुछ नहीं बिगाड़ा-तिस पर मैं तो उनका सेवक और बालक ही ठहरा-यदि टेढ़ा भी हूँ—तो क्या? अत: आप पञ्च भी मेरी भलाई समझ कर, सुन्दर वचनों से आशीर्वाद दे मुझे आज्ञा दीजिये। जिससे मेरी प्रार्थना सुन और मुझे अपना दास जान श्रीरामचन्द्र जी राजधानी को लौट आवें।

दो०—यद्यपि जन्म कुमातु तें, मैं शठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागि हैं, मोहिं रघुवीर भरोस॥

यद्यपि मेरी जननी दुष्टा है और मैं शठ सदा दोषी हूँ, तो भी मुझे श्रीरामचन्द्र जी का पूरा भरोसा है कि वे मुझे अपना समझ कभी न त्यागेंगे।

भरतवचन सब कहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे॥
लोग वियोग विषम दुःख दागे। मन्त्र सजीव सुनत जनु जागे॥
मातु सचिव गुरु पुर-नर-नारी। सकल सनेह विकल भइँ भारी॥
भरतहि कहहिं सराहि सराही। रामप्रेम मूरति जनु आही॥
तात भरत अस काहे न कहहू। प्राण समान रामप्रिय अहहू॥
जो पामर आपनि जड़ताई। तुम्हहिं सुगाइ मातु कुटिलाई॥

सो शठ कोटिक पुरुष समेता। बसहिं कलपशत नरक निकेता॥
अहि अघ अवगुण मणि नहि गहई। हरै गरल दुखदारिद दहई॥

भरत जी की बातें सब को अच्छी लगीं—मानों वे श्रीराम के प्रेमरूपी अमृत में पगी हुई थीं। सब लोग जो श्रीराम वियोगरूपी कठिन दुःख से अचेत जैसे थे—वे भरत की इन बातों को सुन वैसे ही जाग उठे, जैसे सजीवन मंत्र को सुन मृत पुरुष जाग उठता है। माता, मंत्री, गुरू और नगर के नरनारी—सब ही विकल हुए। वे सब भरत की बार बार प्रशंसा करने लगे और कहने लगे—भरत जी, श्रीरामचन्द्र जी के प्रेम की जीवित मूर्ति हैं। हे भरत! तुम भी ऐसा क्यों न कहोगे—तुम तो श्रीराम को प्राणों के समान प्यारे हो। वह बड़ा नीच है, जो कैकेयी की कुटिलता को तुम्हारे सिर पर मढ़े। वह मूर्ख करोड़ों पीढ़ियों तक और सौ कल्प तक नरक में गिरेगा। मणि सर्प के पाप और अवगुणों को नहीं देखता, किन्तु वह विष के दुःख को हटा कर, दरिद्र को भस्म कर डालता है।

दो०—अवशि चलिय वन राम पहँ, भरत मन्त्र भल कीन्ह।
शोक सिन्धु बूड़त सबहिं, तुम अवलम्बन दीन्ह॥

हे भरत! तुमने बहुत अच्छी सलाह दी कि श्रीरामचन्द्र के पास वन में अवश्य चलना चाहिये। हम सब लोग शोकसागर में डूब रहे थे, सो तुमने सहारा दिया।

भा सब के मन मोद न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा॥
चलब प्रात लगि निर्णय नीके। भरत प्राण प्रिय भे सब ही के॥
मुनिहि बन्दि भरतहिं सिरनाई। चले सकल घर बिदा कराई॥
धन्य भरत जीवन जग माहीं। शील सनेह सराहत जाहीं॥
कहहिं परस्पर भा बड़ काजू। सकल चलै कर साजहिं साजू॥
जेहि राखहिं घर रहु रखवारी। सो जानै जनु गरदन मारी॥
कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू। को न चहै जग जीवन लाहू*॥

* इस चौकड़ी में ८ की जगह के ७ ही कड़ियाँ हैं।

जिस प्रकार बादल की गरज सुन चातक और मोर प्रसन्न होता है, वैसे ही भरत जी की बातें सुन सब लोग प्रसन्न हुए। प्रातःकाल चलने का निश्चय जान, भरत जी सब को प्राणों जैसे प्यारे लगने लगे। सब लोग वसिष्ठजी तथा भरत जी को प्रणाम कर अपने अपने घरों को चल दिये। वे सब रास्ते भर इस संसार में भरत के जीवन को धन्य बतलाते और उनके शील सनेह की प्रशंसा करते चले जाते थे। वे आपस में कहते कि चलो आज बड़ा काम बना—सब लोग चल कर चलने की तैयारियाँ करें। घर की रखवाली करने के लिये रहने को जिससे कहा जाता—वह समझता मानों मेरी गर्दन ही काट डाली। कोई कहता कि किसी से रहने के लिये मत कहो—क्योंकि ऐसा कौन है जो अपना जीवन सफल करना न चाहता हो।

दो०—जरै सुसम्पति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाय।
सन्मुख होत जो रामपद, करैं न सहज सहाय॥

वह सारी सम्पत्ति, घर द्वार, सुख, और वे मित्र, माता पिता और भाई—भले ही भाड़ में पड़ें—जो चित्त से श्रीरामचन्द्र जी के चरणों के दर्शन में बाधक हों।

घर घर बाहन साजहिं नाना। हर्षहिं हृदय प्रभात पयाना॥
भरत जाइ घर कीन्ह विचारू। नगर बाजि गज भवन भँडारू॥
सम्पति सब रघुपति कै आही। जो बिनु यतन चलौं तजि ताही॥
तौ परिणाम न मोरि भलाई। पाप शिरोमणि साइँ दुहाई॥
करहि स्वामि हित सेवक सोई। दूषण कोटि देइ किन कोई॥
अस विचारि शुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धर्म न डोले॥
कहि सब मर्म धर्म सब भाखा। जो जेहि लायक सो तहँ राखा॥
करि सब यतन राखि रखवारे। राम मातु पहँ भरत सिधारे॥

घर घर सवारियाँ तैयार की जा रही हैं और सब प्रसन्न हैं कि कल सबेरे यात्रा करेंगे। भरत ने घर में जाकर सोचा कि नगर, घोड़े हाथी, धन और धाम—ये सब श्रीरघुनाथ जी के हैं यदि इनकी रक्षा का उपाय किये बिना चला

तो अन्त में मेरी भलाई भी न होगी और मैं पापियों का शिरोमणि कहलाऊँगा। सेवक का धर्म है कि जैसे बने वैसे स्वामी की भलाई करे—भले ही लोग उस पर अनेकानेक दोषारोपण करें। इस प्रकार निश्चय कर भरत ने वे विश्वस्त सेवक बुलाये, जो स्वप्न में भी कभी अपने धर्म से विचलित होने वाले नहीं थे। उनको सब बातें खोल कर भरत जी ने समझायीं और उनको उनके कर्त्तव्य समझा कर, जो जिस काम के योग्य था—उसे वह काम सौंपा। इस प्रकार पूरा पूरा प्रबन्ध कर और रक्षकों को नियुक्त कर, भरत कौशल्या जी के पास गये।

दो०—आरत जननी जानि सब, भरत सनेह सुजान।
कहेउ सजावन पालकी, सुखद सुखासन यान॥

सब माताओं को दुःखी जान, प्रेम को जानने वाले भरत जी ने, पालकी तथा अन्य सुख से बैठने योग्य सवारियाँ तैयार किये जाने की आज्ञा दी।

चक चकई इव पुर नर नारी। चलब प्रात उर आनँद भारी॥
जागत सब निशि भयउ बिहाना। भरत बुलाये सचिव सुजाना॥
कहेउ लेहु सब तिलक समाजू। वनहिं देव मुनि रामहिं राजू॥
वेगि चलहु सुनि सचिव जुहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे॥
अरुन्धती अरु अग्नि समाजू। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराजू॥
विप्रवृन्द चढ़ि वाहन नाना। चले सकल तप-तेज-निधाना॥
नगर लोग सब सजि सजि याना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥
शिबिका सुभग न जाइँ बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी॥

नगर के नर नारियों के मन में चकई चकवा की तरह सवेरे यात्रा करने की उत्कण्ठा है। सारी रात जागते ही बीती और सबेरा हुआ। तब भरत जी ने मंत्रियों को बुलवाया और उनसे कहा कि राजतिलक का सारा सामान साथ में ले लो। वसिष्ठ जी वन ही में श्रीराम जी के राजतिलक करेंगे। जाकर जल्दी करो—यह सुन सब मंत्री प्रणाम कर घोड़े, रथ, हाथी तैयार करवाने लगे। सब

से पहले वसिष्ठ जी अपनी स्त्री अरुन्धती और अग्निहोत्र के पात्रों सहित रथ पर सवार हो चले। तदनन्तर अन्य सब तेजस्वी और तपस्वी ब्राह्मण अनेक प्रकार की सवारियों पर चढ़ कर चले। नगरनिवासी अपनी अपनी सवारियों को सजा सजा कर चित्रकूट की ओर चले। जिन पालकियों पर सब रानियाँ बैठी थीं—उन का वर्णन नहीं हो सकता।

दो०—सौंपि नगर शुचि सेवकन्ह, सादर सबहि चलाइ।
सुमिरि राम-सिय-चरण तब, चले भरत दोउ भाइ॥

नगर की रक्षा का भार ईमानदार कर्मचारियों को सौंप और आदरपूर्वक सब को आगे चला कर, और सीताराम के चरणों को स्मरण कर भरत और शत्रुघ्न चले।

राम दरस हित सब नर नारी। जनु करि करिणि चलेतकिवारी॥
वन सिय राम समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहि जाहीं॥
देखि सनेह लोग अनुरागे। उतरि चले हय गज रथ त्यागे॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राममातु मृदु वाणी बोली॥
तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवार दुखारी॥
तुम्हरे चलत चलिहिं सब लोगू। सकल शोक कृश नहिं मग योगू॥
सिर धरि वचन चरण सिरनाई। रथ चढ़ि चलत भये दोउ भाई॥
तमसा प्रथम दिवस करि वासू। दूसर गोमति तीर निवासू॥

सब लोग श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन करने वैसे ही वेग से चले जैसे वेग से प्यास के मारे हाथी और हथिनी जल देख कर जाते हैं। सीताराम वन में हैं—यह समझ भरत, छोटे भाई शत्रुघ्न सहित पैदल ही चले। भरत जी की इस भ्रातृभक्ति को देख अन्य लोग भी सवारियों से उतर पैदल ही चले। यह देख, श्रीराम जी की माता भरत जी के पास जा और अपनी डोली खड़ी करा भरत जी से कहने लगीं—हे बेटा! तेरी बलैयाँ लूँ—रथ पर बैठ जावो क्योंकि तुम्हारे पैदल चलने से कुटुम्बी दुःखी होते हैं। तुम यदि सवारी पर चढ़ कर

चलोगे तो और लोग भी वैसे ही चलेंगे। क्योंकि सब लोग दुःखी हो निर्बल हो रहे हैं और पैदल चलने योग्य नहीं हैं। कौशल्या जी की इस आज्ञा को सिर पर रख, भरत और शत्रुघ्न रथ पर जा बैठे। पहला पड़ाव तमसा के तट पर और दूसरा गोमती के तट पर डाला गया।

दो०—पय अहार फल अशन इक, निशि भोजन सब लोग।
करत राम हित नेमव्रत, परिहरि भूषण भोग॥

सब लोग रात में एक बार फलाहार करते अथवा दूध पी कर रह जाते थे। श्रीराम जी के लिये उन्होंने सब आभूषण और संसार के भोग छोड़ कर नेम व्रत धारण किया।

सई तीर वसि चले बिहाने। शृङ्गबेरपुर सब नियराने॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदय विचारि करै सविषादा॥
कारण कवन भरत वन जाहीं। है कछु कपट भाव मन माहीं॥
जो पै जिय न होत कुटिलाई। तौ कस लीन्ह सङ्ग कटकाई॥
जानहिं सानुज रामहिं मारी। करौं अकण्टक राज सुखारी॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलङ्क अब जीवन हानी॥
सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहिं समर न जीतन हारा॥
का आश्चर्य भरत अस करहीं। नहि विषबेलि अमियफल फरहीं॥

सई के तीर पर रात बिता, वे सबेरा होते ही चल दिये और शृङ्गबेरपुर के पास पहुँचे। इन सब के आने का संवाद निषाद ने सुना। वह दुःखी हो सोचने लगा कि भरत के वन जाने का कारण क्या है, जान पड़ता उनकी नियत ठीक नहीं है। यदि उनकी नियत बुरी न होती तो वे इतनी सेना सजा कर क्यों जाते। कदाचित् उन्होंने विचारा हो कि लक्ष्मण सहित श्रीराम को मार निष्कण्टक राज्य करूँ। यदि ऐसा है तो भरत राजनीति नहीं जानते। क्योंकि पहले तो उनके माथे कलङ्क का टीका ही लगा था, पर अब तो वे अपनी जान भी खो बैठेंगे। भले ही सब सुर असुर एकत्र हो आवें, पर युद्ध में श्रीराम को

कोई जीत नहीं सकता। क्या आश्चर्य है जो भरत ऐसा ही करें--क्योंकि विष की बेल में अमृतफल नहीं लगते।

दो०—अस विचारि गुह ज्ञातिसन, कहेउ सजग सब होहु।
हथवासहु बोरहु तरणि, कीजिय घाटा रोहु॥

यह सोच निषाद ने अपनी बिरादरी के लोगों से कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ, पतवार और नावों को डुबो दो और घाट बन्द कर दो।

होइ सजग सब रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरण कर ठाटा॥
सन्मुख लोह भरत सन लेहू। जियत न सुरसरि उतरन देहू॥
समर मरण पुनि सुरसरि तीरा। रामकाज क्षणभंगु शरीरा॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू। बड़े भाग्य अस पाइय मीचू॥
स्वामि काज करि हौं रणरारी। लेइ हौं सुयश भुवन दसचारी॥
तजहुँ प्राण रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे॥
साधु समाज न जा कर लेखा। रामभक्ति उर जासु न रेखा॥
जाय जियत जग सो महिभारू। जननी-यौवन-विटप-कुठारू॥

सावधान होकर घाट रोको और मरने को तैयार हो जावो। भरत के विरुद्ध अस्त्र धारण करो और प्राण रहते उन्हें पार मत जाने दो। एक तो युद्धक्षेत्र का मरना है तिस पर गङ्गा जी का तीर है और श्रीरामचन्द्र जी का काम है। शरीर तो क्षणभंगुर है। कहाँ तो भरत और कहाँ मैं एक नीच जन--बड़े भाग्य से ऐसी मृत्यु मिलती है। अपने स्वामी के काम के लिये मैं लड़ूँगा--और चौदह भुवनों में अपना नाम करूँगा। श्रीरामचन्द्र जी के लिये प्राण देने में--मेरे दोनों हाथों में लड्डू हैं। न तो जिसकी गिनती साधु समाज में है और न जो रामभक्तों ही में गिना जाता है--उसका संसार में जीना-पृथिवी के लिये भार है और वह माता के यौवनरूपी वृक्ष के लिये कुठार है।

दो०-विगत विषाद निषादपति, सबहिं बढ़ाय उछाह।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाह॥

इस प्रकार निश्चिन्त हो निषादराज ने सब का उत्साह बढ़ाया और श्रीरामचन्द्र जी का स्मरण कर, तुरन्त धनुष, तरकस और कवच माँगा।

वेगहि भाइ सजहु संजोऊ। सुनि रजाय कदराय न कोऊ॥
भले नाथ सब कहहिं सहर्षा। एकहि एक बढ़ावहिं कर्षा॥
चले निषाद जुहारि जुहारी। शूर सकल रण रुचै न रारी॥
सुमिरि रामपद पङ्कज पनहीं। माथा बाँधि चढ़ावहिं धनुहीं॥
अँगुरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं। फरसा बाँस शेल सम करहीं॥
एक कुशल अति ओड़न खाँड़े। कूदहिं गगन मनहुँ क्षिति छाँड़े॥
निज निज साज समाज बनाई। गुहरावतहिं जुहारहिं जाई॥
देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने॥

हे भाई! तुरन्त सारी तैयारियाँ करो। खबरदार मेरी आज्ञा को सुन कोई कचयाय न जाय। सब लोगों ने सहर्ष कहा—"बहुत अच्छा" और वे आपस में एक दूसरे को बढ़ावा देने लगे। वे सब निषाद आपस में प्रणाम कर चले—उन्हें युद्ध बड़ा प्रिय है। श्रीरामचन्द्र जी के चरणों की पनही को स्मरण कर, वे तरकस बाँध और धनुष पर रोदा चढ़ाते हैं फिर बख्तर पहन सिर पर लोहे के टोप रखते हैं, और बरछा, फरसा और बरछी को ठीक करते हैं। इनमें से कुछ तो तलवार चलाने में बड़े प्रवीण हैं। वे सब ऐसे कूदते हैं मानों पृथिवी छोड़ वे आकाश में हैं। इस प्रकार युद्धवेष धारण कर वे अपने सामन्त के पास जा कर उसे प्रणाम करते हैं। निषादपति ने योद्धाओं को देख और सब को योग्य जान उनका सन्मान बढ़ाने के लिये उनके नाम ले ले कर उन्हें पुकारा और कहा:—

दो०—भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहिं।
सुनि सरोष बोले सुभट, वीर अधीर न होहिं॥

हे भाइयो! आज मेरा बड़ा काम है, देखो मुझे धोखा मत देना—यह सुन सब योद्धा क्रोध में भर कहने लगे—हे वीर! ऐसे अधीर मत हो।

राम प्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटक बिनु भट बिनु घोरे॥
जियत पाँव नहिं पीछे धरहीं। रुण्ड मुण्डमय मेदिनि करहीं॥

दीख निषाद नाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥
इतना कहत छींक भइ बाँये। कहेउ शकुनियन्ह खेत सुहाये॥
बूढ़ एक कह शकुन विचारी। भरतहि मिलिय न होइहि रारी॥
रामहि भरत मनावन जाहीं। शकुन कहै अस विग्रह नाहीं॥
सुनि गुह कहै नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा॥
भरत स्वभाव शील बिनु बूझे। बड़ि हितहानि जानि बिनुबूझे॥

हे नाथ! श्रीरामचन्द्र जी के प्रताप और तुम्हारे बल से हम भरत की सेना को वीर-शून्य और घोड़ा रहित कर देंगे। जब तक शरीर में प्राण रहेंगे, तब तक पीछे पैर न देंगे और पृथिवी को रुण्ड मुण्डमय करदेंगे। उन सब की इस प्रकार की तैयारी कर निषादाधिपति ने मारू बाजा बजाये जाने की आज्ञा दे दी। आज्ञा देते समय बाईं ओर से छींक हुई। यह देख सगुनोतियों ने कहा कि खेत अपने हाथ रहेगा। उनमें से एक बूढ़े ने कहा कि इस शकुन का यह फल है कि भरत के साथ लड़ाई की नौबत ही न आवेगी। भरत जी तो श्रीरामचन्द्र जी को मनाने जा रहे हैं लड़ने नहीं, मेरा शकुन तो यही बोलता है। गुह ने उस बूढ़े की बातें सुन कर कहा—"बूढ़ ठीक कहता है। मूर्ख सहसा काम कर डालते हैं और पीछे पछताते हैं। भरत का शील उदासीन जाने बिना उनके साथ युद्ध करने से बड़ी बुराई होगी।

दो०—गहहु घाट भट सिमिट सब, लेउँ मर्म्म मिलि जाय।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तब तस करब उपाय॥

सब वीर तो मिल कर घाट की रक्षा करें और मैं उनसे मिल कर उनका मर्म लेता हूँ। तदनन्तर शत्रु मित्र अथवा उदासी जान कर, तदनुसार उचित उपाय किया जायगा।

लखब सनेह स्वभाव सुहाये। वैर प्रीति नहिं दुरहिं दुराये॥
अस कहि भेंट सजावन लागे। कन्दमूल फल खग मृग माँगे॥
मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरिभार कहारन आने॥
मिलन साजसजिमिलन सिधाये। मङ्गलमूल शकुन शुभ पाये॥

देखि दूरि तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीशहिं दण्ड प्रणामू॥
जानि राम प्रिय दीन्ह अशीशा। भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीशा॥
रामसखा सुनि स्यन्दन त्यागा। चले तुरत उमँगत अनुरागा॥
गाँव जाति गुह नाम सुनाई। कीन्ह जुहार माथ महि लाई॥

मैं उनके सुन्दर स्वभाव ही से उनके स्नेह का हाल जान लूँगा--क्योंकि वैर अथवा प्रीति छिपाने से नहीं छिपती। इस प्रकार कह गुह ने भेंट सजाना आरम्भ किया और कन्दमूल फल और खग मृग मँगवाये। कहार लोग बैंगियाँ भर भर पुरानी और मोटी मछलियाँ लाये। जब भेंट का सारा सामान एकत्र हो गया, तब वे भरत जी से मिलने गये और जाते समय मार्ग में उन्हें शुभ शकुन दीख पड़े। निषाद ने दूर से देख और अपना नाम लेकर वसिष्ठ जी को प्रणाम किया। मुनि ने उसे श्रीरामचन्द्र जी का सखा समझ आशीर्वाद दिया और भरत जी को मुनि ने समझा कर उसका परिचय दिया। श्रीराम जी के मित्र का परिचय पा भरत जी तुरन्त रथ से उतर पड़े और प्रेम की उमंग में भर उससे मिलने चले। तब गुह ने अपना गाँव, नाम, जाति कह कर झुक कर प्रणाम किया।

दो०—करत दण्डवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाय।
मनहुँ लषण सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाय॥

निषाद को प्रणाम करते देख भरत ने उसे छाती से लगा लिया और वे समझे कि मानों हमें लक्ष्मण जी मिल गये। उस समय उनके मन में जो आनन्द उत्पन्न हुआ, वह हृदय में न समा सका।

भेंटे भरत ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम की रीती॥
धन्य धन्य ध्वनि मङ्गल मूला। सुर सराहि तेहिं वर्षहिं फूला॥
लोक वेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइय सींचा॥
तेहिं भरि अङ्क राम-लघुभ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता॥
राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिनहिं न पाप पुञ्ज समुहाहीं॥

यहि तौ राम लाय उर लीन्हा। कुल समेत जग पावन कीन्हा ॥
कर्मनाश जल सुरसरि परई। तेहि को कहहु शीश नहिं धरई ॥
उलटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भे ब्रह्म समाना ॥

भरत जी उससे बड़ी प्रीति के साथ मिले। लोगों ने भरत जी की गुह को ऐसी प्रीति के साथ मिलने की सराहना की। देवता मङ्गलसूचक धन्य धन्य की ध्वनि कर फूलों की वर्षा कर उसकी प्रशंसा करने लगे। गुह तो लोक और वेद—दोनों में ऐसा नीच मनुष्य है कि जिसकी छाया के स्पर्श होने से भी स्नान करने पड़ते हैं। उससे भरत जी पुलकित शरीर हो उसे छाती से लगा मिलते हैं। राम राम कह कर जो जम्हाई लेते हैं, उनके सामने पाप नहीं ठहर सकता। इसे तो श्रीराम ने स्वयं छाती से लगा-सकुटुम्ब पवित्र कर दिया। कर्मनाशा का जल गङ्गा में गिरने से, सब लोग उसे मस्तक पर धारण करते हैं और उलटा नाम जपते जपते बाल्मीकि जी ब्रह्म के समान हो गये।

दो०—स्वपच सबर खस यवन जड़, पामर कोल किरात।
राम कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥

श्वपच, शबर, म्लेच्छ मूर्ख, नीच और कोल भील भी श्रीराम का नाम लेने से केवल पवित्र ही नहीं हो जाते किन्तु जगत-प्रसिद्ध भी हो जाते हैं।

नहिं अचरज युग युग चलि आई। केहि न दीन्ह रघुबीर बड़ाई ॥
राम नाम महिमा सुर कहहीं। सुनिसुनि अवधलोगसुखलहहीं ॥
राम सखहि-मिलि भरत सप्रेमा। पूछहिं कुशल सुमङ्गल क्षेमा ॥
देखि भरत कर शील सनेहू। भा निषाद तेहि समय विदेहू ॥
सकुच सनेह मोद मन बाढ़ा। भरतहि चितवत इकटक ठाढ़ा ॥
धरि धीरज पद बन्दि बहोरी। विनय सप्रेम करत कर जोरी ॥
कुशल मूल पदपङ्कज देखी। मैं तिहुँ काल कुशल निज लेखी ॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे। सहित कोटि कुल मङ्गल मोरे ॥

इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि यह रीति तो युगानुयुग से चली आती है कि श्रीरामचन्द्र जी अपने सब भक्तों को बड़ाई देते हैं। देवता भी श्रीरामनाम

की महिमा का बखान करते हैं, जिसे सुन अयोध्यावासी सुखी होते हैं। प्रेम सहित गुह से मिल, उससे भरत जी ने कुशल क्षेम पूछी। भरत जी का ऐसा शील और स्नेह देख निषादाधिपति को अपने शरीर की सुध बुध न रही। वह सङ्कोच स्नेह और मोद में भर, भरत जी को टकटकी बाँध-निहारता हुआ खड़ा रह गया। फिर धीरज धर, और पैर छू, तथा हाथ जोड़, बड़ी प्रीति के साथ विनय करने लगा। आनन्द की जड़ और कमल के सम न चरणों को देख, मैंने तो अपनी कुशल तीनों कालों में समझ ली। हे स्वामी! अब आपकी अधिक कृपा से मेरी अगणित पीढ़ियों तक आनन्द मङ्गल रहेगा।

दो०—समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जिय जोइ।
जो न भजै रघुबीरपद, जग बिधिबञ्चित सोइ॥

मेरे कुलाचार को देख, और भगवान् की महिमा को देख, जो श्रीराम जी के चरणों को न भजे-समझना चाहिये वह भाग्यहीन है।

कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक वेद बाहिर सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जब ही तें। भयउँ भुवन भूषण तब ही तें॥
देखि प्रीति सुनि विनय सुहाई। मिले बहोरि लषण लघु भाई॥
कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जुहारी रानी॥
जानि लषण सम देहिं अशीशा। जियहु सुखी सौ लाख बरीशा॥
निरखि निषाद नगर नर नारी। भये सुखी जनु लषण निहारी॥
कहहिं लहेउ यहि जीवन लाहू। भेंटेउ राम भद्र भरि बाहू॥
सुनि निषाद निज भाग्य बड़ाई। प्रमुदित मन लै चलेउ लिवाई॥

मैं, कपटी, डरपोंक, कुबुद्धि और कुजाति हूँ तथा लोक और वेद से सब प्रकार बाहर हूँ—किन्तु श्रीराम जी ने जब से मुझे अपनाया है तब ही से मैं लोक का आभूषण हो गया हूँ। निषाद के प्रेम को देख और उसकी सुन्दर विनय सुन शत्रुघ्न जी उससे मिले। फिर केवट ने सुन्दर शब्दों में अपना परिचय दे आदरपूर्वक सब रानियों को प्रणाम किया। गुह को लक्ष्मण के समान जान

सब ने उसे आशीर्वाद दिये कि तुम आनन्दपूर्वक करोड़ वर्ष जीओ। नगरवासी नरनारियों ने निषाद को देखा और वे ऐसे प्रसन्न हुए मानों उन्होंने लक्ष्मण जी को देखा। वे कहने लगे कि इसका जन्म सफल हुआ कि भरत जी ने इसे छाती से लगा लिया। अपने भाग्य की प्रशंसा सुन निषाद मन ही मन प्रसन्न होता उनको अपने साथ लिवा ले चला।

दो०—सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरुतर सरबाग वन, वास बनायउ जाइ॥

फिर निषाद ने नौकरों को सैन से इशारा किया और वे अपने प्रभु का रुख पा कर चले। घरों में, वृक्षों के नीचे, सरोवर के तट पर, उद्यानों में और वन में जाकर भरत जी और उनके अनुगतों को ले जा कर टिकाया।

शृङ्गबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेहवश अङ्ग शिथिल तब॥
सोहत लिये निषादहि लागू। जनु तनु धरे विनय अनुरागू॥
यहि विधि भरत सेन सब सङ्गा। दीख जाय जगपावनि गङ्गा॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रणामा। भा मन मगन मिले जनु रामा॥
करहिं प्रणाम मगन नर नारी। मुदित ब्रह्ममय वारि निहारी॥
करि मज्जन माँगहि कर जोरी। रामचन्द्रपद प्रीति न थोरी॥
भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू॥
जोरि पाणि वर माँगौं एहू। सीय-राम-पद सहज सनेहू॥

भरत जी ने जब शृङ्गबेरपुर को देखा, तब उनके शरीर के सब अङ्ग शिथिल हो गये। उस समय उन्होंने निषाद के कन्धे पर हाथ रख उसका सहारा लिया। उस समय वे ऐसे सुन्दर जान पड़े, मानों विनय और अनुराग-शरीर धारण किये खड़े हैं। इस प्रकार सारी सेना सहित भरत जी ने जगपावनी गङ्गा जी के दर्शन किये। रामघाट पर पहुँच उस घाट को प्रणाम किया और वहाँ उनका मन ऐसा प्रसन्न हुआ, मानों उन्हें श्रीरामचन्द्र जी ही मिल गये। नगरनिवासी नरनारी भी गङ्गा जी को प्रणाम करते हैं और ब्रह्ममय जल को देख प्रसन्न होते हैं। गङ्गा में

स्नान कर वे यही माँगते हैं कि श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में हमारी बहुत प्रीति हो। भरत जी ने कहा—हे गङ्गे! तुम्हारी रज सम्पूर्ण सुखों की देने वाली और भक्तों के लिये कामधेनु के समान है। अतः मैं हाथ जोड़ कर यही वर माँगता हूँ कि सीताराम जी के चरणों में मेरी स्वाभाविक प्रीति हो।

दो०—यहि विधि मज्जन भरत करि, गुरु अनुशासन पाइ।
मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लिवाइ॥

इस प्रकार भरत जी स्नान कर और गुरु की आज्ञा पा कर, सब माताओं को स्नान करा डेरों में लिवा ले गये।

जहँ तहँ लोगन डेरा कीन्हा। भरत शोध सबही कर लीन्हा॥
गुरु सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहँ गे दोउ भाई॥
चरण चापि कहि कहि मृदुबानी। जननी सकल भरत सनमानी॥
भाइहि सौंपि मातु सेवकाई। आप निषादहि लीन्ह बुलाई॥
चले सखा कर सों कर जोरे। शिथिल शरीर सनेह न थोरे॥
पूछत सखहिं सो ठाँव दिखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ॥
जहँ सिय-राम-लखण निशि सोये। कहत भरे जल लोचन कोये॥
भरत वचन सुनि भयउ विषादू। तुरत तहाँ लै गयउ निषादू॥

जहाँ जहाँ लोग ठहरे थे—वहाँ वहाँ जा कर भरत जी ने सब की खोजखबर ली। दोनों भाई गुरु की सेवा कर और उनकी अनुमति पा, कौशल्या जी के पास गये। भरत जी ने चरणों को दाब कर और मीठे वचन सुना—सब माताओं का सम्मान किया। फिर माता की सेवा को शत्रुघ्न को सौंप—आपने निषाद को बुला भेजा। दोनों मित्र एक दूसरे का हाथ पकड़ चले। उस समय उनका शरीर शिथिल था—किन्तु स्नेह कम न था। भरत जी मित्र से कहते जाते हैं कि हमें वह जगह दिखला कर हमारे नेत्रों की जलन मेटो, जहाँ पर उस रात को सीता, राम और लक्ष्मण सोए थे। यह कहते कहते भरत जी की आँखों में आँसू आ गये। निषाद को भरत जी के वचन सुन बड़ा दुःख हुआ और वह तुरन्त उन्हें वहाँ ले गया।

दो०—जहँ शिंशपा पुनीत तरु, रघुबर किय बिश्राम।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हउ दण्ड प्रणाम॥

जिस पवित्र शीशम के पेड़ के नीचे श्रीरामचन्द्र जी सोये थे—उसको भरत जी ने बड़ी प्रीति और आदर के साथ प्रणाम किया।

कुश साथिरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रणाम प्रदक्षिण लाई॥
चरण रेख रज आँखिन लाई। बनै न कहत प्रीति अधिकाई॥
कनक बिन्दु दुइ चारिक देखे। राखे शीश सीय सम लेखे॥
सजल बिलोचन हृदय गलानी। कहत सखासन बचन सुबानी॥
श्रीहत सीय बिरह द्युति हीना। यथा अवध नर नारि मलीना॥
पिता जनक देउँ पटुतर केही। करतल भोग योग जग जेही॥
ससुर भानु-कुल भानु-भुआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू॥
प्राणनाथ रघुनाथ गुसाँई। जो बड़ होत सो राम बड़ाई॥

उस पेड़ के नीचे सुन्दर कुश की चटाई को देख भरत ने उसे भी प्रणाम कर उसकी परिक्रमा की और श्रीराम के चरणों की रज आँखों से लगायी। उस समय के प्रेम की उमङ्ग को कहते नहीं बन आता। सीता जी के वस्त्र से गिरे हुए दो तीन सुनहले सितारे देख उन्हें साक्षात् जानकी समझ मस्तक पर रखे। फिर नेत्रों में जल भर और दुःखी हो—भरत जी सुन्दर शब्दों में गुह से बोले—हा! यह सितारे भी अयोध्यावासी नरनारियों की तरह छबि छीन और मन मलीन हो गये हैं। जिनकी उपमा नहीं और जिनकी हथेली पर संसार का योग और भोग रखे हुए हैं—वे जनक तो इनके पिता हैं और सूर्यवंश में सूर्य्य के समान महाराज दशरथ जिनकी इन्द्र भी प्रशंसा करते हैं, जिनके ससुर हैं। जिन राम के बड़ाई देने से लोग बड़े होते हैं, वे श्रीराम जिनके स्वामी हैं।

दो०—पति देवता सुतीय मणि, सीय साथरी देखि।
बिदरत हृदय न हहरि मम, पबिते कठिन बिशेखि॥

उन पतिव्रता शिरोमणि जानकी जी की उस सेज को देख कर भी यदि

मेरा हृदय न फटे तो समझना होगा कि मेरा हृदय वज्र से भी बढ़ कर कठोर है।

लालन योग लषण लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुवीरहिं प्राण पियारे॥
मृदु मूरति सुकुमार स्वभाऊ। ताति वायु तनु लागि न काऊ॥
ते वन बसहिं विपति सब भाँती। निदरेउ कोटि कुलिश यहि छाती॥
राम जनमि जग कीन्ह उजागर। रूप शील गुण सब सुख-सागर॥
पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम स्वभाव सबहिं सुख-दाता॥
वैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि विनय मन हरहीं॥
शारद कोटि कोटि शत शेखा। करि न सकहिं प्रभु गुण गण लेखा॥

सुन्दर छोटे भाई लक्ष्मण दुलार करने योग्य हैं, क्योंकि उन जैसा भाई न हुआ और न होवेहीगा। वे नगरनिवासियों के प्यारे और माता पिता के दुलारे हैं और सीताराम जी को प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं। उनकी माधुरी मूर्ति और स्वभाव कोमल है। उनके शरीर में गर्म बयार कभी नहीं लगी। वे ही जब वन में अनेक कष्ट सहते हैं तब तो मेरा हृदय करोड़ों वज्रों का निरादर करता है--अर्थात् बड़ा कड़ा है। श्रीरामचन्द्र जी ने जन्म लेकर जगत को उजागर किया--क्योंकि वे तो रूप, शील, सुख और अन्य समस्त गुणों के सागर हैं। नगर निवासियों को, कुटुम्बियों को, पिता, माता को--श्रीरामचन्द्र जी स्वभाव ही से सुख देने वाले हैं। जो वैरी हैं वे भी उनकी प्रशंसा करते हैं। उनके बोलने, मिलने और विनय का ढङ्ग मनोहर है। असंख्य सरस्वती और असंख्य शेष मिल कर भी भगवान् के गुणों के समूहों की गणना नहीं कर सकते।

दो०—सुख स्वरूप रघुवंश-मणि, मङ्गल-मोद-निधान।
ते सोवत कुश डासि महि, विधि गति अति बलवान॥

जो श्रीरामचन्द्र जी सुख के स्वरूप और आनन्द मङ्गल के भण्डार हैं--वे कुश बिछा कर पृथिवी पर सोवें--सचमुच विधाता की गति बड़ी बलवान् है।

राम सुना दुख कानन काऊ। जीवन तरु जिमि जुगवतराऊ॥
पलक नयनफणि मणि जेहिभाँती। जुगवहिं जननिसकलदिनराती॥
ते अब फिरत विपिन पदचारी। कन्दमूल-फल-फूल-अहारी॥
धिक कैकेयि अमङ्गल मूला। भइसि प्राण प्रीतम प्रतिकूला॥
मैं धिक धिक अघ उदधि अभागी। सब उतपात भयउ जेहि लागी॥
कुल-कलङ्क करि सृजेउ विधाता। साइँ द्रोह मोहिं कीन्ह कुमाता॥
सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिय कत बाद विषादू॥
राम तुमहिं प्रिय तुम प्रिय रामहिं। यह निर्दोष दोष विधि वामहि॥

श्रीराम जी ने तो कानों से भी दुःख का नाम तक नहीं सुना था—महाराज तो उन्हें जीवन मूल की तरह देखते रहते थे। जिस प्रकार पलक नेत्रों को और सर्प अपनी मणि को रखता है उसी प्रकार सब रानियाँ दिन रात उन्हें रखाती थीं। वे अब पांवपियादे वन में घूमते हैं और कन्दमूल फल फूल खाते हैं। इन सब अमङ्गलों की जड़ कैकेयी को धिक्कार है जो प्राणों से भी अधिक प्यारे के विरुद्ध हो गयी। पापों के समुद्र मुझ हतभाग्य को भी धिक्कार है, जिसके लिये ये सारे बखेड़े खड़े हुए। विधाता ने मुझे कुलकलंकी बना कर, उत्पन्न किया और दुष्टा माता ने मुझे अपने स्वामी का बैरी बना दिया। भरत जी के इन वचनों को सुन निषाद ने उन्हें समझाया कि हे नाथ! अब आप व्यर्थ दुःख क्यों करते हैं। आप श्रीराम को प्रिय और श्रीराम आपको प्रिय हैं—इसमें दोष किसी का नहीं है। यदि दोष है तो उल्टे भाग्य का।

छं०—विधि वाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सराहन रावरी॥
तुलसी न तुमसों राम प्रीतम कहत हौं सौहें किये।
परिणाम मङ्गल जानि अपने आनिये धीरज हिये॥

उस वाम विधना की करतूत बड़ी टेढ़ी है, जिसने माता को पागल बना दिया। जिस रात श्रीराम जो यहाँ टिके थे—उस रात वे आदर सहित आपकी

प्रशंसा करते थे। मैं आपकी शपथ खा कर कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्र जी को आपसे बढ़ कर प्यारा और कोई नहीं है। और परिणाम सुखप्रद होगा—यह जान कर धैर्य्य धारण कीजिये।

सो०—अन्तर्यामी राम, सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिय करिय विश्राम, यह विचार दृढ़ आनि मन॥

श्रीराम घट घट की थाह रखने वाले, सङ्कोची, प्रेममय और कृपालु हैं—इस विचार को दृढ़तापूर्वक मन में रख आप चल कर विश्राम कीजिये।

सखावचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा॥
यहि सुधि पाइ नगर-नर-नारी। चले बिलोकन आरत भारी॥
परदच्छिण करि करहिं प्रणामा। देहिं कैकयिहिं खोरि निकामा॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहिं दूषण देहीं॥
एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू॥
निन्दहिं आपु सराह निषादहिं। को कहि सकै बिमोह बिषादहिं॥
यहि बिधि राति लोग सब जागा। भा भिनुसार उतारा लागा॥
गुरुहि सुनाव चढ़ाय सुहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई॥
दण्ड चारि महँ भा सब पारा। उतरि भरत तब सबहिं सँभारा*॥

मित्र के वचन सुन और मन में धीरज रख तथा श्रीराम का स्मरण करते हुए भरत जी अपने डेरे की ओर गये। नगरनिवासी इस संवाद को सुन बड़े दुःखी हो उसे देखने गये। वहाँ जा उसकी परिक्रमा कर और उसे प्रणाम कर कैकेयी को दोष देते हैं। बार बार उनके नेत्रों में आँसू भर आते हैं और वे वाम विधाता को दोष देते हैं। कोई तो भरत के स्नेह को प्रशंसा करता है और कोई कहता है राजा ने नेह निभाया। वे अपनी निन्दा कर, निषाद को सराहते हैं। अधिक मोह और विषाद का बखान कौन कर सकता है। इस प्रकार सब लोग रात भर जागते रहे। सवेरा होते ही खेवा आरम्भ हुआ। गुरु को सुन्दर

* इसमें ८ चौपाइयों की जगह ९ हैं। अतः एक प्रक्षिप्त है।

नाव पर चढ़ा सब माताओं को भरत जी ने नयी नाव पर बिठाया। चार घड़ी में सब पार हो गये। तदनन्तर भरत जी ने सब की खोज खबर ली।

दो०—प्रातक्रिया करि मातुपद, बन्दि गुरुहिं सिर नाइ।
आगे किये निषाद गण, दीन्हेउ कटक चलाइ॥

सबेरे के कृत्य से निश्चिन्त हो और माता तथा गुरु को प्रणाम कर, भरत जी ने निषादों को रास्ता दिखाने के लिये आगे कर अपना दल आगे बढ़ाया।

कियेउ निषादनाथ अगुआई। मातु पालकी सकल चलाई॥
साथ बुलाइ भाइ लघु कीन्हा। विप्रन सहित गवन गुरु कीन्हा॥
आपु सुरसरिहिं कीन्ह प्रणामू। सुमिरेउ लषणसहितसियरामू॥
गवने भरत पयादेहिं पाये। कोतल संग जाहिं डुरि आये॥
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइय नाथ अश्व असवारा॥
राम पयादेहि पाँव सिधाये। हम कहँ रथ गज बाजि बनाये॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब ते सेवकधर्म कठोरा॥
देखि भरत गति सुनि मृदुबानी। सब सेवक गण करहिं गलानी॥

भीलों के राजा को आगे कर, माताओं की पालकी बढ़ाई और छोटे भाई को बुला उनके साथ किया। फिर ब्राह्मणों सहित गुरु ने प्रस्थान किया। भरत जी ने गङ्गा को प्रणाम किया और लक्ष्मण सहित सीताराम को स्मरण किया। भरत जी पैदल चले और उनके पीछे कोतल घोड़े बागडोर से बँधे चले। उनके हितैषी सेवक बार बार उनसे घोड़े पर बैठ जाने को कहते हैं। इस पर भरत जी कहते हैं कि श्रीराम जी तो पैदल गये हैं और हम क्या रथ हाथी घोड़ों पर बैठें। मुझे तो सिर के बल जाना चाहिये—क्योंकि सेवाधर्म बड़ा कठिन है। भरत की दशा देख और उनकी मृदु वाणी सुन—सब नौकर उदास हुए।

दो०—भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रवेश प्रयाग।
कहत रामसिय रामसिय, उमँगि उमँगि अनुराग॥

तीसरे पहर भरत प्रयाग पहुँचे और उमंग में भर बार बार सीताराम सीताराम कहने लगे।

झलका झलकत पाँयन कैसे। पङ्कज कोष ओस कन जैसे॥
भरत पयादेहिं आये आजू। भये दुखित सुनि सकल समाजू॥
खबरि लीन्ह सब लोग नहाये। कीन्ह प्रणाम त्रिवेणी आये॥
सविधि सितासित नीर नहाने। दिये दान महिसुर सनमाने॥
देखत श्यामल धवल हिलोरे। पुलक शरीर भरत कर जोरे॥
सकल कामप्रद तीरथ राऊ। वेद विदित जग प्रकट प्रभाऊ॥
माँगौं भीख त्यागि निज धर्मू। आरत काह न करहिं कुकर्मू॥
अस जिय जानि सुजानि सुदानी। सफल करहि जग याचक बानी॥

भरत जी के पैरों के छाले, कमल के पत्तों पर ओस की बूँद की तरह चमकते हैं। आज भरत जी पैदल ही आये हैं—यह सुन उनके साथ के सब लोग दुःखी हो गये। जब उन्होंने त्रिवेणी में सब के स्नान कर चुकने की खबर पा ली, तब वे स्वयं वहाँ गये और त्रिवेणी जी को प्रणाम किया। फिर विधि-पूर्वक गङ्गा और यमुना के सङ्गम में स्नान कर और ब्राह्मणों को दान दे कर उनका सत्कार किया। गङ्गा यमुना की सफेद और काली लहरों को देख, भरत जी का शरीर रोमाञ्चित हो गया और उन्होंने हाथ जोड़े और कहा—हे तीर्थराज! तुम सब कामनाओं को पूरी करने वाले हो और तुम्हारा महात्म्य वेद में भी प्रकट हो रहा है। मैं अपना धर्म (क्षत्रियों का धर्म माँगना नहीं है।) छोड़ कर तुमसे भिक्षा माँगता हूँ। क्योंकि दुखिया क्या कुकर्म नहीं कर डालते? ऐसा समझ जगत-प्रसिद्ध दाता—याचकों की वाणी सफल करते हैं।

दो०—अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान।
जन्म जन्म रति रामपद, यह बरदान न आन॥

अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में से किसी में भी न तो मेरी रुचि है और न मुझे इनमें से कोई पदार्थ अपेक्षित है। जन्म जन्मान्तर में श्रीराम के चरणों में प्रीति हो—इस वरदान को छोड़ दूसरा वरदान मुझे नहीं चाहिये।

जानहि राम कुटिल करि मोही। लोग कहौ गुरु-साहब-द्रोही॥
सीता राम-चरण-रति मोरे। अनुदिन बढ़ै अनुग्रह तोरे॥

जलद जन्म भरि सुरति बिसारे। याचत जल पवि पाहन डारे॥
चातक रटनि घटे घटि जाई। बढ़े प्रेम सब भाँति भलाई॥
कनकहि बान चढ़ै जिमि दाहे। तिमि प्रीतम पद प्रेम निबाहे॥
भरत वचन सुनि माँझ त्रिबेनी। भै मृदुबाणि सुमङ्गल देनी॥
तात भरत तुम सब विधि साधू। रामचरण अनुराग अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम सम रामहिंप्रियकोउ नाहीं॥

भले ही श्रीरामचन्द्र जी मुझे खोटा समझें और लोग मुझे गुरु और स्वामी का द्रोही कहें, परन्तु आपकी कृपा से मेरी प्रीति दिनों दिन सीताराम के चरणों में बढ़े। मेघ आजन्म पपीहे को स्मरण भले ही न करे और माँगने पर ओले और पत्थर ही क्यों न बरसावे, उधर पपीहे की रटना भी भले ही कम हो जाय, किन्तु प्रेम की वृद्धि सब प्रकार से भली है। जिस प्रकार तपाने से सोने की आब बढ़ती है, उसी प्रकार अति प्रिय स्वामी के चरणों में प्रेम करने से निर्वाह होता है। भरत के इन विनम्र वचनों को सुन त्रिवेणी से यह शब्द निकला—हे बेटा भरत! तुम सब प्रकार से साधु हो और श्रीराम जी के चरणों में तुम्हारी अगाध प्रीति है। तुम वृथा दुःखी होते हो, श्रीरामचन्द्र जी को तुम्हारे बराबर कोई प्यारा नहीं है।

दो०—तनु पुलके हिय हर्षि सुनि, बेणि वचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरषित वर्षहिं फूल॥

श्री वेणी जी के अनुकूल वचन सुन भरत जी का शरीर रोमाञ्चित हुआ और मन प्रसन्न हुआ। भरत जी धन्य हैं, भरत जी धन्य हैं—यह कह कर आकाश से फूलों की वर्षा देवताओं ने की।

प्रमुदित तीरथराज निवासी। वैखानस बटु गृही उदासी॥
कहहिं परस्पर मिलि दस पाँचा। भरत सनेह शील शुचि साँचा॥
सुनत राम गुण ग्राम सुहाये। भरद्वाज मुनिवर पहँ आये॥
दण्ड प्रणाम करत मुनि देखे। मूरतिवन्त भाग्य निज लेखे॥

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे । दीन्ह अशीश कृतारथ कीन्हे ॥
आसन दीन्ह नाइ सिर बैठे । चहत सकुचि गृह जनु भजि पैठे ॥
मुनि पूछब कछु यह बड़ सोचू । बोले ऋषि लखि शील संकोचू ॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई । विधि करतब पर कछु न बसाई ॥

प्रयागवासी वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और उदासी--भरत जी को देख बहुत प्रसन्न हुए और दस पाँच टोली बाँध आपस में कहने लगे कि भरत जी का शील और स्नेह पवित्र और सच्चा है । श्रीरामचन्द्र जी के गुणों को सुनते हुए भरत जी भरद्वाज जी के पास पहुँचे । मुनि ने भरत जी को प्रणाम करते देख समझा कि यह मेरे भाग्य की मूर्ति है । भरद्वाज जी ने दौड़ कर उन्हें उठाया और छाती से लगा कर आशीर्वाद दिया और उन्हें कृतार्थ किया । भरत जी आसन पाने पर मुनि को प्रणाम कर ऐसे बैठ गये मानों लज्जा के घर में वे दौड़ कर घुसा ही चाहते हैं ; क्योंकि उनको बड़ी चिन्ता इस बात की है कि भरद्वाज कहीं कुछ सन्देह कर पूँछ न बैठें । भरत का शील और सङ्कोच देख मुनि ने कहा-हे भरत ! सुनो, हमें सब संवाद मिल चुके हैं, किन्तु विधना का विधान अमिट है, उस पर किसी का वश नहीं चलता ।

दो०—तुम गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति ।
तात कैकयिहि दोष नहिं, गई गिरामति धूति ॥

हे तात ! तुम माता की करतूत समझ उदास मत हो, क्योंकि इसमें तो कैकेयी का भी दोष नहीं है—उसकी बुद्धि तो सरस्वती बिगाड़ गयी थी ।

यहउ कहत भल कहै ने कोऊ । लोक वेद बुध सम्मत दोऊ ॥
तात तुम्हार विमल यश गाई । पाइहि लोकहु वेद बड़ाई ॥
लोक वेद सम्मत सब कहई । जेहि पितु राज्य देइ सो लहई ॥
राव सत्य व्रत तुमहिं बुलाई । देत राज्य सुख धर्म बड़ाई ॥
राम गमन वन अनरथ मूला । जो सुनि सकल विश्व भइ शूला ॥
सो भावीवश रानि अयानी । करि कुचाल अन्तहु पछितानी ॥

तहँ न तुम्हार अलप अपराधू। कहै सो अधम अयान असाधू॥
करतेहु राज्य तुमहिं नहिं दोषू। रामहिं होत सुनत सन्तोषू॥

यह कहना भी ठीक नहीं--क्योंकि बुद्धिमान लोग, लोक और वेद दोनों को मानते हैं। अतः हे तात! तुम्हारे यश का गान कर लोक और वेद दोनों बड़ाई पावेंगे। सब लोग--लोक और वेद की यही सम्मति बतलाते हैं कि पिता जिसे राज्य दे वही पावे। सत्यवादी राजा यदि तुम्हें बुला कर राज्य देते तो भी सुख, धर्म और बड़ाई ही होती। परन्तु श्रीराम जी का वनगमन सारी बुराइयों की जड़ है, इसे सुन कर सारे संसार को पीड़ा हो रही है। सो वह अज्ञानी रानी भी होनहार के वश उस कुचाल को कर पीछे पछताती है। इसमें तुम्हारा रत्ती भर भी दोष नहीं है। इस पर जो तुम्हें दोष दे वह महाअधम, अज्ञानी और दुष्ट है। यदि तुम राज्य करते तो भी बुरा न था। श्रीराम जी भी तुम्हारे राज्य करने पर सन्तुष्ट होते।

दो०—अब अति कीन्हेउ भरत भल, तुमहिं उचित मत एहु।
सकल सुमङ्गल मूल जग, रघुबरचरण सनेहु॥

हे भरत! तुमने अब जो किया है सो बहुत ठीक है और करना भी यही चाहिये था। क्योंकि सारे संसार में श्रीराम जी के चरणों में अनुराग होना--यही सारे आनन्दों की जड़ है।

सो तुम्हार धन जीवन प्राना। भूरि भाग को तुमहिं समाना॥
यह तुम्हार आचरज न ताता। दशरथ सुवन राम लघु भ्राता॥
सुनहु भरत रघुपति मन माहीं। प्रेमपात्र तुम सम कोउ नाहीं॥
लषण राम सीतहि अति प्रीती। निशि सब तुमहिं सराहत बीती॥
जाना मर्म नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरे अनुरागा॥
तुम पर अस सनेह रघुबर के। सुख जीवन जग जस जड़ नर के॥
यह न अधिक रघुवीर बड़ाई। प्रणत कुटुम्ब पाल रघुराई॥
तुम तौ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू॥

(वह रामचन्द्र अनुराग) तुम्हारा जीवन धन और प्राण है, अतः तुम्हारे समान बड़भागी और कौन हो सकता है। हे तात! तुम्हारे लिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि तुम दशरथ के पुत्र और श्रीरामचन्द्र के प्यारे भाई हो। भरत! सुनो, श्रीरामचन्द्र जी के मन में तुम्हारे समान प्रिय दूसरा नहीं है। श्रीराम लक्ष्मण और सीता जी को भी तुमसे बड़ा प्रेम है, क्योंकि जिस रात वे इस आश्रम में थे—वह रात तुम्हारी ही प्रशंसा करते करते बीती थी। मैं तो इसका भेद उस समय जान गया था जब श्रीराम जी ने प्रयाग स्नान किये थे। अर्थात् संकल्प पढ़ते समय जब "भरतखण्डे" पढ़ा तब तुम्हारा नाम आते ही वे तुम्हारे प्रेम में मग्न हो गए थे। तुम पर श्रीराम जी का वैसा ही स्नेह है, जैसा मूर्ख मनुष्य का संसार में सुखपूर्वक जीवित रहने पर होता है। इसमें श्रीरामचन्द्र जी की कुछ बड़ाई नहीं है, क्योंकि वे तो भक्तों के कुटुम्ब को पालने वाले ठहरे। हे भरत! मेरी समझ में तो तुम मानों श्रीराम के प्रेम का शरीर धारी अवतार हो।

दो०—तुम कहँ भरत कलङ्क यह, हम सब कहँ उपदेश।
रामभक्ति रस सिद्धि हित, भा यहि समय गणेश॥

हे भरत! तुमको यह कलङ्क लगना—हम सब के लिये उपदेश है। इस समय श्रीराम भक्ति रूपी रस को सिद्ध करने का श्रीगणेश (अर्थात् आरम्भ) तुमने ही किया है।

नव विधु विमल तात यश तोरा। रघुबर किङ्कर कुमुद चकोरा॥
उदित सदा अथइय कबहूँ ना। घटहि न जग नभ दिन दिन दूना॥
कोक विलोक प्रीति अति करहीं। प्रभु प्रताप रवि छविहि न हरहीं॥
निशि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकयि करतब राहू॥
पूरण राम सुप्रेम पियूषा। गुरु अपमान दोष नहिं दूषा॥
रामभक्ति अब अमिय अघाहू। कीन्हेउ सुलभ सुधा बसुधाहू॥
भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमङ्गल खानी॥
दशरथ गुण गण बरणि न जाहीं। अधिक कहा जेहि सम जग नाहीं॥

हे प्यारे! तुम्हारा निर्मल यश नवीन चन्द्र है और श्रीरामचन्द्र जी के दास कुमुद और चकोर हैं। वह चन्द्रमा सदा उगा रहेगा और अस्त न होगा और संसाररूपी आकाश में वह कभी न घटेगा, प्रत्युत उत्तरोत्तर बढ़ेगा। मुक्त जीव रूपी चकवा चकई इसे देख कर बहुत प्रसन्न होंगे और भगवान् का प्रतापरूपी सूर्य भी उसकी शोभा को न हरेगा। रात दिन सदा सब को सुख देने वाले इस चन्द्रमा को कैकेयी का करतबरूपी राहु भी नहीं ग्रस सकता। उस चन्द्रमा में श्रीराम जी का सुन्दर स्नेहरूपी अमृत भरा है और गुरु के निरादर रूपी दोष से भी वह कलङ्कित नहीं है। श्रीराम जी के भक्तिरूपी अमृत से अब भक्त अघावेंगे; क्योंकि संसार में आपने अमृत को पाना सहज कर दिया। राजा भगीरथ पृथिवी पर गङ्गा को लाये, जो स्मरण करते ही सब मङ्गल और आनन्द को देती है। दशरथ के गुणों का बखान नहीं हो सकता। उनसे बढ़ कर तो कौन हो सकता है-किन्तु उनके बराबर भी तो संसार में कोई नहीं है।

दो०—जासु सनेह सकोच वश, राम प्रकट भे आय।
जे हर हिय नयनन्ह कबहुँ, निरखे नाहिं अघाय॥

जिनके स्नेह से वे श्रीरामचन्द्र जी आ कर प्रकट हुए, जिनको हृदय के नेत्रों से देखते देखते शिव जी कभी नहीं अघाते हैं।

कीरति विधु तुम कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम प्रेम मृग रूपा॥
तात गलानि करहु जिय जाये। डरहु दरिद्रहिं पारस पाये॥
सुनहु भरत हम झूँठ न कहहीं। उदासीन तापस वन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लषण राम सिय दर्शन पावा॥
तेहि फलकर फल दरश तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा॥
भरत धन्य तुम जग यश लयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ॥
सुनि मुनि वचन सभासद हर्षे। साधु सराहि सुमन सुर वर्षे॥
धन्य धन्य ध्वनि गगन प्रयागा। सुनि सुनि भरत मगन अनुरागा॥

तुमने यशरूपी विलक्षण चन्द्रमा बनाया, जिसमें श्रीराम जी का स्नेहरूपी मृग बस रहा है। हे तात! तुम उदास मत हो, पारस पा कर भी दरिद्र के डर

से भयभीत होते हो। हे भरत! सुनो, हम असत्य नहीं कहते, क्योंकि हम उदासी और तपस्वी हैं तथा वन में रहते हैं। हमें तो सब साधनों का फल लक्ष्मण राम सीता के दर्शन कर के मिल गया। उसका फल आज यह मिला कि तुम्हारे दर्शन हुए। सो प्रयाग सहित हमारे धन्य भाग्य हैं। हे भरत! तुम धन्य हो जिन्होंने संसार में यश पाया। यह कह भरद्वाज प्रेम में मग्न हो गये। उनके इन वचनों को सुन सभासद् प्रसन्न हुए। साधुओं ने सराहा और पुष्पों की वर्षा देवताओं ने की। प्रयाग का आकाश धन्य धन्य की ध्वनि से गूंज गया। उसे सुन कर भरत जी अनुराग में मग्न हो गये।

दो०—पुलकि गात हिय राम सिय, सजल सरोरुह नैन।
करि प्रणाम मुनि मण्डलिहिं, बोले गद्‌गद बैन॥

भरत जी का शरीर पुलकित हो गया, वे मन ही मन श्रीराम जानकी का स्मरण करते हुए और कमल के समान नेत्रों में नीर भर तथा मुनि मण्डली को प्रणाम कर गद्‌गद कण्ठ से बोले।

मुनि समाज अरु तीरथराजू। साँचेहु शपथ अघाइ अकाजू॥
यहि थल जो कछु कहिय बनाई। त्यहि सम अधिक नअघअधमाई॥
तुम सर्वज्ञ कहौं सतिभाऊ। उर-अन्तर्यामी रघुराऊ॥
मोहिं न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुखजिय जगजानहिं पोचू॥
नाहिन डर बिगरहि परलोकू। पितुहु मरे कर नाहिन शोकू॥
सुकृत सुयश भरि भुवन सुहाये। लक्ष्मण राम सरिस सुत पाये॥
राम विरह तजि तनु क्षणभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू॥
राम लषण सिय बिनु पग पनहीं। करिमुनिवेषफिरहिं वन वनहीं॥

यहाँ मुनि मण्डली एकत्रित है और यह तीर्थों का राजा प्रयाग है—यहाँ सत्य शपथ खाना भी महा पाप है। यदि यहाँ पर भी बनावटी बात कही जाय तो इससे बढ़ कर पाप और नीचता संसार में नहीं हो सकती। आप सर्वज्ञ हैं और श्रीरामचन्द्र जी अन्तर्यामी हैं। मैं सत्य सत्य कहता हूँ कि न तो मुझे

अपनी जननी की करनी की चिन्ता है, न मनमें यह दुःख है कि लोग मुझे पोच जानेंगे। परलोक बिगड़ने का डर मुझे नहीं है और न पिता के मरने का शोक है। क्योंकि उनके सुयश से जगत् भरा है और उनके श्रीराम लक्ष्मण सरीखे श्रेष्ठ पुत्र हैं, उन्हीं महाराज ने श्रीराम जी के वियोग में इस क्षणभंगुर शरीर को त्याग दिया—यह कोई शोक की बात नहीं है। परन्तु श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी का बिना जूते पहने और मुनियों का वेष बनाये वन वन डोलना,

दो०—अजिन बसन फल अशन महि, शयन डासि कुशपात।
बसि तरुतर नित सहत दुख, हिम तप वर्षा बात॥

मृगचर्म के वस्त्र पहनना, फल खाना, पृथिवी पर चटाई पर सोना और वृक्षों के तले रह कर, सर्दी, धूप वर्षा और पवन को नित्य सहना;

यहि दुख दाह दहै नित छाती। भूख नबासर नींद न राती॥
यहि कुरोग कर औषधि नाहीं। सोधेउँ सकल विश्व मन माहीं॥
मातु कुमति बढ़ई अघमूला। तेहिं हमार हित कीन्ह बसूला॥
कलि कुकाठ गढ़ि कठिन कुयन्त्र। गाड़ि अवधपढ़ि कठिन कुमन्त्र॥
मोहिं लगि यह कुठाट जेहिठाटा। घालिसि सब जग बारह बाटा॥
मिटै कुयोग राम फिरि आये। बसै अवध नहिं आन उपाये॥
भरत वचन सुनि मुनि सुख पाई। सबहिं कीन्ह बहु भाँति बड़ाई॥
तात करहु जनि सोच विशेखी। सब दुख मिटिहिं रामपद देखी॥

हमारे मन में दाह उत्पन्न कर रहे हैं। इनके कारण न तो दिन में भूख लगती है और न रात को नींद ही आती है। इस बुरी बीमारी की कोई दवा नहीं है। मैंने अपने मन में सारे विश्व को खोज देखा। पापों की जड़ माता की कुबुद्धि मानों बढ़ई है—उसने हमारे लिये जो हित चाहा (अर्थात् राज्य माँगा) वही मानों उसने बसूला बनाया। मेरे लिये राज्य माँगने पर जो झगड़ा हुआ वही मानों बबूर अर्थात् बड़ी कड़ी लकड़ी का श्रीराम वनोवास रूपी कोल्हू तैयार किया। मन्थरा के सिखाये हुए वरदान रूपी कुमंत्र को पढ़ उस कोल्हू को अयोध्या में गाड़ा। उसने यह जो बुरा ठाठ किया—सो किया मेरे लाभ के लिये—

किन्तु उस वनवासरूपी कोल्हू ने सारे जगत को पेर कर तीन तेरह कर दिया। अब यह कुरोग तभी दूर होगा जब श्रीरामचन्द्र जी लौट आवेंगे और अयोध्या फिर से बसेगी। इस उपाय को छोड़ और कोई उपाय नहीं है। भरत जी की इन बातों को सुन भरद्वाज जी बहुत प्रसन्न हुए और सब उपस्थित लोगों ने उनकी प्रशंसा की। भरद्वाज कहने लगे हे तात! तुम चिन्ता मत करो, श्रीरामचन्द्र जी के चरणों के दर्शन से सारे दुःख दूर हो जायँगे।

दो०—करि प्रबोध मुनिवर कहेउ, अतिथि प्राणप्रिय होहु।
कन्दमूल फल फूल हम, देहिं लेहु करि छोहु॥

भरद्वाज ने समझा कर कहा हे प्राणप्यारे तुम अतिथि हो और कन्दमूल, फल, फूल जो हम दें—उन्हें तुम कृपा कर के ग्रहण करो।

सुनि मुनि वचन भरत हिय सोचू। भयउ कुअवसर कठिन सँकोचू॥
जानि गरू गुरु गिरा बहोरी। चरण बन्दि बोले कर जोरी॥
सिर धरि आयसु करिय तुम्हारा। परम धर्म यह नाथ हमारा॥
भरत वचन मुनिवर मन भाये। शुचि सेवक शिष निकट बुलाये॥
चाहिय कीन्ह भरत पहुनाई। कन्दमूल फल आनहु जाई॥
भले नाथ कहि तिन्ह सिर नाये। प्रमुदित निज निज काज सिधाये॥
मुनिहिं सोच पाहुन बड़ नेवता। तस पूजा चाहिय जस देवता॥
सुनि ऋधि सिधि अणिमादिक आईं। आयसु होइ सो करैं गुसाईं॥

भरद्वाज के वचन सुन भरत जी बड़ी चिन्ता में पड़े कि यह तो अच्छा असमंजस आया। (असमंजस इस बात का कि प्रयाग क्षेत्र में क्षत्रिय हो कर ब्राह्मण के यहाँ भोजनादि क्यों कर करें) किन्तु गुरु समान भरद्वाज जी की आज्ञा को बड़ी जान और हाथ जोड़ कर भरत जी ने कहा—हे नाथ! आपकी आज्ञा का पालन सिर पर रख कर करना हमारा परम धर्म है। यह उत्तर भरद्वाज को बहुत अच्छा लगा और तब उन्होंने अपने विश्वस्त शिष्यों को बुलाया। फिर उनसे कहा कि भरत जी का आतिथ्य करना चाहिये, अतः तुम लोग जा कर कन्दमूल फल ले आओ। हे नाथ! "जो आज्ञा" कह और

प्रणाम कर—वे लोग प्रसन्न होते हुए अपने अपने कामों पर चले गये पर भरद्वाज जी इसलिये चिन्तित हुए कि न्योता तो बड़े आदमी को दे दिया अब जैसा देवता है वैसी ही उसकी पूजा भी तो होनी चाहिये। यह सुन अणिमादिक सारी ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ पहुँचीं और बोलीं "हे नाथ! जो आज्ञा हो सो किया जाय।"

दो०—राम विरह व्याकुल भरत, सानुज सकल समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रम, कहेउ मुदित मुनिराज॥

प्रसन्न हो भरद्वाज जी ने उनसे कहा कि भरत जी श्रीराम जी के वियोग में विकल हैं, उनकी उनके साथियों सहित पहुनाई कर—सब की थकावट दूर करो।

ऋधिसिधिसिरधरिमुनिवरवानी। बड़ भागिनि आपुहिं अनुमानी॥
कहहिं परस्पर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथिरामलघु भाई॥
मुनिपद बन्दि करिय सोइ आजू। होइ सुखी सब राज-समाजू॥
अस कहि रुचिर रचे गृह नाना। जे विलोकिविलखाहिं विमाना॥
भोग विभूति भूरि भरि राखे। देखत जिनहिं अमर अभिलाखे॥
दासी दास साज सब लीन्हे। जुगवत रहहिं मनहिं मन दीन्हे॥
सब समाज सजि सिधि पलमाहीं। जो सुख सपनेहुँ सुरपुरनाहीं॥
प्रथमहिं वास दिये सब केही। सुन्दर सुखद यथा रुचि जेही॥

ऋद्धियों सिद्धियों ने मुनिवर की श्रेष्ठ वाणी को सिर पर रख अपने भाग्य को बड़ा कर माना। वे परस्पर कहने लगीं कि श्रीराम जी के छोटे भाई बड़े अतिथि हैं। आज मुनिवर को प्रणाम कर वही करना चाहिये जिससे सारा राजसमाज सुखी हो। यह कह उन्होंने पहले तो अनेक ऐसे सुन्दर घर बना कर तैयार किये जिनको देख विमान भी झख मारने लगे। उनमें उन्होंने भोगने योग्य इतनी सामग्री भर दी, जिनको देख देख देवता भी ललचाने लगे। सब आवश्यक सामग्री लिये दास दासी अतिथियों की ओर मन लगाये रहते हैं। सिद्धियों ने वह

सारा सामान पलक मारते तैयार कर दिया। इतना सुख तो स्वर्ग में भी नहीं है। जिसकी जैसी इच्छा थी—रहले तो इच्छानुसार उन सब को डेरे दिये।

दो०—बहुरि सपरिजन भरत कहँ, ऋषि आयसु अस दीन्ह।
विधि विस्मयदायक विभव, मुनिवर तप बल कीन्ह ॥

तदनन्तर भारद्वाज जी ने सकुटुम्ब रहने को भरत जी को आज्ञा दी और मुनिश्रेष्ठने तपोबल से ऐसी सम्पत्ति रची कि जिसे देख एक बार ब्रह्मा भी विस्मित हो गये।

मुनि प्रभाव जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका ॥
सुख समाज नहिं जाइ बखानी। देखत विरति बिसारहिं ज्ञानी ॥
अशन शयन शुचि बसन बिताना। वन बाटिका बिहँग मृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमिय समाना। विमल जलाशयविविधविधाना ॥
अशनपान शुचि अमल अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से ॥
सुर सुरभी सुरतरु सब हीं के। लखि अभिलाष सुरेश शची के॥
ऋतु बसन्त बह त्रिविध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥
स्रक चन्दन वनितादिक भोगा। देखि हर्ष विस्मय सब लोगा ॥

मुनि की तपस्या का प्रभाव देख, भरत जी को इन्द्रादिलोकपाल तुच्छप्रतीत होने लगे। उस सुख सामग्री का वर्णन करना असम्भव है। उसे देख बड़े बड़े ज्ञानी भी वैराग्य को भूल जाते थे। वहाँ आसन, पलंग, वस्त्र, सुन्दर तम्बू और उद्यान हैं जिनमें अनेक पशु पक्षी विहार कर रहे हैं और सुगन्धित पुष्प और अमृतोपम फल हैं वहाँ अनेक प्रकार के विमल जल के तालाब हैं। खाने पीने की इतनी सामग्री है कि उसे देख सब लोग संयमी की तरह उनका उपभोग करते सकुचाते हैं। सब के यहाँ कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं—जिन्हें देख इन्द्र और शची की भी लार टपकी पड़ती है। वसन्त की ऋतु है और शीतल मन्द सुगन्ध पवन चल रहा है और यहाँ सब के लिये धर्म अर्थ, काम मोक्ष सुलभ हो रहे हैं। माला चन्दन और स्त्री आदि भोगों को देख लोग प्रसन्न और विस्मित हो गये।

दो०—सम्पति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निशि आश्रम पींजरा, राखे भा भिनुसार॥

वह सम्पति तो चकई है और भरत जी चकवा हैं और भरद्वाज जी की आज्ञा बहेलिया है, जिसने उस रात को उनको आश्रमरूपी पिंजड़े में बन्द कर रखा और इसी प्रकार सबेरा हो गया।

कीन्ह निमज्जन तीरथराजा। नाइ मुनिहि सिरसहितसमाजा॥
ऋषि आयसु अशीश सिर राखी। करि दण्डवत विनय बहुभाखी॥
पथ-गति-कुशल साथ सब लीन्हे। चले चित्रकूटहि चित दीन्हे॥
राम सखा कर दीन्हे लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू॥
नहि पदत्राण शीश नहिं छाया। प्रेम नेम व्रत धर्म अमाया॥
लषण राम सिय पंथ कहानी। पूँछत सखहि कहत मृदुबानी॥
राम-वास-थल विटप विलोके। उर अनुराग रहत नहिं रोके॥
देखि दशा सुर वर्षहि फूला। भइ मृदु महि मगु मङ्गल मूला॥

भरत जी ने अगले दिन प्रयाग स्नान कर सब साथियों सहित भरद्वाज जी को प्रणाम किया—फिर मुनि के आशीर्वाद और उनकी आज्ञा को सिर पर रख और प्रणाम कर बहुत सी विनय की। रास्ता बतलाने में चतुर मार्गदर्शक साथ ले भरत जी चित्रकूट की ओर चले। वे निषाद को आगे कर ऐसे चले जाते हैं, मानों अनुराग शरीर धारण किये हुए चला जा रहा है। न तो उनके पैरों में जूते हैं और न सिर पर छत्र हैं। वे अकपट हो और प्रीतिपूर्वक नेमव्रत धर्म करते हैं। वे लक्ष्मण, श्रीरामचन्द्र और सीता जी के रास्ते का वृत्तान्त गुह से पूँछते जाते हैं और वह मीठे शब्दों में कहता जाता है। श्रीरामचन्द्र जी के रहने के पड़ावों के वृक्षों को देख भरत जी के मन में जो प्रेम उमड़ता है वह रोके नहीं रुकता। यह देख देवता फूलों की वर्षा करने लगे और पृथिवी कोमल हो गयी तथा मार्ग आनन्ददायक हो गया।

दो०—किये जाहि छाया जलद, सुखद बहत वरबात।
तस मगु भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात॥

जहाँ जहाँ भरत जी जाते हैं, वहाँ वहाँ मेघ उनके ऊपर छाया किये रहते हैं और सुन्दर सुख देने वाली हवा बहती है। यात्रा में जो सुख भरत जी को मिला वह श्रीरामचन्द्र जी को भी नहीं मिला था।

जड़ चेतन जग जीव घनेरे। जे चितये प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भये परम पद योगू। भरत दर्श भेषज भव रोगू॥
यह बड़ि बात भरत की नाहीं। सुमिरत जिन्हैं राम मन माहीं॥
बारेक राम कहत जग जेऊ। होत तरण तारण नर तेऊ॥
भरत राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मङ्गलदाता॥
सिद्ध साधु मुनिवर अस कहहीं। भरतहि निरखि हर्ष हिय लहहीं॥
देखि प्रभाव सुरेशहिं सोचू। जग भल भलहिं पोच कह पोचू॥
गुरु सन कहेहु करहु प्रभु सोई। रामहिं भरतहिं भेंट न होई॥

सांसारिक अनेक जड़चेतन जीव, जो श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन कर चुके थे वे परमपद के अधिकारी तो हुए, परन्तु भरत जी के दर्शन कर वे संसाररूपी रोग से छूट गये—अर्थात् मुक्त हो गये। भरत जी के लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि श्रीरामचन्द्र जी स्वयं उनको मन ही मन स्मरण किया करते हैं। जो एक बार भी इस संसार में श्रीराम का नाम लेता है—वह मनुष्य स्वयं तरता और दूसरों को तारने वाला हो जाता है। तिस पर भरत श्रीराम जी को अत्यन्त प्रिय और उनके छोटे भाई—भला उनको मार्ग आनन्दप्रद क्यों न हो? सिद्ध साधु और श्रेष्ठ मुनि इस प्रकार कहते हैं और भरत जी को देख मन में आनन्द पाते हैं। भरत की इस महिमा को देख इन्द्र चिन्तित हुए, क्योंकि यह संसार अच्छे के लिये अच्छा और पोच के लिये पोच है। इन्द्र ने बृहस्पति से जा कर कहा कि ऐसा कोई उपाय होना चाहिये जिससे भरत जी की श्रीराम से भेंट न हो।

दो०—राम सकोची प्रेमवश, भरत सप्रेम पयोधि।
बनी बात बिगरत चहत, करिय यतन छल सोधि॥

प्रेमवश हो श्रीरामचन्द्र जी तो सकुचा जाते हैं, किन्तु भरत जी तो प्रेम के सागर हैं। अब बनी बनायी बात बिगड़नी चाहती है अतः सोच कर कोई छल की चाल चलनी चाहिये।

बचन सुनत सुर गुरु मुसुकाने। सहस नयन बिनु लोचन जाने॥
कह गुरु बादि छोभ छल छाँड़ू। इहाँ कपट करि होइय भाँड़ू॥
मायापति सेवक सन माया। करियत उलटि परै सुरराया॥
तब कछु कीन्ह राम रुख जानी। अब कुचाल करि होइहि हानी॥
सुनु सुरेश रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥
जो अपराध भक्त कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥
लोकहु वेद विदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुर्वासा॥
भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही॥

इन्द्र की बातें सुन सुरगुरु बृहस्पति जी हँसे और इन्द्र के सहस्र नेत्र होने पर भी उनको उन्होंने अन्धा समझा और कहा—अब चालबाल कुछ न चलो, कपट जाल छोड़ दो, क्योंकि यहाँ तुम्हारी एक भी चाल न चलेगी और छल रचने से भंडा फूट जायगा। हे इन्द्र! श्रीराम स्वयं माया के स्वामी हैं उनके सेवक से माया करने से उल्टी आँतें गले पड़ेंगीं उस समय (राज्याभिषेक के समय) तो श्रीराम जी की अनुमति के अनुसार कुछ चल गयी किन्तु अब टेढ़ी चाल चलने से हानि होगी। हे इन्द्र! सुनो, श्रीरामचन्द्र जी का यह स्वभाव है कि उनके साथ जो बुराई करता है उस पर वे क्रोध नहीं करते किन्तु जो उनके भक्त को सताता है वह उनके क्रोधाग्नि में भस्म होता है। लोक और वेद में भी यह प्रसिद्ध है और इसकी महिमा दुर्वासा जानते हैं। भरत के समान श्रीराम जी का भक्त इस संसार में और कौन है? क्योंकि संसार तो राम राम जपता है और श्रीराम, भरत को जपते हैं।

दो०—मनहुँ न आनिय अमरपति, रघुपति भक्त अकाज।
अयश लोक परलोक दुख, दिन दिन शोक समाज॥

हे इन्द्र ! श्रीरामजी के भक्त की बुराई तुम्हारे मन में भी न आनी चाहिये। क्योंकि इससे संसार में बुराई, परलोक में दुःख और दिन दिन अनेक प्रकार के दुःख मिलते हैं।

सुनु सुरेश उपदेश हमारा। रामहिं सेवक परम पियारा॥
मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैर अधिकाई॥
यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुण्य गुण दोषू॥
कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥
तदपि करहिं सम विषम विहारा। भक्त अभक्त हृदय अनुसारा॥
अगुण अलेख अमान एक रस। राम सगुण भये भक्त प्रेम बस॥
राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुराण साधु सुर साखी॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥

हे इन्द्र ! हमारा उपदेश सुनो, श्रीराम को अपना भक्त बड़ा प्यारा है। अपने भक्त की सेवा को वे सुख मानते हैं और उसके साथ बैर करने वाले से वे अधिक बैर करते हैं। यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी रागद्वेष से रहित हैं और वे पाप पुण्य गुण दोष को ग्रहण नहीं करते, और यद्यपि भगवान् ने विश्व में कर्म को प्रधान बना रखा है—जो जैसा करता वैसा ही फल पाता है, तो भी वे भक्त और अभक्त के मन में सम और असम रूप से विहार करते हैं। यद्यपि वे निर्गुण, अलख, अभिमान रहित और एक रस हैं, तो भी भक्तों के प्रेम में पड़ वे सगुण हो गये हैं। वे श्रीरामचन्द्र सदा अपने भक्तों की टेक रखते आये हैं। इसकी साक्षी वेद पुराण, साधु, और देवता दे रहे हैं। यह विचार कर चालाकी छोड़ दो और भरत जी के चरणों में सुन्दर प्रीति करो।

दो०—रामभक्त परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल।
भक्त शिरोमणि भरत तें, जनि डरपहु सुरपाल॥

हे इन्द्र ! भरत जी, श्रीरामचन्द्र जी के भक्त हैं और दूसरों की भलाई में लगे रहते हैं तथा पराये दुःख से दुखी रहते और कृपा करने वाले हैं, अतः तुम भक्तशिरोमणि भरत जी से मत डरो।

सत्य सन्ध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयसु अनुसारी॥
स्वारथ विवश विकल तुम होहू। भरत दोष नहिं राउर मोहू॥
सुनि सुरवर सुर गुरु वर बानी। भा प्रबोध मन मिटी गलानी॥
बर्षि प्रसून हर्षि सुर राऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥
इहि विधि भरत चले मग जानीं। दशा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥
जबहिं राम कहि लेहिं उसासा। उमँगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा॥
द्रवहिं बचन सुनि कुलिश पखाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना॥
बीच बास करि यमुनहिं आये। निरखि नीर लोचन जल छाये॥

भरत जी सत्य प्रतिज्ञ, रक्षक और देवताओं के हितैषी हैं और श्रीराम जी की आज्ञा मानने वाले हैं। तुम स्वार्थ के वश हो विकल होते हो, इसमें भरत जी का दोष नहीं, तुम्हारा अज्ञान है। बृहस्पति जी की बातें सुन इन्द्र की आँखें खुलीं और उनकी चिन्ता दूर हुई। वे प्रसन्न हो भरत के ऊपर फूलों की वर्षा कर उनके स्वभाव की प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार भरत जी रास्ते में चले जाते हैं और उनकी इस दशा को देख मुनि सिद्ध सिहाते हैं। जब भरत जी श्रीराम कह कर उसाँस लेते हैं तब मानों चारों ओर से प्रेम उमड़ा पड़ता है। जब उनके वचन सुन वज्र और पत्थर भी पिघलता है तब नगर के जनों के प्रेम का तो कहना ही क्या है। रास्ते में ठहर कर वे यमुना के तट पर पहुँचे और यमुना जल को देख उनके नेत्र सजल हो गये।

दो०—रघुवर वर्ण विलोकि वर, वारि समेत समाज।
होत विरह वारिधि मगन, चढ़े विवेक जहाज॥

श्रीरामचन्द्र जी के रङ्ग जैसा सुन्दर जल देख, भरत जी अपने साथियों सहित, वियोगरूपी समुद्र में मग्न हो, ज्ञानरूपी जहाज़ पर चढ़े। भाव यह कि उन्होंने धैर्य धारण किया।

यमुनतीर तेहि दिन कर वासू। भयउ समय सम सबहिं सुपासू॥
रातिहिं घाट घाट की तरणी। आईं अगणित जाइँ न वरणी॥

प्रात पार भे एकहि खेवा। तोषे राम सखा करि सेवा॥
चले नहाइ यमुन सिर नाई। साथ निषादनाथ दोऊ भाई॥
आगे मुनिवर वाहन आछे। राज समाज जाय सब पाछे॥
तेहि पाछे दोउ बन्धु पयादे। भूषण वसन वेष सुठि सादे॥
सेवक सुहृद सचिवसुत साथा। सुमिरत लषण सीय रघुनाथा॥
जहँ जहँ राम वास विश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रणामा॥

उस दिन वे यमुना के तीर पर ही रहे। समयानुसार सब को सुख मिला। रातों ही रात आसपास के घाटों की अनेक नावें आ गयीं, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। सबेरा होते ही एक ही खेवा में सब पार हो गये और भरत जी राम के सखा की इस करनी (कारगुजारी) से सन्तुष्ट हुए। सब लोग स्नान कर, और यमुनाजी को प्रणाम कर, निषादाधिपति और दोनों भाइयों के साथ चले। आगे आगे तो मुनिवर की सवारी है और उनके पीछे राजसमाज है। उनके पीछे दोनों भाई पैदल चले जा रहे हैं। उनके भेष में सादापन है। अर्थात् भूषण वस्त्र की बहुत सी टीमटाम नहीं है। उनके साथ उनके सेवक मित्र और मन्त्री का पुत्र है। जहाँ जहाँ जाते समय श्रीराम जी टिके थे—वहाँ वहाँ वे उन स्थानों को प्रीतिपूर्वक प्रणाम करते चले जाते हैं।

दो०—मगु वासी नर नारि सुन, धाम काम तजि धाइ।
देखि स्वरूप सनेहवश, मुदित जन्म फल पाइ॥

भरत जी का आना सुन, रास्ते के गाँवों में रहने वाले नर नारी घर का कामकाज छोड़ तथा दौड़ कर प्रीति के वश हो—भरत जी के दर्शन कर और जन्म लेने का फल पा कर प्रसन्न हो जाते हैं।

कहहिं सप्रेम एक इक पाहीं। राम लषण सखि होहिं कि नाहीं॥
वय वपु वरन रूप सोइ आली। शील सनेह सरिस सम चाली॥
वेष न सो सखि सीय न सङ्गा। आगे अनी चली चतुरङ्गा॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि सन्देह होत यहि भेदा॥

तासु तर्क तिय गण मन मानो। कहहिं सकल तोहिं सम न सयानो॥
तेहि सराहि वाणी फुर पूजी। बोली मधुर वचन तिय दूजी॥
कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू। जेहि विधि राम राज रस भंगू॥
भरतहिं बहुरि सराहन लागीं। शील सनेह सुभाव सुभागीं॥

स्त्रियाँ आपस में एक दूसरे से कहती हैं कि—"सखी! ये श्रीराम लक्ष्मण हैं कि नहीं"? हे सखी! इनकी अवस्था और रूप रङ्ग तो वही है। शील प्रेम और चाल ढाल भी इनका वैसा ही है। परन्तु कसर इतनी ही है कि इनका वेष तपस्वियों जैसा नहीं है और न इनके साथ सीता जी हैं। इसके अतिरिक्त इनके आगे चतुरङ्गिनी सेना चली जाती है। इनका मुख भी प्रसन्न नहीं है और इनके मन में खेद है। सखी! इन्हीं कारणों से सन्देह होता है। उसकी बातें अन्य लुगाइयों के मन पर चढ़ गयीं और वे बोलीं कि तेरे समान चतुर और कोई नहीं है। उसको सराह और उसके कथन को पुष्ट कर दूसरी एक स्त्री बोली। जिस प्रकार श्रीराम जी के तिलकोत्सव के समय रंग में भंग हुआ उसने वह सारा हाल कहा। फिर उसने भरत जी के शील, स्नेह, स्वभाव और सौभाग्य की प्रशंसा की।

दो०—चलत पयादे खात फल, पिता दीन्ह तजि राज।
जात मनावन रघुवरहिं, भरत सरिस को आज॥

भरत जी ने पिता का दिया हुआ राजपाट त्याग दिया है और पैर पियादे चल रहे हैं तथा भोजन भी फलों ही का किया करते हैं। यह श्रीरामचन्द्र जी को मनाने जाते हैं। इन भरत जी के बराबर आज संसार में दूसरा कौन है।

भायप भक्ति भरत आचरणू। कहत सुनत दुख दूषण हरणू॥
जो कछु कहिय थोर सखि सोई। राम बन्धु अस काहे न होई॥
हम सब सानुज भरतहि देखे। भये धन्य युवती जन लेखे॥
सुनि गुण देखि दशा पछिताहीं। केकयि जननि योग्य सुत नाहीं॥
कोउ कह दूषण रानिहु नाहिन। विधिसबभाँतिहमहिंजोदाहिनि॥

कहँ हम लोग वेद विधि हीना। लघु कुल तिय करतूति मलीना ॥
बसहिं कुदेश कुगाँव कुठामा। कहँ यह दरश पुण्य परिणामा ॥
अस अनन्द अचरज प्रति ग्रामा। जनु मरु भूमि कलपतरु जामा ॥

भरत जी का भाईपना, उनकी भक्ति और उनके आचरणों का बखान कहने सुनने से दुःख और पाप नष्ट होते हैं। हे सखी! श्रीरामचन्द्र जी का यह भाई ऐसा ही है—इसके बारे में जो कुछ कहा जाय वह सब थोड़ा है। शत्रुघ्न सहित भरत जी के दर्शन कर हम सब स्त्रियाँ आज धन्य हुईं। भरत की दशा को देख सुन और विचार कर वे पछता कर कहती हैं कि कैकेयी की कोख के योग्य भरत नहीं हैं। उनमें से किसी ने कहा—इसमें रानी का भी कुछ दोष नहीं है यह सब विधाता के वाम होने का फल है। कहाँ तो हम लौकिक और वैदिक विधि से रहित और छोटे कुल की स्त्रियां और मलिन कर्म करने वालीं। हम बुरे देश, बुरे गाँव और बुरी जगह में रहती हैं, हमें इनका दर्शन कहाँ बदा था? यह तो हमारे किसी उग्र पुण्य का फल है। इस प्रकार का आनन्द और आश्चर्य प्रत्येक ग्राम में छाया हुआ है, मानों मरुभूमि में कल्पतरु उत्पन्न हो गया।

दो०—भरत दरश देखत खुलेहु, मगु लोगन्ह कर भाग।
जनु सिंहल वासिन्ह भयउ, विधिवश सुलभ प्रयाग ॥

भरत जी के दर्शन करने से सड़क के इस ओर उस ओर बसने वालों के भाग्य खुल गये—मानों प्रारब्ध के जोर से सिंहलद्वीप में बसने वालों को प्रयाग सुगम हो गया है।

निज गुण सहित राम-गुण गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा ॥
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रणामा ॥
मनहीं मन माँगहिं वर येहू। सीय-राम-पद-पद्म सनेहू ॥
मिलहिं किरात कोल वनवासी। वैखानस बटु यती उदासी ॥
करि प्रणाम पूछहिं जेहिं तेही। केहि वन लषण राम वैदेही ॥
ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहिं देखि जन्म फल लहहीं ॥

जे जन कहहिं कुशल हम देखे। ते प्रिय राम लषण सम पेखे ॥
यहि विधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम बनवास कहानी ॥

अपनी बड़ाई के साथ श्रीरामचन्द्र जी के गुणों को सुनते हुए, भरत जी श्रीराम जी का स्मरण करते चले जाते हैं। तीर्थों में स्नान मुनियों का आश्रम, और देवमन्दिरों को देख प्रणाम करते हैं। मन ही मन वे श्रीराम और जानकी के चरणकमलों की भक्ति का वर माँगते हैं। रास्ते में उन्हें किरात, कोल, वन-वासी, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी और यती मिलते हैं। उनको प्रणाम कर हर एक से यह पूँछते हैं कि श्रीरामचन्द्र और सीता किस वन में रहते हैं। वे उनसे उनका सारा हाल कह और भरत जी के दर्शन कर अपना जन्म सफल करते हैं। जो आदमी कहते हैं कि हमने उनको सकुशल देखा है। उन्हें भरत जी श्रीराम लक्ष्मण के समान प्रिय मान लेते हैं। इस प्रकार सब से भरत जी सुन्दर वाणी से पूँछते है और श्रीराम जी के वन में बास करने की कथा सुनते हैं।

दो०—तेहिं बासर बसि प्रात ही, चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दर्श की लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥

उस दिन टिक सबेरा होते ही श्रीराम जी का स्मरण कर, सब लोग चल दिये। भरत जी के समान श्रीरामचन्द्र जी के दर्शनों की लालसा सब को है।

मङ्गल शकुन होहिं सब काहू। फरकहि सुखद विलोचन बाहू ॥
भरतहिं सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं राम मिटहिं दुखदाहू ॥
करत मनोरथ जस जिय जाके। जाहिं सनेह सुधा सब छाके ॥
शिथिलअङ्ग मग पग डग डोलहिं। विह्वल वचन प्रेमवश बोलहिं ॥
राम सखा तेहि समय दिखावा। शैल शिरोमणि सहज सुहावा ॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ वीरा ॥
देखि करहिं सब दण्ड प्रणामा। कहि जय जानकि जीवन रामा ॥
प्रेम मगन अस राज-समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू ॥

सब को अच्छे अच्छे शकुन होने लगे और सुख देने वाले नेत्र और भुजाएँ फड़कने लगी। भरत को आशा भरोसा है कि उन्हें उनके साथियों सहित श्रीराम

जी के दर्शन मिलेंगे और सारा दुःख और दाह दूर होगा। अपने इच्छानुसार सब मनोरथ करते हैं और प्रेमरूपी अमृत से छके सब चले जाते हैं। अङ्ग शिथिल हो गये हैं और पैर भी कहीं का कहीं रास्ते में पड़ता है, और प्रेमवश वे विह्वल वचन कहते हैं। इतने में गुह ने शैलशिरोमणि चित्रकूट दिखलाया। जिसके निकट मन्दाकिनी नदी के तट पर, सीता जी समेत दोनों भाई निवास करते हैं। उसे देखते ही सब प्रणाम करने लगे और सीता जी के जीवन ऐसे श्रीरामचन्द्र जी की जय बोलने लगे। राजसमाज प्रेम में ऐसा मग्न है मानों श्रीरामचन्द्र जी ही अयोध्या को लौट कर चलते हैं।

दो०—भरत प्रेम तेहि समय जस, तस कहि सकै न शेषु।
कविहिं अगम जिमि ब्रह्म सुख, अह-मम-मलिन-जनेषु॥

उस समय भरत जी को जैसा प्रेम है, उसे शेष जी भी नहीं कह सकते। वह कवि के लिये तो उसी प्रकार कठिन है जिस प्रकार अहंकारी और ममता वाले मलिन पुरुष को ब्रह्मानन्द।

सकल सनेह शिथिल रघुवर के। गये कोस दुइ दिनकर ढरके॥
जल थल देखि बसे निशि बीते। कीन्ह गमन रघुनाथ पिरीते॥
उहाँ राम रजनी अवशेखा। जागीं सीय स्वप्न अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आये। नाथ वियोग ताप तनु ताये॥
सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी॥
सुनि सिय स्वप्न भरे जल लोचन। भये सोचवश सोचविमोचन॥
लषण स्वप्न यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बन्धु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥

श्रीरामचन्द्र के प्रेम में सब लोग ऐसे शिथिल हैं कि सूर्य्यास्त होने पर भी वे दो कोस और चले गये। फिर जल थल देख वे टिक गये और सबेरा होते ही श्रीरामचन्द्र के प्यारे चले। वहाँ श्रीरामचन्द्र जी कुछ रात रहते जागे। जानकी जी ने स्वप्न देखा कि श्रीराम जी के वियोगरूपी अग्नि में तप्त भरत जी

अपनी मण्डली सहित आये हैं। सब दीन दुखी हैं और सासों का कुछ और ही ढंग है (अर्थात् वे विधवा हैं।) सीता जी का स्वप्न सुन, चिन्ता मेंटने वाले श्रीरामचन्द्र जी के नेत्र सजल हो गये और उनको चिन्ता व्यापी। वे लक्ष्मण जी से कहने लगे कि लक्ष्मण ! यह स्वप्न अच्छा नहीं है—कोई खोटी बात सुनाई पड़ेगी। यह कह लक्ष्मण जी सहित उन्होंने स्नान किये और महादेव जी का पूजन कर साधुओं का सत्कार किया।

छं०-सनमानि सुर मुनि बन्दि बैठे उतर दिशि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे विकल प्रभु आश्रम गये॥
तुलसी उठे अवलोकि कारण काह चित चकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन आय तेहि अवसर कहे॥

देव और मुनि की आराधना कर तथा उनको प्रणाम कर, श्रीरामचन्द्र जी बैठ कर उत्तर दिशा की ओर देखने लगे। उस समय उन्होंने देखा कि उस ओर आकाश में धूल छाई हुई है, अनेक पशु पक्षी विकल हो भागे हुए श्रीराम जी के आश्रम की ओर आ रहे हैं। यह देख श्रीराम लक्ष्मण उठे और चकित हो इस उपद्रव का कारण विचारने लगे। इतने ही में किरात और कोलों ने आ कर सारा हाल कहा।

सो०—सुनत सुमङ्गल बैन, मन प्रमोद तनु पुलक भर।
शरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल॥

इस सुख सम्वाद (भरत जी के आगमन) को सुन, श्रीराम जी अति प्रसन्न हुए, शरीर रोमाञ्चित हो गया और उनके शरद के कमल के समान नेत्र प्रेम के जल से भर गये।

बहुरि सोचवश भे सियरमनू। कारण कवन भरत आगमनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरङ्ग न थोरी॥
सो सुनि रामहिं भा अति सोचू। इत पितुवच उत बन्धु सकोचू॥
भरत स्वभाव समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥
समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महँ साधु सयाने॥

लषण लखेउ प्रभु हृदय खँभारू। कहत समय सम नीति विचारू॥
बिनु पूछे कछु कहउँ गुसाँई। सेवक समय न ढीठ ढिठाई॥
तुम सर्वज्ञ शिरोमणि स्वामी। आपनि समुझि कहौं अनुगामी॥

श्रीरामचन्द्र जी फिर भरत के आने का कारण जानने के लिये चिन्तित हुए। इतने में एक ने आ कर समाचार दिया कि भरत के साथ बड़ी भारी चतुरङ्गिनी सेना है। यह सुन श्रीराम जी को बड़ी चिन्ता हुई। इधर तो पिता की आज्ञा और इधर भाई का सङ्कोच। परन्तु भरत जी के स्वभाव को मन में विचार श्रीराम जी का चित्त हित के स्थान में स्थिर नहीं होता है। तब यह जान कर उनका चित शान्त हुआ कि भरत चतुर हैं, साधु हैं और मेरे कहे में हैं। जब लक्ष्मण जी ने श्रीरामचन्द्र जी को विकल देखा, तब वे समयानुसार नीति विचार कर कहने लगे। हे नाथ! बिना पूछे मैं कुछ कहता हूँ, क्योंकि समय पर सेवक की धृष्टता नहीं गिनी जाती। हे स्वामी! आप तो सर्वज्ञ हैं सब जानते ही होंगे किन्तु मेरी समझ में जो बात आयी है--मैं वह कहता हूँ।

दो०—नाथ सुहृद् सुठि सरल चित, शील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान॥

हे स्वामी! आप तो सब के प्रिय हैं। आपका स्वभाव अति सीधा है और आप शील और प्रेम के समुद्र हैं। अपने जैसा सब पर विश्वास कर लेते हैं।

बिषयी जीव पाइ प्रभुताई। मूढ़ मोहवश होहिं जनाई॥
भरत नीति रत साधु सुजाना। प्रभु-पद-प्रेम सकल जग जाना॥
तेऊ आज राजपद पाई। चले धर्म मर्याद मिटाई॥
कुटिल कुबन्धु कुअवसर ताकी। जानि राम वनवास इकाकी॥
करि कुमन्त्र मन साजि समाजू। आये करन अकण्टक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आये दल बटोरि दोउ भाई॥
जो जिय होति न कपट कुचाली। केहि सुहात रथ बाजि गजाली॥
भरतहि दोष देइ को जाये। जग बौराइ राजपद पाये॥

किन्तु जो विषयी जीव हैं वे प्रभुता पा कर मूर्ख हो जाते हैं और अज्ञान के वश हो अभिमान करने लगते हैं। भरत जी तो नीतिनिपुण, चतुर, साधु और आपके चरणानुरागी हैं—यह बात सारा जहान जानता है। वे भी आज राज्यपद पा कर, धर्म की मर्यादा मिटाने चले हैं। वह कुटिल और दुष्ट भाई यह कुअवसर देख और आपको वन में अकेला जान और मन में बुरा ठान ठान अपने साथियों को साथ ले अकण्टक राज्य करने आया है। अनेक प्रकार की कुटिलता विचार कर, दोनों भाई अपनी सेना एकत्र कर आये हैं। यदि उनके मन में कुटिलता और छल न होता तो हाथी घोड़े और रथों को साथ लाने को क्या आवश्यकता थी? इसके लिये भरत को दोष देना वृथा है—क्योंकि राज्य पद पाकर जगत पागल हो जाता है।

दो०—शशि गुरुतिय गामी नहुष, चढ़े भूमि-सुर-यान।
लोक वेद तें विमुख भा, अधम को बेनुसमान॥

प्रभुता पा कर चन्द्रमा ने गुरू की स्त्री से सम्भोग किया, राजा नहुष ने ब्राह्मणों से अपनी पालकी उठवाई और लोक तथा वेद से विमुख राजा वेणु के समान कौन नीच हुआ? (इस दुष्ट ने स्वयं ईश्वर होने की घोषणा की थी।)

सहस्रबाहु सुरनाथ त्रिशंकू। केहि न राज-मद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिण रञ्च न राखब काऊ॥
एक कीन्ह नहिं भरत भलाई। निदरे राम जानि असहाई॥
समुझि परिहि सो आजु विशेखी। समर सरोष राममुख देखी॥
इतना कहत नीति रस भूला। रणरस विटप पुलकि जनु फूला॥
प्रभु पद वन्दि शीश रज राखी। बोले सत्य सहज बल भाखी॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचार न थोरा॥
कहँ लगि सहिय रहिय रिस मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥

सहस्रबाहु, इन्द्र और त्रिशङ्कु—इनमें से किसको राजमद ने कलङ्कित नहीं किया? भरत जी ने यह ठीक ही प्रबन्ध किया है; क्योंकि शत्रु और ऋण

को कभी कुछ भी शेष न रखना चाहिये। परन्तु एक काम भरत से अच्छा नहीं बन पड़ा कि उन्होंने श्रीराम जी को असहाय समझ उनका ऐसा अनादर किया है। आज श्रीराम जी का रणक्षेत्र में सरोष मुख देख भरत अपनी भूल समझेंगे। इतना कहते कहते ही लक्ष्मण जी नीतिरस को भूल गये और वीररस का वृक्ष पुलकावली रूपी फूलों से फूल गया। फिर उन्होंने श्रीराम जी के चरणों की रज अपने मस्तक पर रखी और सहज ही अपना बल बखान कर सचमुच बोले:— हे नाथ! मेरे कथन का बुरा न मानना—क्योंकि भरत ने हम लोगों को मार डालने में कोई बात उठा नहीं रखी। हे नाथ! अब कब तक मन मारे हम सहें—हमारे हाथ में भी तो धनुष है।

दो०—क्षत्रि जाति रघुकुल जनम, रामअनुज जग जान।
लातहु मारे चढ़त सिर, नीच को धूरि समान॥

जगत जानता है कि हम क्षत्रिय जाति के हैं, रघुकुल में जन्मे हैं और श्रीराम जी के छोटे भाई हैं। धूल से बढ़ कर क्षुद्र और कौन है—सो वह भी लात मारने से सिर पर ही चढ़ती है।

उठि करजोरि रजायसु माँगा। मनहुँ वीररस सोवत जागा॥
बाँधि जटा सिर कसि कटिभाथा। साजि शरासन शायक हाथा॥
आजु राम सेवक यश लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फल पाई। सोवहु समर सेज दोउ भाई॥
आय बना भल सकल समाजू। प्रकट करौं रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलै मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहिं भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातौं खेता॥
जो सहाय कर शङ्कर आई। तदपि हतौं रण राम दुहाई॥

इतना कह लक्ष्मण जी उठ खड़े हुए और हाथ जोड़ कर आज्ञा माँगी—मानों वीररस सोते से जाग उठा। सिर पर जटा जूट बाँध, कमर में तरकस कस, और हाथ में धनुष बाण ले कहा—आज मैं श्रीराम जी की सेवा का यश लूँगा।

और युद्ध में भरत को शिक्षा दूँगा। श्रीरामचन्द्र जी के निरादर का यह फल है कि लड़ाई रूपी सेज पर दोनों भाई सोवें। आज सारा बानिक ठीक बना है। मैं पिछली कसर भी आज पूरी कर लूँगा। जिस प्रकार सिंह हाथियों के झुण्ड को दलन करता और जिस प्रकार बाज लवा पर झपटता है—उसी प्रकार मैं भरत को उसकी सेना और उसके छोटे भाई सहित गिरा दूँगा। भले ही महादेव स्वयं उसकी सहायता को क्यों न आवें, मैं श्रीराम जी की शपथ खाता हूँ कि तो भी मैं उसे युद्ध में मार डालूँगा।

दो०—अति सरोष भाषे लषण, लखि सुनि शपथ प्रमान।
सभय लोक सबलोकपति, चाहत भभरि भगान॥

लक्ष्मण जी को क्रुद्ध देख और जो उन्होंने कहा उसे सुन तथा उनकी शपथ को प्रमाण मान सब लोक और लोकपाल घबड़ा गये और भड़भड़ा कर वे भागने को उद्यत हुए।

जग भय मगन गगन भै बानी। लषण बाहुबल विपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाव तुम्हारा। को कहि सकै को जाननहारा॥
अनुचित उचित काज कछु होई। समुझि करिय भल कह सब कोई॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं॥
सुनि सुरवचन लषण सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने॥
कही तात तुम नीति सुहाई। सब तें कठिन राज-मद भाई॥
जो अँचवत मातहिं नृप तेई। नाहिंन साधु सभा जिन सेई॥
सुनहु लषण भल भरत सरीखा। विधि प्रपञ्च महँ सुना न दीखा॥

तब जगत् को भयभीत देख और लक्ष्मण जी के बाहुबल की प्रशंसा कर, यह आकाशवाणी हुई कि हे तात! तुम्हारा प्रताप और प्रभाव कौन कह सकता और कौन जान सकता है। भला बुरा जो कुछ काम हो वह समझ बूझ कर करना चाहिये जिससे सब लोग उसे भला बतलावें। वेद और बुद्धिमान कहते हैं कि वह जन बुद्धिमान नहीं है जो किसी काम को बिना सोचे विचारे कर पीछे पछताता है। देवताओं के वचन सुन लक्ष्मण जी लज्जित हुए, तब उनका उत्साह

यथावत् रखने के लिये श्रीराम और सीता ने उनका आदर किया और कहा—हे तात! तुम्हारा कथन नीतियुक्त है और ठीक है—भाई राजमद (जैसा तुमने कहा) बड़ा कठिन है। इस राजमद को पान कर वे राजा मतवाले हो जाते हैं, जिन्होंने साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया। किन्तु हे लक्ष्मण! सुनो, भरत के समान दूसरा भला पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न तो देखा गया और न सुना गया।

दो०—भरतहिं होइ न राज-मद, विधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीर-सिन्धु बिनसाइ॥

राज्यपद तो वस्तु ही क्या है, भरत को यदि ब्रह्मा, विष्णु या महादेव जी का भी पद मिले, तो भी वे राजमद से प्रमत्त नहीं होंगे। भला कहीं मट्ठे के धोवन की बून्दों से क्षीर समुद्र फट सकता है?

तिमिर तरुणतरणिहिं मकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गो-पद-जल बूड़हिं घट योनी। सहज छमा बरु छाँड़हिं छोनी॥
मशक फूँकि बरु मेरु उड़ाई। होइ न नृप-मद भरतहिं भाई॥
लषण तुम्हार शपथ पितु आना। शुचिसुबन्धुनहिं भरत समाना॥
सगुण छीर अवगुण जल ताता। मिले रचे परपञ्च विधाता॥
भरत हंस रवि वंश तड़ागा। जन्मि कीन्ह गुण दोष विभागा॥
गहि गुण पय तजि अवगुण बारी। निज यश जगत कीन्ह उजियारी॥
कहत भरत गुणशील स्वभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ॥

अन्धकार तरुण सूर्य्य को भले ही निगल जाय, आकाश भले ही बादलों में मिल जाय, अगस्त्य जी भले ही गौ के खुर भर पानी में डूब जाँय, और पृथिवी भले ही अपने स्वाभाविक क्षमा गुण को छोड़ दे, तथा मच्छर की फूंक से भले ही सुमेरु उड़ जावे, परन्तु हे भाई! भरत को राज्य का मद नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारी और पिता की शपथ खा कर कहता हूँ कि भरत जैसा कपट रहित भाई नहीं है। हे तात! दूध के समान अच्छे गुण और जल के

समान बुरे गुण इन दोनों को मिला कर ब्रह्मा ने इन्हें संसार में उत्पन्न किया है। सूर्यवंश मानों सरोवर है और भरत जी मानो हंस हैं। उन्होंने जन्म ले कर गुणों और दोषों को पृथक पृथक कर दिया। गुणरूपी दूध को ग्रहण कर और अवगुण रूपी जल को छोड़ अपने यश से संसार को प्रकाशित किया। भरत के गुण और शील स्वभाव को कहते हुए श्रीराम जी स्नेह के समुद्र में डूब गये।

दो०—सुनि रघुवर वाणी विबुध, देखि भरत पर हेतु।
लगे सराहन सहस मुख, प्रभु को कृपानिकेतु॥

और देवता श्रीरामचन्द्र की वाणी सुन और भरत पर प्रीति देख सराहना करने लगे कि श्रीरामचन्द्र के समान कृपानिकेत और कौन हो सकता है।

जो न होत जग जन्म भरत को। सकल धर्म धुरि धरणि धरत को॥
कविकुल अगम भरत गुण गाथा। को जानै तुम बिनु रघुनाथा॥
लषण राम सिय सुनि सुरवानी। अति सुख लहेउ न जाइ बखानी॥
यहाँ भरत सब सहित सुहाये। मन्दाकिनी पुनीत नहाये॥
सरित समीप राखि सब लोगा। माँगि मातु गुरु सचिव नियोगा॥
चले भरत जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथ लघु भाई॥
समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतर्क कोटि मन माहीं॥
रामलषण सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥

संसार में यदि भरत जी का जन्म न होता तो सकल धर्मों की धुरी को पृथिवी पर कौन रखता? हे श्रीरामचद्र! कवियों के लिये अति कठिन भरत के गुणों की कथा को, तुम्हें छोड़ और कोई कैसे जान सकता है? श्रीराम लक्ष्मण और जानकी आकाशवाणी सुन बहुत प्रसन्न हुए। उधर भरत जी ने सब साथी संगियों सहित परम पवित्र मन्दाकिनी नदी के जल में स्नान किये। फिर अन्य सब को नदी के तट पर छोड़ वे तथा माता, गुरु और मन्त्री से अनुमति ले, निषादनाथ एवं शत्रुघ्न को साथ ले वे उस ओर चले जहाँ सीताराम थे। चलते

चलते वे अपनी जननी की करतूत का स्मरण कर मन ही मन लज्जित होते जाते हैं और नाना प्रकार की कल्पनाएं करते हैं। वे सोचते हैं कि श्रीराम लक्ष्मण और जानकी कहीं मेरा नाम सुन अन्यत्र न चले जाँय।

दो०—मातु मते महु जानि मोहिं, जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुण तजि आदरहिं, समुझि आपनी ओर॥

माता के कहे में मुझे समझ वे जो कुछ कर डालें सो थोड़ा है, परन्तु (मुझे विश्वास है कि वे) अपनी ओर देख मेरे पापों और दोषों को क्षमा कर मेरा आदर ही करेंगे।

जो परिहरहिं मलिन मन जानी। जो सनमानहिं सेवक मानी॥
मोरे शरण राम की पनहीं। राम सुस्वामि दोष सब जनहीं॥
जग यशभाजन चातक मीना। नेम प्रेम निज निपुण नवीना॥
अस मन गुणत चले मगु जाता। सकुचि सनेहशिथिलसबगाता॥
फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भक्ति बल धीरज धोरी॥
जब समुझहिं रघुनाथ स्वभाऊ। तब पथ परत उतावल पाऊ॥
भरत दशा तेहिं अवसर कैसी। जल प्रवाह जलअलिगति जैसी॥
देख भरतु कर सोच सनेहू। भा निषाद तेहिं समय विदेहू॥

चाहे वे मुझे मलिनमन समझ त्याग दें, या अपना दास समझ मेरा सम्मान करें। मैं तो श्रीरामचन्द्र जी की जूतियों की शरण हूँ और श्रीरामचन्द्र जी स्वामी हैं और मेरे सब दोषों को जानते हैं। संसार में पपीहा और मछली सचमुच यश के पात्र हैं, जो अपने नियम और प्रेम में सदा पक्के और नये रहते हैं। इस प्रकार मन ही मन विचारों की उधेड़ बुन में लगे भरत जी चले जाते हैं। उनका शरीर सङ्कोच और प्रेम के कारण शिथिल हो गया है। भरत जी को माता की खोटी करनी तो मानों पीछे लौटाती है किन्तु वे श्रीराम की भक्ति के बल धीरज रख आगे चले जाते हैं। जब उनको श्रीराम जी के स्वभाव का स्मरण हो आता है, तब उनके पैर जल्दी जल्दी उठने लगते हैं। उस समय भरत की दशा

वैसीथी जैसी दशा जल के प्रवाह में जल के भौंरे की होती है। भरत जी को उस समय श्रीराम जी की भक्ति और चिन्ता में निमग्न देख गुह अपने आपे में न रहा।

दो०—लगे होन मङ्गल शकुन, सुनि गुनि कहत निषाद।
मिटिहिं सोच होइहि हरष, पुनि परिणाम विषाद॥

जब मङ्गलदायक शकुन होने लगे, तब उन्हें सुन और बिचार कर निषाद ने कहा कि चिन्ता मिटैगी, आनन्द होगा, पर अन्त में विषाद ही होगा।

सेवक वचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाय नियराने॥
भरत दीख वन शैल समाजू। मुदित क्षुधित जनु पावसुनाजू॥
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिविध ताप पीडित ग्रहमारी॥
जाइ सुराज सुदेश सुखारी। भई भरत गति तेहिं अनुहारी॥
राम वास वन सम्पति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव विराग विवेक नरेशू। विपिन सुहावन पावन देशू॥
भट यम नियम शैल रजधानी। शान्ति सुमतिशुचिसुन्दररानी॥
सकल अङ्ग सम्पन्न सुराऊ। राम-चरण आश्रितचितचाऊ॥

भरत जी ने निषाद के कहने को सत्य माना और वे श्रीराम जी के आश्रम के समीप जा पहुँचे। भरत उस पवन को देख ऐसे प्रसन्न हुए जैसे भूखा अच्छे अन्न को पा कर होता है। जैसे खेती के उपद्रवों से डरी हुई, तीन प्रकार के तापों से पीड़ित और ग्रहों की सतायी हुई दुखी प्रजा—अच्छे राज्य और अच्छे देश में पहुँच कर सुखी होती है; वैसे ही भरत जी भी सुखी हुए। श्रीरामचन्द्र जी के वन में रहने से वहाँ की सम्पत्तियाँ ऐसे शोभित हुईं, जैसे सुन्दर राजा को पा कर प्रजा सुखी हुआ करती है। जिस जगह ज्ञान राजा, वैराग्य मंत्री, और सुन्दर वन पवित्र देश है, जिसके संयम नियम वीर योद्धा हैं, पर्वत राजधानी है और शान्ति तथा सुन्दर मति पतिव्रता सुन्दर रानियाँ हैं, जहाँ सर्वाङ्ग सुन्दर राजा है और जिसका मन श्रीरामचन्द्र जी के चरणों के सहारे प्रसन्न है—

दो०—जीति मोह महिपाल दल, सहित विवेक भुआल।
करत अकण्टक राजपुर, सुख सम्पदा सुकाल॥

वह ज्ञानरूपी राजा, सेना सहित अज्ञान रूपी राजा को परास्त कर, अपने राज्य में अकण्टक राज्य करता है और उसके राज्य में सुख और सम्पत्ति का सुकाल बना रहता है।

बन प्रदेश मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाँव गण खेरे॥
बिपुल बिचित्र बिहँग मृग नाना। प्रजा समाज न जाइ बखाना॥
खरहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृक साज सराहा॥
बैर बिहाय चरहिं इक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा॥
झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँनिशानविविधविधिबाजहिं॥
चक चकोर चातक शुक पिकगन। कूजत मञ्जु मराल मुदित मन॥
अलिगण गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मङ्गल चहुँ ओरा॥
बेलि बिटप तृण सफल सफूला। सब समाज मृदु मङ्गल मूला॥

मुनियों के आश्रम ही मानों वन के अनेक नगर ग्राम और खेड़े हैं। बहुत से रंग बिरंग के पक्षी और हिरन प्रजा का समाज है जिनका वर्णन नहीं हो सकता। गधे, हाथी, सिंह, बाघ, शूकर, भैंसे, भेड़िये इनका समाज प्रशंसा के योग्य है। उनका परस्पर बैर भाव त्याग कर एक साथ बिचरना मानों चतुरङ्गिन सेना है। झरनों का झरना और हाथियों की चिंघारें—मानों बाजों का शब्द है चकवा, चकोर, पपीहा, तोते, और कोकिलों के समूह और हंस प्रसन्न हो कलरव करते हैं। भौंरे गाते हैं और मोर नाचते हैं—मानों सुन्दर राज्य में चारों ओर आनन्द हो रहा है। बेल, वृक्ष, घास आदि फल फूल रहे हैं और सब समाज आनन्दप्रद हो रहा है।

दो०—राम शैल शोभा निरखि, भरत हृदय अति प्रेम।
तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेम॥

श्रीराम जी के पहाड़ की शोभा को देख भरत जी के मन में वैसा ही अनुराग उमड़ा, जैसा तपस्वी के मन में तप का फल पा कर और नियमों की समाप्ति के समय होता है।

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहा भरत सन भुजा उठाई॥
नाथ देखिये विटप विशाला। पाकर जम्बु रसाल तमाला॥
तिन तरुवरन्ह मध्य बट सोहा। मञ्जु विशाल देखि मन मोहा॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अविचल छाँह सुखद सब काला॥
मानहुँ तिमिर अरुणामय रासी। विरची विधि सकेलि सुषमासी॥
तेहि तरु सरित समीप गोसाँई। रघुवर पर्णकुटी तहँ छाई॥
तुलसी तरुवर विविध सुहाये। कहुँसिय पिय कहुँलषण लगाये॥
बट छाया वेदिका बनाई। सिय निज पाणि सरोज सुहाई॥

तब केवट ने ऊँचे पर चढ़ और भुजा उठा कर भरत जी से कहा—हे नाथ! देखो, यह बड़े बड़े पाकर, जामन, तमाल और आम के पेड़ दीख पड़ते हैं—उनके बीच में जो बड़ा उज्ज्वल और मनोहर वट का सुहावना पेड़ है, और जिसके घने नीले पत्ते हैं, लाल फल हैं और सर्वदा रहने वाली उसकी छाया—सब समय सुख देने वाली है उसे देख ऐसा जान पड़ता है कि ब्रह्मा ने लालिमी और अन्धकार को एकत्र कर उसकी शाभा को रचा है। उस वृक्ष के निकट नदी है और वहीं श्रीरामचन्द्र जी की कुटी है। उस जगह अनेक तुलसी के विरवा हैं, जो श्रीराम और लक्ष्मण के लगाये हुए हैं। सीता जी ने अपने कमल समान कोमल हाथों से वट की छाया में सुन्दर बेदी बनायी है।

दो०—जहँ बैठैं मुनिगण सहित, नित सिय-राम सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान॥

जहाँ मुनीश्वरों की मण्डली में बैठ कर, सुजान श्रीराम और सीता इतिहास तथा पुराण की कथाएँ एवं वेद और शास्त्र नित्य सुनते हैं।

सखावचन सुनि विटप निहारी। उमँगे भरत विलोचन बारी॥
करत प्रणाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति शारद सकुचाई॥
हर्षहिं निरखि राम-पद अङ्का। मानहुँ पारस पायहु रङ्का॥
रजसिरधरि हियनयन लगावहिं। रघुवरमिलनसरिस सुख पावहिं॥
देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन खग मृग जड़ जीवा॥

सबहिं सनेह बिबश मग भूला। कहि सुपन्थ सुर बर्षहिं फूला ॥
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेह सराहन लागे ॥
होत न भूतल भाव भरत को। अचर सचर चर अचर करत को ॥

मित्र के वचन सुन और वृक्षों की ओर देख भरतजी के नेत्र सजल हो गये। फिर भरत और शत्रुघ्न प्रणाम करते आगे बढ़े। उस समय उनके अनुराग के वर्णन में सरस्वती भी सकुचाती हैं। श्रीराम जी के चरणचिह्नों को देख वे ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानों कंगाल को पारस मिल गया हो। उनके चरण की रज को हृदय और नेत्रों से लगा कर उन्हें श्रीरामचन्द्र जी के मिलने जैसा सुख होता है। भरत जी की इस अत्यन्त अकथनीय दशा को देख, पशु, पक्षी, जड़, जीव सब प्रेममग्न हो गये। निषाद भी प्रेम में मग्न हो रास्ता भूल गया, तब देवताओं ने मार्ग बता फूलों की वर्षा की। साधु और सिद्ध भी अनुराग में भर भरत जी के स्वाभाविक प्रेम को सराहने लगे। यदि पृथिवी पर भरत न जन्मते तो जड़ को चैतन्य और चैतन्य को जड़ कौन करता ?

दो०—प्रेम अमिय मन्दर बिरह, भरत पयोधि गँभीर।
मथि प्रकटे सुर साधु हित, कृपासिन्धु रघुबीर ॥

भरत जी गम्भीर क्षीर के समुद्र हैं, और वनवास का विरह मन्दराचल पर्वत है उसे मथ कृपासिन्धु रघुबीर ने देवता और साधुओं के लिये प्रेमरूपी अमृत को प्रकट किया है।

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लषण सघन बन ओटा ॥
भरत दीख प्रभु आश्रम पावन। सकल सुमङ्गल सदन सुहावन ॥
करत प्रवेश मिटा दुख दावा। जनु योगी परमारथ पावा ॥
देखे भरत लषण प्रभु आगे। पूछत वचन कहत अनुरागे ॥
शीश जटा कटि मुनि पट बाँधे। तूण कसे कर शर धनु काँधे ॥
वेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू ॥
बलकल बसन जटिल तनुश्यामा। जनु मुनि वेष कीन्ह रतिकामा ॥
कर कमलन धनु शायक फेरत। जा को जरनि हरत हँसि हेरत ॥

उस घने वन की ओट होने के कारण लक्ष्मण जी—मित्र सहित आती हुई उस मनोहर जोड़ी को न देख सके। किन्तु भरत ने भगवान् का पवित्र आश्रम देखा जो समस्त आनन्दों का आवस स्थान था। उसमें प्रवेश करते ही दुःखरूपी दावानल ऐसे मिट गया जैसे योगी को मुक्ति मिले। भरत ने देखा कि लक्ष्मण जी सामने खड़े श्रीरामचन्द्र जी से कुछ पूँछ रहे हैं और वे बड़ी प्रीति के साथ उत्तर दे रहे हैं। उनके मस्तक पर जटा जूट है, कमर में मुनियों के वस्त्र हैं तरकश कसे हैं, हाथ में बाण और कन्धे पर धनुष है। चबूतरे पर, मुनियों और साधुओं सहित सीताराम विराजमान हैं। वे वल्कल वस्त्र पहने और जटाजूट बाँधे हुए श्यामल शरीर से ऐसे शोभायमान हैं मानों रति और कामदेव मुनीश्वर का वेष धारण किये बैठे हों। वे कमल समान हाथों से धनुष फिरा रहे हैं और हँस कर देख कर, जी की जलन हर रहे हैं।

दो०—लसत मञ्जु मुनि मण्डलो, मध्य सीय रघुचन्द।
ज्ञान सभा जनु तनु धरे, भक्ति सच्चिदानन्द॥

उस सुन्दर मुनिमण्डली के बीच, सीता राम ऐसे शोभायमान हैं, जैसे मानों ज्ञान के समाज में भक्ति और सच्चिदानन्द ब्रह्म ने शरीर धारण किया हो।

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हर्ष शोक सुख दुखगन॥
पाहि नाथ कहि पाहि गुसांइ। भूतल परे लकुट की नाँई॥
वचन सप्रेम लषण पहिचाने। करत प्रणाम भरत जिय जाने॥
बन्धु सनेह सरस यहि ओरा। उत साहबसेवा बरजोरा॥
मिल न जाइ नहि गुदरत बनई। सकवि लषण मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खिलारू॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रणाम करत रघुनाथा॥
उठे राम सुनि प्रेम अधोरा। कहुँ पट कहुँ निषङ्ग धनु तीरा॥

भरतजी गुह और शत्रुघ्न सहित मनमें मग्न हो गये। उनके हर्ष, शोक, सुख दुःख सभी दूर हो गये। हे नाथ! "पाहि माम्" कह वे लकड़ी की तरह पृथिवी पर गिर पड़े। उनकी प्रेम भरी बोली से लक्ष्मण जी ने उन्हें झट पहचान लिया

और देखा कि भरत जी प्रणाम कर रहे हैं। एक ओर तो भाई का रस भरा प्रेम, दूसरी ओर स्वामी की कठिन सेवा। अतः न तो मिलते ही बन पड़ता है और न छोड़ते ही बन आता है, उस समय की लक्ष्मण जी के मन की दशा को सुकवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—लक्ष्मण जी सेवा के अनन्त भार को रख इस प्रकार रह गये जिस प्रकार चढ़ी हुई चंग खिलाड़ी को खैंचे पर वह न खिंचे। लक्ष्मण जी ने प्रणाम कर रघुनाथ जी से विनय की कि हे रघुनाथ जी! भरत जी आपको प्रणाम करते हैं। यह सुन और प्रेम से अधीर हो श्रीरामचन्द्र जी उठे। उस समय कहा तो तरकस गिरा, कहीं वस्त्र गिरा और कहीं धनुष बाण गिर गया।

दो०—बरबस लिये उठाय उर, लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरेउ सबहिं अपान॥

कृपानिधान श्रीराम जी ने बरबस उठा भरत जी को छातीसे लगा लिया उस समय भरत जी और श्रीराम जी के मिलाप को देख सब अपने को भूल गये।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कवि कुलअगम कर्म मन बानी॥
परम प्रेम पूरण दोउ भाई। मन बुधि चितअहमितिबिसराई॥
कहहु सुप्रेम प्रकट को करई। केहि छाया कविमति अनुसरई॥
कबिहिं अर्थ आखर बल साँचा। अनुहर ताल गतिहिं नट नाचा॥
अगम सनेह भरत रघुवर को। जहँ न जायमनविधिहरिहरको॥
सो मैं कुमति कहौं केहि भाँती। बाजु सुराग कि गाड़र ताँती॥
मिलनिविलोकि भरत रघुवर की। सुरगण समय धुकधुकीधरकी॥
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे। वर्षि प्रसून प्रशंसन लागे॥

इस सम्मिलन का प्रेम इसलिये वर्णनातीत है कि वह कवियों के मन वच कर्म से परे है। दोनों भाई स्नेह में भर मन, बुद्धि और चित्त से अपने को भूल गये। कहो उस सुन्दर स्नेह को कौन कह सकता है किस कवि की बुद्धि उसकी छाया के पीछे पीछे जा सकती है। कवि को तो अक्षर के अर्थ का सच्चा बल होता है जैसे नट ताल की गति पर नाचता है। भरत जी और श्रीराम जी का स्नेह अथाह है। वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का भी मन नहीं पहुँच सकता। तुलसीदास

कहते हैं कि फिर मैं बुद्धिहीन उसे किस प्रकार वर्णन करूं ? क्योंकि कहीं गड़रिये की तांत से भी सुन्दर तान बज सकती है ? श्रीरामचन्द्र जी और भरत का मिलाप देख देवताओं की छाती धड़कने लगी। तब बृहस्पति के समझाने से वे सूर्ख आपे में आये और फूल बरसा कर भरत जी की प्रशंसा करने लगे।

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं, केवट भेंटे राम।
भूरि भाग्य भेंटे भरत, लक्ष्मण करत प्रणाम॥

रघुनाथ जी स्नेह सहित शत्रुघ्न से मिल कर केवट से मिले और भाग्यवान् लक्ष्मण जी भरत जी को प्रणाम कर उनसे मिले।

भेंटेउ लखण ललकि लघु भाई। बहुरि निषाद लीन्ह उर लाई॥
पुनि मुनिगण दोउ भाइन बन्दे। अभिमत आशिष पाइ अनन्दे॥
सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय-पदपद्म परागा॥
पुनि पुनि करत प्रणाम उठाये। सिर करकमल परसि बैठाये॥
सीय अशीश दीन्ह मन माहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं॥
सब विधि सानुकूल लखि सीता। भे असोच उर अपडर बीता॥
कोउ कछु कहै न कोउ कछु पूछा। प्रेम भरा मन निज गति छूछा॥
तेहि अवसर केवट धीरज धरि। जोरि पाणि विनवत प्रणाम करि॥

ललक कर लक्ष्मण जी शत्रुघ्न से मिले फिर निषाद को उन्होंने छाती से लगाया फिर दोनों भाइयों ने मुनियों को प्रणाम कर आशीर्वाद पाये और प्रसन्न हुए। शत्रुघ्न सहित भरत जी ने प्रेम की उमंग में भर सीता के चरणों पर सिर रखा। भरत जी को बार बार प्रणाम करते देख श्रीराम जी ने उन्हें उठाया और उनके मस्तक पर कमल समान हाथ फेर कर बिठाया। सीता जी ने मन ही मन आशीर्वाद इसलिये दिया कि उन्हें अपने तन की सुध बुध नहीं थी। सीता जीके सब प्रकार से अपने अनुकूल देख भरत जी की चिन्ता दूर हुई और उनके मन में जो डर था वह भी दूर हुआ। न तो उस समय किसी ने कुछ कहा और न कुछ पूँछा—सब के मन प्रेम से भरे हुए अपनी गति को भूले हुए थे। उस समय निषाद ने सम्हल कर, और हाथ जोड़ कर विनती की।

दो०—नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब, आये विकल वियोग॥

हे नाथ! वसिष्ठ जी के साथ, माताएँ, सब अयोध्यावासी, सेवक, सेनापति और मन्त्री आपके वियोग से बिकल हो आये हुए हैं।

शील सिन्धु सुनि गुरु आगमनू। सीय समीप राखि रिपुदमनू॥
चले सवेग राम तेहि काला। धीर धर्मधुर दीनदयाला॥
गुरुहि देखि सानुज अनुरागे। दण्ड प्रणाम करन प्रभु लागे॥
मुनिवर धाइ लिये उर लाई। प्रेम उमँगि भेंटे दोउ भाई॥
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दण्ड प्रणामू॥
राम सखा ऋषि वरवस भेंटे। जनु महि लुटत सनेह समेटे॥
रघुपति-भक्ति सुमङ्गल-मूला। नभ सराहिं सुर वर्षहिं फूला॥
येहि सम निपट नीच कोउ नाहीं। बड़ वशिष्ठ सम को जगमाहीं॥

शीलसिन्धु, धीर, धर्मधुरन्धर और दीनदयालु रघुनाथ जी गुरु का आगमन सुन और सीता जी के पास शत्रुघ्न को छोड़ जल्दी जल्दी वहाँ से चले। गुरु को देख लक्ष्मण सहित श्रीराम जी बहुत प्रसन्न हुए और प्रणाम करने लगे। तब वसिष्ठजी ने दौड़ कर उन्हें हृदय से लगा लिया और वे उनसे मिले। फिर स्नेह से पुलकित हो केवट ने अपना नाम लेकर वसिष्ठ जी को दूर ही से प्रणाम किया। ऋषिप्रवर श्रीराम जी के मित्र गुह से वरबस भेंटे मानों वे पृथिवी पर पड़े हुए प्रेम को समेट रहे हैं। देवतागण आकाश में सुन्दर आनन्द देने वाली श्रीराम जी की भक्ति की सराहना कर फूल बरसाते हैं। संसार में इसके (गुह) समान तो नीच नहीं और वसिष्ठ जी के समान बड़ा नहीं है।

दो०—जेहि लखि लषणहुँ तें अधिक, मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को, प्रकट प्रताप प्रभाउ॥

जिसे देख वसिष्ठ जी लक्ष्मण से भी अधिक प्रसन्न चित्त से मिले—सो यह श्रीरामचन्द्र जी के भजन का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

आरत लोग राम सब जाना। करुणा कर सुजान भगवाना ॥
जो जेहि भाँति रहा अभिलाखी। तेहि तेहि की तैसी रुचि राखी ॥
सानुज मिलि पल महँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुख दारुण दाहू ॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रविछाहीं ॥
मिलि केवटहि उमँगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा ॥
देखी राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवली हिम मारी ॥
प्रथम राम भेंटे कैकेयी। सरल स्वभाव भक्ति मति भेयी ॥
पगपरि कीन्ह प्रबोध बहोरी। काल-कर्म-गति सिर धरि खोरी ॥

करुणानिधान श्रीराम ने सब को दुखी जान उनके इच्छानुसार उनके मनोरथ पूरे किये। फिर लक्ष्मण सहित पल मारते सब से मिल श्रीराम ने सब का दुःख और सन्ताप दूर कर दिया। श्रीराम जी के लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है। जैसे करोड़ों घड़ों में एक ही समय सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ जाता है। फिर प्रेम की उमंगों में भर और निषाद से मिल, सब नगरनिवासी भाग्य की सराहना करने लगे। श्रीराम ने माता को ऐसा दुखी देखा जैसे सुन्दर बेलों को पाला मार गया हो। श्रीराम जी पहले कैकेयी से मिले और अपने सरल स्वभाव और भक्ति से उसकी बुद्धि को ठंडा किया। फिर कैकेयी के पैरों पर, काल, कर्म और भाग्य के सिर कलङ्क लगा—उसे समझाया।

दो०—भेंटे रघुबर मातु सब, करि प्रबोध परितोष।
अम्ब ईश आधीन जग, काहु न देइय दोष ॥

श्रीरामचन्द्र जी सब माताओं से मिले और समझा कर और ढाँढ़स बंधा कर कहा—हे माताओं! यह जगत् परमात्मा के अधीन है—किसी को दोष नहीं देना चाहिये।

गुरु-तिय-पद बन्दे दोउ भाई। सहित विप्रतिय जे सँग आई ॥
गङ्ग गौरि सम सब सनमानी। देहिं अशीश मुदित मृदुबानी ॥
गहि पद लगे सुमित्रा अङ्का। जनु भेंटी सम्पति अति रङ्का ॥
पुनि जननी चरणन दोउ भ्राता। परे प्रेम व्याकुल सब गाता ॥

अति अनुराग अम्ब उरलाये। नयन-सनेह-सलिल अन्हवाये ॥
तेहि अवसर कर हर्ष विषादू। किमि कवि कहैं मूकजिमिस्वादू ॥
मिलि जननिहिं सानुज रघुराऊ। गुरुसन कहेउ कि धारिय पाऊ ॥
पुरजन पाइ मुनीशनियोगू। जल थल तकि तकि उतरे लोगू ॥

गुरुपत्नी को तथा उनके साथ जो अन्य ब्राह्मणी आयीं थीं—उन सब को दोनों भाइयों ने प्रणाम किया। गङ्गा और पार्वती के समान, सब का सत्कार किया और उन्होंने प्रसन्न हो मधुर वचन से आशीर्वाद दिये। चरण पकड़ श्रीराम सुमित्रा की गोद में ऐसे लिपटे, मानों किसी बड़े कंगाल को सम्पत्ति मिल गयी हो। तदनन्तर दोनों भाई विकल हो कौशल्या के चरणों में गिरे। बड़े अनुराग के साथ कौशल्या ने उन दोनों को हृदय से लगा लिया और नेत्रों के स्नेह के जल से उनको स्नान करवाये। उस समय के हर्ष विषाद को कवि कैसे कहें—क्योंकि गूँगा स्वाद को नहीं कह सकता। लक्ष्मण सहित श्रीराम जी ने कौशल्या से मिल—वसिष्ठ जी से कहा कि आप आश्रम में चल कर पदार्पण कीजिये। फिर वसिष्ठ जी के आज्ञानुसार सब नगरनिवासियों ने अपने सुपास को देख जहाँ चाहा वहाँ डेरा डाल दिया।

दो०—महिसुर मन्त्री मातु गुरु, घने लोग लिय साथ।
पावन आश्रम गमन किय, भरत लषण रघुनाथ ॥

ब्राह्मण, मंत्री, माता, गुरु और अनेक लोगों को साथ में लिये हुए भरत लक्ष्मण और श्रीरामचन्द्र जी पवित्र आश्रम की ओर चले।

सीय आइ मुनिवर पग लागी। उचित अशीश लही मन माँगी ॥
गुरु पत्निहिं मुनि तियन्ह समेता। मिलि सप्रेम कहि जाइ न जेता ॥
वन्दि वन्दि पद सिय सब ही के। आशिष वचन लहे प्रिय जी के ॥
सासु सकल जब सीय निहारी। मूँदेउ नयन सहमि सुकुमारी ॥
परी वधिक वश मनहुँ मराली। काह कीन्ह करतार कुचाली ॥
तिनसिय निरखि निपट दुख पावा। सो सब सहिय जो दैव सहावा ॥

जनक सुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोचन भरि नीरा॥
मिली सकल सासुन सिर नाई। तेहि अवसर करुणा महि छाई॥

सीता जी ने आ कर श्रेष्ठ मुनि के चरण छुए और मन माँगा और उचित आशीर्वाद पाया। फिर जानकी जी गुरुपत्नी तथा अन्य मुनियों की स्त्रियों से जैसे स्नेह से मिलीं—वह कहा नहीं जा सकता। सीता जी ने सब को प्रणाम कर उन सब से प्रिय आशीर्वाद पाये। सीता जी ने जब सब सासों को देखा तब सुकुमारी सीता ने सहम कर नेत्रबन्द कर लिये। मानों हंसिनी बहेलिये के हाथ पड़ी है। हे विधाता! तैंने यह क्या बुरी चाल चली। सासें भी जानकी जी को देख बहुत दुखी हुईं। पर किया क्या जाय, दैव जो सहाता है वह सहना ही पड़ता है। तब जानकी जी धैर्य धर और नेत्रों में आँसू भर कर सब सासों से मिलीं। उस समय पृथिवी पर करुणा छा गयी।

दो०—लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय अशीशहिं प्रेमवश, रहियो भरी सुहाग॥

जानकी जी सब के पैरों पड़ बड़े अनुराग से सब से मिलीं—और सब ने प्रेमवश हो हृदय से यह आशीर्वाद दिया कि तुम सौभाग्यवती बनी रहो।

विकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहि कहेउ गुरु ज्ञानी॥
प्रथम कही जगगति मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा॥
नृप कर सुरपुर गमन सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुख पावा॥
मरण हेतु निज नेह विचारी। भे अति विकलधीर-धुर-धारी॥
कुलिश कठोर सुनत कटुबानी। विलपत लषण सीय सब रानी॥
शोक विकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू॥
मुनिवर बहुरि राम समुझाये। सहित समाज सुसरित नहाये॥
व्रत निरम्बु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहुँ कहे जल काहु न लीन्हा॥

सीता जी तथा अन्य सब रानियों को व्याकुल देख, वसिष्ठ जी ने उन सब से बैठ जाने को कहा। संसार को भगवान की माया बता वसिष्ठ जी ने परमार्थ

को कथा कहीं। फिर महाराज दशरथ का स्वर्गगमन सुनाया—जिसे सुन श्रीरघुनाथ जी बहुत दुःखी हुए। पिता की मृत्यु का कारण अपना नेह समझ धीरधुरधारी श्रीरघुनाथ जी विकल हुए। वज्र के समान कठोर कटु वाणी को सुन लक्ष्मण सीता तथा अन्य सब रानियाँ बिलखने लगीं। सब लोग शोक में ऐसे डूबे मानों महाराज दशरथ का शरीरान्त उसी समय हुआ हो। फिर वसिष्ठ जी ने श्रीरामचन्द्र जी को समझाया और सब लोगों के साथ वे मन्दाकिनी के तट पर गये और वहाँ सब ने स्नान किये। उस दिन श्रीराम जी ने निर्जल व्रत किया और वसिष्ठ जी के कहने से और किसी ने भी जल तक ग्रहण न किया।

दो०—भोर भये रघुनन्दनहिं, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भक्ति समेत प्रभु, सो सब सादर कीन्ह॥

प्रातःकाल होते ही वसिष्ठ जी ने श्रीराम जी से जो कुछ कहा—उसे श्रीराम जी ने श्रद्धा भक्ति और आदरपूर्वक किया।

करि पितु क्रिया वेद जस बरणी। भे पुनीत पातक तम तरणी॥
जासु नाम पावक अघतूला। सुमिरत सकल सुमङ्गल मूला॥
शुद्ध सो भये साधु सम्मत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस॥
शुद्ध भये दुइ वासर बीते। बोले गुरुसन राम पिरीते॥
नाथ लोग सब निपट दुखारी। कन्दमूल फल अम्बु अहारी॥
सानुज भरत सचिव सब माता। देखिमोहिं पल जिमियुगजाता॥
सब समेत पुर धारिय पाऊ। आपु यहाँ अमरावति राऊ॥
बहुत कहेउँ सब कियेउँ ढिठाई। उचित होइ तसकरिय गुसाईं॥

पिता की वैदिक क्रिया कर, पातकरूपी अन्धकार के लिये सूर्यरूपी श्रीराम पवित्र हुए। जिसका नाम पापरूपी रुई के लिये अग्नि के समान है और जो स्मरण मात्र से सब सुमङ्गलों का मूल है, साधुओं की सम्मति है कि वे वैसे ही पवित्र हैं जैसे सब तीर्थों के आवाहन से गङ्गा पवित्र मानी जाती हैं। जब शुद्धि हुए दो दिन हो गये, तब श्रीरामचन्द्र जी ने गुरु से कहा—हे नाथ! कन्दमूल फल

और जल का आहार करते करते सब लोग बहुत दुःख पा रहे हैं। शत्रुघ्न, भरत, मंत्री और सब माताओं का कष्ट देख मुझे एक एक पल एक युग की भाँति बीतता है। अब आप सब को ले कर अयोध्या को लौट जाइये। क्योंकि आप लोग यहाँ हैं और महाराज स्वर्ग में हैं (इस प्रकार राजधानी को सूनी छोड़ना ठीक नहीं।) मेरा यह सब कहना बड़ी धृष्टता है, अतः जो आपको उचित जान पड़े वही आप कीजिये।

दो०—धर्मसेतु करुणायतन, कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरश, देखि लहहिं विश्राम॥

हे श्रीराम! तुम धर्म के पुल और करुणानिधान होकर ऐसा क्यों न कहोगे? परन्तु जो लोग बहुत दिनों से दुखी थे वे दो दिन से आपका दर्शन पा कर विश्राम कर रहे हैं।

रामवचन सुनि सभय समाजू। जनुजलनिधिमहँविकलजहाजू॥
सुनि मुनिगिरा सुमङ्गल मूला। भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला॥
पावन पय तिहुँकाल नन्हाहीं। जेहि विलोकि अघओघ नसाहीं॥
मङ्गलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरखिदण्डवतकरिकरि॥
राम शैल वन देखन जाहीं। जहँसुख सकलकतहुँ दुखनाहीं॥
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिविध ताप हर त्रिविध बयारी॥
विटप बेलि तृण अगणित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती॥
सुन्दर शिला सुखद तरु छाहीं। जाय बरणिछवि वन केहि पाहीं॥

श्रीरामचन्द्र जी के वचन सुन सब लोग ऐसे डरे जैसे समुद्र में जहाज़ के डगमगाने से उस पर के सवार लोग डरते हैं। और वसिष्ठ जी की सुमङ्गलों की मूल वाणी सुन लोग बहुत प्रसन्न हुए मानों वायु अनुकूल बहने लगा। वे सब उस पवित्र जल में जिसके देखते ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं—दिन में तीन बार स्नान करते हैं और श्रीरामचन्द्र जी के जी भर के दर्शन करते हैं और उनको प्रणाम कर प्रसन्न होते हैं। लोग राम जी के पर्वत और वन को देखने जाते हैं

जहाँ सब प्रकार के सुख हैं–दुःख का नाम तक नहीं है। झरनों से अमृत के तुल्य जल झर रहा है और तीनों प्रकार के तापों को हरने वाली तीन प्रकार की बयार बह रही है। अनेक प्रकार के पेड़ लता और घासें लगी हैं, जिनकी गणना नहीं हो सकती और जिनमें अनेक प्रकार के फूल और पल्लव लग रहे हैं। सुहावनी शिला और सुखदायिनी वृक्षों की छाया हो रही है। ऐसे सुन्दर वन की शोभा भला कौन वर्णन कर सकता है।

दो०—सरन सरोरुह जल विहँग, कूजत गुञ्जत भृङ्ग।
बैर विगत बिहरत विपिन, मृग विहङ्ग बहु रङ्ग॥

तालाबों में कमल खिल रहे हैं, जलपक्षी कूजते और भौंरे गूंज रहे हैं। वन में अनेक रङ्ग के पक्षी और मृग स्वाभाविक बैर को छोड़ विहार करते हैं।

कोल किरात भिल्ल वनवासी। मधु शुचि सुन्दर स्वादुसुधासी॥
भरि भरि पर्णकुटी रचि रूरी। कन्दमूल फल अँकुर जूरी॥
सबहिं देहिं करि विनय प्रणामा। कहि कहि स्वादु भेद गुण नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥
कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु प्रेम पहिंचानी॥
तुम सुकृती हम नीच निषादा। पावा दर्शन राम प्रसादा॥
हमहिं अगम अति दर्श तुम्हारा। जस मरु धरणि देवसरि धारा॥
राम कृपालु निषाद नेवाजा। परिजन प्रजाचलिय जसराजा॥

वनवासी कोल, किरात और भील, मधुर, पवित्र और अमृत की तरह स्वादिष्ट कन्दमूल फलों को हरे हरे पत्तों के दोनों में भर और उनके स्वाद, भेद गुण और नाम कह कह कर तथा प्रणाम कर नम्रतापूर्वक सब को देते हैं। लोग इन फलों का उन्हें मूल्य देना चाहते हैं, पर वे नहीं लेते और श्रीराम जी की दुहाई दे लौटा देते हैं। तब स्नेहमग्न हो अयोध्यावासी मीठे वचन कहते हैं और उनको प्रेमी समझ वे वनवासी उनकी (अयोध्यावासियों की) बात मान लेते हैं। उत्तर में वनवासी कहते हैं—आप पुण्यात्मा हैं और हम नीच भील हैं। श्री-

रामचन्द्र जी की कृपा से हमें आपके दर्शन मिले हैं। हमको तो आपके दर्शन दुर्लभ थे जैसे मारवाड़ देश में गङ्गा जी की धार के। कृपालु श्रीराम जी ने जब भीलों को तारा, तब आप उनके कुटुम्बी और प्रजा हैं, और यथा राजा तथा प्रजा की लोकोक्तिके अनुसार आपको भी उचित है कि आप लोग भी हम भीलों को तारियें।

दो०—यह जिय जानि सकोच तजि, करिय छोह लखि नेहु।
हमहिं कृतारथ करन लगि, फल तृण अंकुर लेहु॥

ऐसा समझ और सङ्कोच छोड़, और हमारा नेह देख हमारे ऊपर छोह कीजिये और हमको कृतार्थ करने के लिये— फल फूल घास पात ग्रहण कीजिये।

तुम प्रिय पाहुन वन पगु धारे। सेवा योग न भाग हमारे॥
देब कहा हम तुमहिं गुसाँई। ईंधन पात किरात मिताई॥
यह हमारि अति बड़ सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चुराई॥
हम जड़ जीव जीव-गण-घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥
पाप करत निशि वासर जाहीं। नहिं कटि पट नहिं पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धर्म बुद्धि कस काऊ। यह रघुनन्दन दर्श प्रभाऊ॥
जब तें प्रभु-पद-पद्म निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥
वचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिनके भाग सराहन लागे॥

जब आप सरीखे अतिथि इस वन में पधारे हैं, तब हमारे ऐसे भाग्य कहाँ जो आपकी सेवा कर सकें। हम आपको क्या दे सकते हैं। भील किरातों की मित्रता तो ईंधन और पत्तों की होती है। सब से बड़ी सेवा हमारी तो यह है कि हम आपके कपड़े बरतन नहीं चुरा लेते। हम लोग तो जड़ जीव, जीवों के मारने वाले, कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति ठहरे। हम रात दिन पाप किया करते हैं, इसीसे कमर में न तो साबित कपड़ा है और न हमारा पेट ही भरता है। स्वप्न में भी कभी हममें से किसी की धर्म में बुद्धि नहीं होती—परन्तु यह सारा श्रीरघुनाथ जी के दर्शनों का प्रभाव है। जब से हमें भगवान के चरणकमलों के दर्शन हुए, तब से हमारे सब दुस्सह दुःख मिट गये हैं। यह सुन सब नगरवासी प्रसन्न हुए और उनके भाग्यों की सराहना करने लगे।

छं०-लागे सराहन भाग सब अनुराग वचन सुनावहीं।
बोलनि मिलन सिय-राम-चरण-सनेह लखि सुख पावहीं॥
नर नारि निदरहिं नेह निज सुनि कोल भिल्लन की गिरा।
तुलसी कृपा रघुवंशमणि की लोह लै नौका तिरा॥

सब लोग उनके भाग्य की प्रशंसा कर उनसे प्रीतियुक्त वचन कहने लगे। उनकी बोलचाल, मिलनसारी और श्रीराम जी के चरणों में उनकी प्रीति देख-सब लोग सुखी हुए। अयोध्यावासी नर नारी-कोल और भीलों की बोलचाल सुन अपने प्रेम की निन्दा करते हैं—सो यह श्रीराम जी की कृपा का फल है कि नाव लोहे को ले तर गयी।

सो०—बिहरहिं वन चहुँओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल जिमि दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम॥

सब लोग नित्य प्रसन्न हो उस वन में चारों ओर विहार करने लगे, मानो बरसात आरम्भ होने से पहले ही जल से मेंढक और मोर मुटा गये हों।

पुर-नर-नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥
सीय सासु प्रति वेष बनाई। सादर करहिं सरिस सेवकाई॥
लखा न मर्म राम बिनु काहू। माया सब सिय माया माहू॥
सीय सासु सेवावश कीन्ही। तिन्हलहिसुखसियआशिषदीन्ही॥
लखिसियसहितसरलदोउ भाई। कुटिल रानि पछिताति अघाई॥
अब जिय महँ याचति कैकेयी। महि न बीचविधि मीचु न देयी॥
लोकहु वेद विदित कवि कहहीं। राम विमुखथल नरकन लहहीं॥
यह संशय सब के मन माहीं। रामगमन विधि अवधकिनाहीं॥

सारे अयोध्यावासी स्त्री-पुरुष अत्यन्त प्रसन्न हैं। पल मारते दिन बीत जाते हैं। सीता जी कई वेष बना कर, सब सासों की एक सी सेवा आदरपूर्वक करती हैं। इसका भेद श्रीराम जी को छोड़ और किसी ने नहीं जान पाया, क्योंकि यह सारी माया सीता जी की थी और श्रीराम जी उनके स्वामी हैं। सीताजी ने

सेवा कर सासों को अपने वश में कर लिया और उन्होंने प्रसन्न हो सीता जी को आशीर्वाद दिये। सीता सहित दोनों भाइयों को देख, कुटिल कैकेयी बहुत पछताने लगीं। मन ही मन कैकेयी मनाती है कि विधाता पृथिवी फाड़ कर मुझे मौत क्यों नहीं देता। अर्थात् पृथिवी फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ। लोक और वेद तथा कवि कहते हैं कि जो रामविमुख है, उसको नरक में भी जगह नहीं मिलती। अस्तु, अब सब के मन में वही सन्देह है कि राम अयोध्या को लौट कर चलेंगे कि नहीं ?

दो०--निशि न नींद नहिं भूख दिन, भरत विकल सुठि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहिं सलिल संकोच॥

भरत न तो रात में सोते हैं और न दिन में खाते हैं उन्हें बड़ी भारी चिन्ता है। वे उसी प्रकार चिन्ता के कारण छटपटाते हैं जिस प्रकार जल कम होने पर कीच में मछली छटपटाती है।

कीन्ह मातु मिसु काल कुचाली। ईति भीति जस पातक शाली॥
केहि विधि होइ राम अभिषेकू। मोहिं अनुभवत उपाय न एकू॥
अवशि फिरहिं गुरु आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहे बहुरहिं रघुराऊ। रामजननी हठ करबु न काऊ॥
मोहिं अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमय बाम विधाता॥
जो हठ करौं तो निपट कुकर्मू। हरिगिरि तें गुरु सेवकधर्मू॥
एकौ युक्ति न मन ठहरानी। सोचत भरतहिं रैनि सिरानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई। बैठत पठये ऋषय बुलाई॥

माता के मिस काल ने कुचाल चली जैसे जाड़े के पके हुए धानों को ईति (अति वृष्टि अनावृष्टि, कीड़े लगना, चूहों का भय आदि ईति कहलाते हैं) नष्ट करती है। राम जी का अभिषेक किस प्रकार हो—अब मुझे इसका कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता। यद्यपि गुरु की आज्ञा मान श्रीरामचन्द्र जी लौट सकते हैं, तथापि वसिष्ठ जी भी तो बिना उनका रुख पाये उनको ऐसी आज्ञा न देंगे। माता

के कहने से भी श्रीराम जी लौट सकते हैं, परन्तु श्रीराम की जननी, जिनके पुत्र ने, धर्म के लिये राज्य छोड़ दिया—कभी हठ न करेंगी, यदि मैं कुछ कहूँ तो मुझ अनुचर की बात का महत्व ह क्या होगा, तिस पर भी मेरे लिये यह कुसमय है और विधाता वाम है। यदि हठ करता हूँ तो बुराई पैदा होती है, क्योंकि सेवक का धर्म कैलाश से भी अधिक भारी है। रात बीत गयी, किन्तु भरत जी एक भी युक्ति मन में ठीक न कर सके। प्रातःकाल स्नान कर, और श्रीरघुनाथ जी को प्रणाम कर वे बैठे थे कि इतने में उन्हें वसिष्ठ जी ने बुलाया।

दो०—गुरु-पद-कमल प्रणाम करि, बैठे आयसु पाइ।
विप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आय॥

भरत जी गुरु को प्रणाम कर उनकी आज्ञा से बैठ गये। उस समय अयोध्यावासी ब्राह्मण, साहूकार, मन्त्री, आदि सब सभा में आ बैठे।

बोले मुनिवर समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥
धर्मधुरीण भानु-कुल-भानू। राजा राम स्ववश भगवानू॥
सत्यसन्ध पालक श्रुतिसेतू। रामजन्म जग मङ्गल हेतू॥
गुरु पितु मातु वचन अनुसारी। खलदल दलन देव हितकारी॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जानयथारथ॥
विधिहरिहरशशिरविदिशिपाला। माया जीव कर्म कलिकाला॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई। योग सिद्धि निगमागम गाई॥
करि विचार जिय देखहु नीके। राम रजाय शीश सब ही के॥

तब समय के अनुसार वसिष्ठ जी कहने लगे—हे सभासदों! और हे सुजान भरत! सुनो, श्रीरघुनाथजी धर्म की धुरी धारण करने वाले, सूर्यवंश के सूर्य हैं, राजा हैं स्वतन्त्र हैं और छः प्रकार से ऐश्वर्यों से भरे पूरे हैं। सत्य संकल्प हैं, विश्व का भार उतारने और वेद की मर्यादा रखने तथा मङ्गल करने को इनका जन्म हुआ है, गुरु पिता और माता की आज्ञा मानने वाले, उसी पर चलने वाले, खलों को मारने वाले, और देवताओं के ये हितैषी हैं। क्या

नीति क्या प्रीति, और क्या परमार्थ और क्या स्वार्थ—बिना राम के यथार्थतः कोई नहीं जानता। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्रमा, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, कर्म, सब काल, शेष, राजा, योगी, सिद्ध, जहाँ तक वेद शास्त्रों ने कहे हैं—अच्छे प्रकार विचार कर देख लो, सब श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा सीस पर रख मानते हैं।

दो०—राखे राम रजाय रुख, हम सब कर हित होय।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि सम्मत सोय॥

अतः श्रीरामजी की आज्ञा का रुख देख काम करने ही में हमारी सब की भलाई है, सो सब चतुर मिल कर वैसी ही सलाह करो।

सब कहँ सुखद राम अभिषेकू। मङ्गलमूल मोद गुण एकू॥
केहि विधि अवध चलहिं रघुराई। कहहु समुझि सोइ करैं उपाई॥
सब सादर मुनिवर सुनि बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी॥
उतर न आव लोग भे भोरे। तब सिर नाइ भरत करजोरे॥
भानुवंश भे भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥
जन्म हेतु सब कर पितु माता। कर्म शुभाशुभ देइ विधाता॥
दलि दुख सजे सकल कल्याना। अस अशीश राउर जग जाना॥
सो गुसाइँ विधिगति जेइ छेकी। सकै को टारि टेक जो टेकी॥

श्रीराम जी का राज्याभिषेक सब को सुख देने वाला और वह मङ्गल की जड़ है—इसमें यही एक गुण है। सो श्रीरामचन्द्रजो किस प्रकार अयोध्या लौटें—इसका उपाय सोचना चाहिये। सब ने आदरपूर्वक वसिष्ट जी की नीति, परमार्थ और स्वार्थ से युक्त वाणी सुनी, पर उत्तर किसी से भी देते न बना—सब भौंचक से बैठे रहे, तब प्रणाम कर और हाथ जोड़ कर भरत जी बोले—सूर्यवंश में अनेक राजा हो चुके हैं जो एक से एक बढ़ कर थे। सब के माता पिता उन्हें उत्पन्न मात्र कर देते हैं, किन्तु अच्छा भला कर्म विधाता ही देते हैं। अर्थात् उनमें किसी को बड़ा करने की शक्ति नहीं है। जगत

जानता है कि आपका आशीर्वाद दुःखों को दूर कर कल्याणों को देने वाला है। किन्तु हे नाथ ! आपने विधना का विधान भी लौटा दिया—सो आपकी टेक को कौन टाल सकता है ?

दो०—बूझिय मोहिं उपाय अब, सो सब मोर अभाग।
सुनि सनेहमय वचन गुरु, उर उपजा अनुराग ॥

आप (ऐसे शक्तिशाली और विचारवान हो कर) मुझसे उपाय पूँछते हैं—इसे मैं अपना अभाग्य समझता हूँ। भरत जी की इन बातों को सुन वसिष्ठ जी का मन प्रसन्न हुआ और वे कहने लगे।

तात बात फुर राम कृपाहीं। राम विमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥
सकुचौं तात कहत इक बाता। अर्ध तजहिं बुध सर्वस जाता॥
तुम कानन गवनहुँ दोउ भाई। फेरिय लषण सीय रघुराई॥
सुनि शुभ वचन हर्ष दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरण गाता॥
मन प्रसन्न तनु तेज विराजा। जनु जिय राव राम भे राजा॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी।
कहहिं भरत मुनि कहा सोकीजै। फल जग जीवन अभिमत दीजै॥
कानन करौं जन्म भरि बासू। यहि ते अधिक न मोर सुपासू॥

हे बेटा ! तुम्हारा कहना ठीक है अब तक श्रीरामजी की कृपा से ऐसा हो हुआ है, किन्तु श्रीरामजी के विमुख होने से स्वप्न में भी सिद्धि नहीं होती तो भी एक बात कहते संकोच होता है—पर क्या किया जाय, कहनी पड़ती है कि पण्डित जब सर्वस्व जाता देखते हैं तब आधा छोड़ देते हैं। तुम दोनों भाई तो वन को जाओ और सीता सहित राम लक्ष्मण को लौटा दो। यह शुभ वचन सुन दोनों भाई प्रसन्न हुए और मारे हर्ष के फूल कर कुप्पा हो गये। मन में प्रसन्नता के छा जाने से शरीर में एक प्रकार का तेज आ गया, मानों श्रीरामचन्द्रजी ही राजा हो गये और दशरथ जी उठे, लोगों को लाभ अधिक और हानि थोड़ी है, अतः समान सुख दुःख होने के कारण रानियाँ रोने लगीं। भरत जी

ने कहा—वसिष्ठ जी का कहना करने से जगत् में मनोभिलषित फल मिलता है। मैं आजन्म वन ही में रहूँगा—मेरे लिये इससे बढ़ कर सुपास और क्या हो सकता है।

दो०—अन्तर्यामी रामसिय, तुम सर्वज्ञ सुजान।
जो फुर कहहु तो नाथ निज, कीजिय वचन प्रमान॥

हे नाथ! राम और सीता घट घट की जानने वाले हैं और आप सर्वज्ञ एवं सुजान हैं, यदि आप सत्य कहते हैं तो अपने वचनों को प्रमाणित कीजिये अर्थात् राम को अयोध्या लौटा ले जाइये।

भरत वचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भये विदेहू॥
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अवलासी॥
गा चह पार यतन बहु हेरा। पावति नाव न बोहित बेरा॥
और करहि को भरत बड़ाई। सरसरि सीप कि सिन्धु समाई॥
भरत मुनिहिं मन भीतर पाये। सहित समाज राम पहँ आये॥
प्रभु प्रणाम करि दीन्ह सुआसन। बैठे सुनि सब मुनि अनुशासन॥
बोले मुनिवर वचन विचारी। देश काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सर्वज्ञ सुजाना। धर्म-नीति-गुण-ज्ञान-निधाना॥

भरत के वचन सुन और उनका स्नेह देख सभा सहित वसिष्ठ जी को अपने तन की सुध बुध न रही। भरत जी की महा महिमा समुद्र के समान है, उसके तट पर मुनि की बुद्धिरूपी स्त्री चुपचाप खड़ी है। पार जाने के लिये मन में उपाय सोच रही है, किन्तु नाव जहाज़ या बेड़ा कुछ भी नहीं है। भरत की बड़ाई और कौन कर सकता है—क्योंकि तलैया की सीप में समुद्र के बराबर उनकी महिमा कैसे समा सकती है? (वसिष्ठ जी का भरत पर अभी तक ऊपरी दिखावे का वर्ताव था—किन्तु जब उन्होंने भरत को कसौटी पर कस लिया तब) वे उनको मन से अच्छे लगने लगे। फिर वसिष्ठ जी सभा सहित श्रीरामचन्द्रजी के पास गये। श्रीरामचन्द्रजी ने उन्हें प्रणाम कर, आसन दिया।

तब मुनि को आज्ञानुसार सब बैठ गये। तदनन्तर वसिष्ठ जी ने खूब सोच विचार कर और देश, काल, अवसर के अनुसार कहा—हे सर्वज्ञ, सुजान, धर्म-नीति गुण और ज्ञान के निधान श्रीराम! सुनिये।

दो०—सब के उर अन्तर बसहु, जानहु भाव कुभाव।
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो करिय उपाव॥

आप सब के मन में बसते हैं और भाव कुभाव को जानते हैं। अतः जिससे पुरवासी, माता और भरत का हित हो—वही यत्न कीजिये।

आरत कहहिं बिचार न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥
सब कर हित रुख राउर राखे। आयसु किये मुदित फुर भाखे॥
प्रथम जो आयसु मोकहँ होई। माथे मानि करौं सिष सोई॥
पुनि जेहि कहँ जस होब रजाई। सो सब भाँति करिहि सेवकाई॥
कह मुनि राम सत्य तुम भाषा। भरत सनेह बिचार न राखा॥
तेहि तें कहौं बहोरि बहोरी। भरत भक्ति भइ मममति भोरी॥
मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिय सो शुभ शिव साखी॥

वसिष्ठ जी बोले—हमने जो अभी कहा है वह किसी की आज्ञा से नहीं कहा—किन्तु आर्त हो कर कहा है—क्योंकि आर्त लोग विचार कर नहीं कहते। जो ज्वारी होता है उसे अपना ही दाँव सूझता है, इस प्रकार के वसिष्ठ जी के वचन सुन, श्रीरामचन्द्र जी कहने लगे—हे नाथ! सारे उपाय आप ही के हाथ हैं। आपकी अनुमति के अनुसार चलने में सब का हित है और आपकी आज्ञा मानने और ठीक कहने ही से सब प्रसन्न हैं। पहिले तो जो आज्ञा आप मुझे दें सो मैं सीस पर रख कर करूँ। फिर जिसको जो आप आज्ञा दें—वह सब प्रकार से उसका पालन करेगा। फिर वसिष्ठ जी बोले—हे श्रीराम जी! तुमने तो ठीक कहा-पर भरत के स्नेह ने मेरा विचार नहीं रखा। इससे मैं बार बार कहता हूँ कि भरत की भक्ति के वश हो मेरी बुद्धि भोली हो गयी है। अतः मेरी समझ

मैं भरत का मन रख कर, जो किया जाय, सो अच्छा होगा—मैं यह बात महादेव को साक्षी कर के कहता हूँ।

दो०—भरत विनय सादर सुनिय, करिय विचार बहोरि।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोर॥

वसिष्ठ जी श्रीराम जी से कहते हैं—प्रथम तो आप भरत की विनय के आदरपूर्वक सुनिये-फिर उस पर विचार कीजिये। अन्त में राजनीति, वेद और लोकमत के अनुकूल वह कीजिये, जो सन्तों को अच्छी लगे।

गुरु अनुराग भरत पर देखी। रामहृदय आनन्द विशेखी॥
भरतहिं धर्मधुरन्धर जानी। निज सेवक तन मानस बानी॥
बोले गुरु आयसु अनुकूला। वचन मञ्जु मृदु मङ्गलमूला॥
नाथ शपथ पितुचरण दुहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई॥
जे गुरुपद अम्बुज अनुरागी। ते लोकहु वेदहु बड़ भागी॥
राउर जापर अस अनुरागू। को कहि सकै भरत कर भागू॥
लखि लघुबन्धु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥
भरत कहहिं सो किये भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥

भरत पर वसिष्ठ जी का अनुराग देख, श्रीराम जी बहुत प्रसन्न हुए। भरत जी के धर्मधुरन्धर और तन मन वचन से अपना दास जान और गुरु की आज्ञा पा कर श्रीराम जी उज्ज्वल कोमल और मङ्गलमूलक वचन बोले—आपकी शपथ और पिता के चरणों की दुहाई दे कर कहता हूँ कि भरत के समान भाई संसार में कोई नहीं हुआ। जो गुरु के भक्त हैं वे वेद और लोक में बड़े भाग्यवान् माने जाते हैं, किन्तु आपका अर्थात् गुरु का जिन पर इतना अनुराग है, उन भरत के भाग्य का कहना ही क्या है! छोटे भाई भरत की उनके सामने बड़ाई करते सङ्कोच होता है। तथापि भरत जी जो कहेंगे-उसके करने में भलाई है। यह कह श्रीरामचन्द्र जी चुप हो गये।

दो०—तब मुनि बोले भरतसन, सब सकोच तजि तात।
कृपासिन्धु प्रिय बन्धुसन, कहहु हृदय की बात॥

तब वसिष्ठ जी ने भरत जी से कहा कि हे बेटा ! तुम संकोच छोड़ दयानिधान बड़े भाई से अपने मन की बात कह डालो ।

सुनि मुनिवचन राम रुख पाई । गुरुसाहिब अनुकूल अघाई ॥
लखि अपने सिर सब छरु भारू । कहि न सकैं कछु करैं विचारू ॥
पुलक शरीर सभा मे ठाढ़े । नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥
कहब मोर मुनि नाथ निबाहा । यहि ते अधिक कहौं मैं काहा ॥
मैं जानों निज नाथ स्वभाऊ । अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥
मो पर कृपा सनेह विशेखी । खेलत खुनस कबहुँ नहिं देखी ॥
शिशुपन ते परिहरेउ न संगू । कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू ॥
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोहीं । हारेहु खेल जितावहिं मोहीं ॥

गुरु के वचन सुन, श्रीराम का रुख पा और गुरु एवं स्वामी को अपने अनुकूल जान तथा अपने ही सिर सारा बोझ देख, भरत से कहते सुनते न बन पड़ा । वे सोच विचार करने लगे । फिर पुलकित शरीर हो भरी सभा में खड़े हुए और उनके कमल समान नेत्रों में जल भर गया । वे बोले—"मुझे जो कहना था वह तो गुरु जी और आप कह चुके—इससे अधिक मैं क्या कहूँ । मैं अपने स्वामी का स्वभाव जानता हूँ कि वे अपराधी पर भी क्रोध नहीं करते । तिस पर मुझ पर तो आपकी विशेष कृपा है, क्योंकि आपने तो खेल में भी मेरे साथ कभी खुनस नहीं की । बालकपन से मेरा साथ दिया और कभी मेरा मन नहीं तोड़ा । मैं अपने ऊपर प्रभु की कृपा को भलीभाँति पहचानता हूँ—क्योंकि हारे हुए खेल में भी मुझे ही जिताया ।

दो०—महूँ सनेह सकोच वश, सन्मुख कहेउँ न बैन ।
दर्शन तृप्ति न आजु लगि, प्रेम पियासे नैन ॥

मैंने भी प्रेम और सङ्कोच वस कभी आपका सामना नहीं किया अर्थात् किसी बात पर उत्तर प्रत्युत्तर नहीं किया । और ये प्रेम के प्यासे नेत्र आज तक दर्शन करते नहीं अघाते ।

विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा । नीच बीच जननी मिसु पारा ॥
यहौ कहत मोहिं आजु न शोभा । आपनिसमुझिसाधुशुचि कोभा ॥
मातु मन्द मैं साधु सुचाली । उर अस आनत कोटि कुचाली ॥
फरै कि कोदव बालि सुशाली । मुक्ताप्रसव कि शंबुकताली ॥
सपनेहुँ दोष कलेश न काहू । मोर अभाग्य उदधि अवगाहू ॥
बिनु समुझे निज अघ परिपाकू । जारेउँ जाइ जननि कह काकू ॥
हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा । एकहि भाँति भलहि भल मोरा ॥
गुरु गुसाइं साहिब सिय रामू । लागत मोहिं नीक परिणामू ॥

पर विधाता को मेरे ऊपर आपका दुलार अच्छा न लगा। माता के बहाने से उस नीच ने उसमें अन्तर डाल दिया। यह कहना भी आज मुझे शोभा नहीं देता कि मैं माता को दोषी और अपने के। निर्दोष बतलाता हूं। सो अपनी समझ से कौन पवित्र साधु हुआ है ? मेरी माता मन्द बुद्धि वाली और मैं साधु और अच्छे चाल चलन का हूँ यह विचारना भी असंख्य कुचालों के समान है। क्योंकि कहीं कोदों में धान की बाल लगती है अथवा तलैया की सीप में कहीं मोती उत्पन्न हो सकते हैं ? अतः स्वप्न में भी किसी का दोष और क्लेश नहीं, मेरा ही कुभाग्य अथाह समुद्र है। सो मैंने पाप का फल समझे बिना ही वृथा ही माता को भला बुरा कह कह कर जलाया। मैं तो मन में विचार कर सब प्रकार से हिम्मत हारे हुए हूँ अब एक ही प्रकार से भले ही मेरा भला है। आप ते। गुरु महाराज हैं और मेरे प्रभु सीताराम हैं, इसी से मुझे परिणाम अच्छा दीख पड़ता है।

दो०—साधु-सभा प्रभु गुरु निकट, कहौं सुथल सति भाव।
प्रेम प्रपञ्च कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराव ॥

साधुओं की सभा में प्रभु और गुरु के समीप और पवित्र भूमि पर मैं सचमुच कहता हूँ या झूठमूठ कपट करता हूं, इसके साक्षी अन्तर्यामी होने के कारण गुरु जी और श्रीरघुनाथ जी ही हैं।

भूपति मरण प्रेम प्रण राखो। जननी कुमति जगत सब साखो ॥
देखि न जाहिं विकल महतारी। जरहिं दुसह ज्वर पुर नरनारी ॥
महीं सकल अनरथकर मूला। सो सुनिसमुझिसहैां सब शूला ॥
सुनि वन गमन कीन्ह रघुनाथा। करिमुनि वेष लषणसियसाथा ॥
बिनु पनही अरु प्यादेहि पाये। शंकर साखि रह्यों इहि धाये ॥
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिश कठिन उर भयउ न बेहू ॥
अब सब आँखिन देखेउँ आई। जियत जीव जड़ सबै सहाई ॥
जिनहिं निरखिमगुसाँपिनि बीछी। तजहिं विषम विष तामस तीछी॥

राजा मरे परन्तु उन्होंने प्रेम का प्रण रखा इस बात को और मेरी जननी की करतूत को सारा जगत जानता है। किन्तु माताओं की विकलता और नगर-निवासिओं के जी की जलन देखी नहीं जाती। मैं ही इस सारे बखेड़े की जड़ हूँ। इसीसे सब दुःख मैं सहता हूँ। मुनि का वेष धारण कर श्रीराम जी सीता लक्ष्मण सहित पैर में जूते पहने बिना पैदल ही वन को गये, मैंने जब यह सुना तभी मैं इधर को दौड़ा। शिव जी इसके साक्षी हैं। फिर निषाद का प्रेम देख कर भी वज्र से बढ़ कर कठोर मेरा हृदय न भिदा। अब आ कर मैंने सब अपनी आँखों से देख लिया और जीते जी ही इस जड़ जीव ने सब सहा दिया। जिनको देख रास्ते के साँप और बिच्छू भी कठिन और तीव्र विष को छोड़ देते हैं।

दो०—तेइ रघुनन्द लषण सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावै काहि ॥

वे ही श्रीराम और लक्ष्मण तथा जानकी जिस कैकेयी को बुरे लगे उसके पुत्र को छोड़ दैव कठिन दुःख किसको दें।

सुनि अति विकल भरत वरबानी। आरति प्रीति विनय नय सानी ॥
शोक मगन सब सभा खँभारू। मनहुँ कमल वन पर्यो तुषारू ॥
कहि अनेक विधि कथा पुरानी। भरत प्रबोध कीन्ह मुनि ज्ञानी ॥
बोले उचित वचन रघुनन्दू। दिनकर-कुल-कैरव-वनचन्दू ॥

तात हृदय जिन करहु गलानी। ईश अधीन जीव गति जानो॥
तीन काल त्रिभुवन मत मोरे। पुण्यश्लोक तात तर तोरे॥
उर आनत तुम पर कुटिलाई। जाय लोक परलोक नसाई॥
दोष देहिं जननिहिं जड़ तेई। जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई॥

दुःख, प्रेम, नम्रता और नीतियुक्त अत्यन्त व्याकुल भरत जी के वचन सुन, सब सभा विकल हुई मानों कमलों के वन पर पाला पड़ गया। तब वसिष्ठ जी ने अनेक प्राचीन कथाएँ कह कर भरत जी को समझाया, तब श्रीरामचन्द्र जी ने भी समयोचित वचन कहते हुए कहा, हे भैया! तुम वृथा अपने मन को उदास मत करो, जीवमात्र की गति ईश्वराधीन है। मेरी समझ में तो हे तात! तीनों कालों, तीनों लोकों में जो बड़े बड़े पुण्यात्मा जन हैं, वे सब तुम्हारे नीचे हैं। तुमको मन में भी जो कुटिल जानेगा उसका यह लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जांयगे फिर कैकेयी को वे ही लोग दोष देंगे जिन्होंने गुरु और साधुओं की सभा नहीं सेयी है।

दो०—मिटहिं पाप परपञ्च सब, अखिल अमङ्गल भार।
लोक सुयश परलोक सुख, सुमिरत नाम तुम्हार॥

तुम्हारे नाम को स्मरण करने से सारे पाप, संसार की माया, और सब अमङ्गलों के बोझ मिटेंगे और लोक में उसे सुन्दर कीर्ति और परलोक में सुख मिलेगा।

कहौं स्वभाव सत्य शिव साखी। भरत भूमि रह राउर राखी॥
तात कुतर्क करहु जनि जाये। वैर प्रेम नहिं दुरे दुराये॥
मुनिगण निकटविहँग मृग जाहीं। बाधक बधिक विलोकिपराहीं॥
हित अनहित पशु पक्षिहु जाना। मानुष तनु गुण ज्ञान निधाना॥
तात तुमहिं मैं जानौं नीके। करौं कहा असमञ्जस जी के॥
राखेउ राव सत्य मोहिं त्यागी। तनु परिहरेहु प्रेम प्रण लागी॥
तासु वचन मेंटत बड़ सोचू। तेहि तें अधिकतुम्हार सकोचू॥
तापर गुरु मोहिं आयसु दीन्हा। अवसि जोकहहुचहौंसोकीन्हा॥

महादेव को साक्षी कर सत्य कहता हूँ कि हे भरत! यह पृथिवी तुम्हारे ही रखने से रहेगी। हे तात! तुम वृथा अपने मन में कुतर्क मत करो, क्योंकि वैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपते। पशु पक्षी मुनियों के पास निःशङ्क हो चले जाते हैं, किन्तु बहेलिया को देखते ही भागते हैं। क्योंकि अपनी भलाई बुराई पशु पक्षी तक जानते हैं, फिर मनुष्य का तो कहना ही क्या है, वह तो गुण और ज्ञान का भाण्डार है। हे तात! मैं तुम्हें भली भाँति जानता हूँ, परन्तु करूँ क्या, मेरे जी में बड़ी दुविधा हो रही है, महाराज ने मुझे त्याग कर, सत्य की रक्षा की और प्रेम के प्रण को रखने के लिये शरीर को भी त्याग दिया। अतः उनकी बात टालने में जो सकुचाता है और उससे भी बढ़ कर तुम्हारा सङ्कोच है। तिस पर गुरु जी का मुझे आदेश, अतः जो कुछ कहो मैं वही अवश्य करना चाहता हूं।

दो०—मन प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौं सो आज।
सत्यसिन्धु रघुबरबचन, सुनि भा सुखी समाज॥

मन प्रसन्न कर और सङ्कोच त्याग, जो कहो वही मैं आज करूँ, सत्यसिन्धु श्रीराम जी के ऐसे वचन सुन, सब लोग ख़ुशी हुए।

सुरगण सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू॥
करत विचार बनत कछु नाहीं। राम शरण सबगे मन माहीं॥
बहुरि विचार परस्पर कहहीं। रघुबर भक्त-भक्ति वश अहहीं॥
सुधि करि अम्बरीष दुर्वासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा॥
सहे सुरन बहुकाल विषादा। नर हरि किये प्रकट प्रहलादा॥
लगि लगिकान कहहिंधुनि माथा। अब सुरकाज भरत के हाथा॥
आन उपाय न देखिय देवा। मानत राम सुसेवक सेवा॥
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं। निजगुण शील रामवशकरतहिं॥

देवताओं सहित इन्द्र भयभीत हो चिन्ता में पड़े कि अब बना बनाया काम मिट्टी होना चाहता है। किन्तु बहुत सोचने विचारने पर भी जब कुछ न बन पड़ा, तब मन ही मन वे सब श्रीराम जी की शरण गये। फिर आपस में

विचार कर कहने लगे कि श्रीरामचन्द्र जी तो भक्तों की भक्ति के अधीन हैं। फिर अम्बरीष और दुर्वासा का स्मरण कर देवता और इन्द्र बिल्कुल हताश हो गये। फिर वे सोचने लगे कि जब देवता बहुत दिनों तक क्लेश सह चुके, तब प्रह्लाद ने नृसिंह जी को प्रकट किया था। देवता कानाफूँसी कर और सिरों को धुन धुन कर कहते हैं कि अब तो हमारा काम भरत जी के हाथ में है। देवताओं को अन्य उपाय नहीं दिखाई दिया, उन्होने बिचारा कि श्रीरामचन्द्र जी अच्छे भक्त की सेवा को मानते हैं, अतः सब अपने अपने मनों में प्रीतिपूर्वक भरत का स्मरण करो, जिसने अपने गुणों और शील से श्रीराम जी को अपने वश में कर लिया है।

दो०—सुनि सुर मत सुरगुरु कहेउ, भल तुम्हार बड़ भाग।
सकल सुमङ्गलमूल जग, भरतचरण अनुराग॥

देवताओं का निर्णय सुन बृहस्पति जी कहने लगे, तुम बड़े भाग्यवान हो, जो संसार में सब सुन्दर आनन्दों की जड़ भरत जी के चरणों में तुम अनुरक्त हो।

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु शत सरिस सुहाई॥
भरत भक्ति तुम्हरे मन आई। तजहु सोच विधि बात बनाई॥
देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज स्वभाव विवश रघुराऊ॥
मन थिर करहु देव डर नाहीं। भरतहि जानि राम परिछाहीं॥
सुनि सुरगुरु सुर सम्मत सोचू। अन्तर्यामी प्रभुहि सकोचू॥
निज सिर भार भरत जिय जानी। करत कोटि विधि उर अनुमानी॥
करि विचार मन दीन्हेउ टीका। राम रजायसु आपन नीका॥
निज प्रण तजि राखेउ प्रण मोरा। छोह सनेह कीन्ह नहिं थोरा॥

श्रीरामभक्त की सेवा सौ कामधेनुओं की सेवा के समान सुन्दर है। अतः जब तुम्हारे मन में भरत जी की भक्ति उदय हुई, तब तुम अब चिन्ता को छोड़ दो, क्योंकि ब्रह्मा ने तुम्हारा काम बना दिया। हे देवताओं! तुम भरत के

प्रभाव को तो देखो, जिनके सहज स्वभाव के वश श्रीराम जी स्वयं हो रहे हैं। हे देवताओ ! मन को स्थिर करो, अब डर को कोई बात नहीं हैं, भरत जी को तुम श्रीराम जी का प्रतिबिम्ब समझो। देवता और बृहस्पति की सम्मति तथा उनकी चिन्ता की बात सुन, अन्तर्यामी भगवान् को सङ्कोच हुआ। भरत जी मन में अपने ही सिर सारा भार जान, मन ही मन असंख्य प्रकार के अनुमान करने लगे। अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया कि श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा ही में अपना भला है, क्योंकि उन्होंने, अपनी प्रतिज्ञा छोड़ मेरा प्रण रखा, सो उनका स्नेह और प्रेम मेरे ऊपर कम नहीं है।

दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब विधि सीतानाथ।
करि प्रणाम बोले भरत, जोरि जलज युग हाथ॥

सीतानाथ ने सब प्रकार से बड़ी भारी कृपा की है, यह कह और कमल समान हाथ जोड़, भरत जी प्रणाम कर बोले।

कहउँ कहावउँ अब का स्वामी। कृपाअम्बुनिधि अन्तर्यामी॥
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलित शूला॥
अपडर डरेउँ न सोच समूले। रविहि न दोष देव दिशि भूले॥
मोर अभाग्य मातु कुटिलाई। विधि गति विषम काल कठिनाई॥
पाँव रोपि सब मिलि मोहिं घाला। प्रणतपाल प्रण आपन पाला॥
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहु वेद विदित नहिं गोई॥
जग अनभल भल एक गोसाँई। कहिय होइ भल कासु भलाई॥
देव देवतरु सरिस स्वभाऊ। सन्मुख विमुख न काहुहि काहू॥

हे स्वामी ! मैं अब क्या कहूँ और क्या कहलाऊँ, आप तो स्वयं अन्तर्यामी और कृपा के सागर हैं। जब गुरु प्रसन्न और स्वामी अनुकूल हैं, तब मेरे मैले मन के कल्पित सारे दुःख दूर हो गये। मैं अपडर से वृथा ही डरा हुआ था, मेरी उस चिन्ता की जड़ कुछ भी नहीं थी। दिशाभ्रम होने पर सूर्य को दोष न देना चाहिये। मेरा दुर्भाग्य माता की कुटिलता, प्रारब्ध की कुचाल, और समय की

कठिनाई, इन सब ने पैर रोप कर मेरा बध करना चाहा था, पर भक्त प्रतिपालक आपने, अपना प्रण रख, मुझे बचा लिया। अतः यह आपकी कोई नई रीति नहीं है, वेद और लोक में प्रसिद्ध होने के कारण छिपी नहीं है। हे नाथ! यह संसार तो बुरा है ही, केवल आप भले हैं। इसलिये बतलाइये भलाई हो भी तो कैसे? हे देव! आपका स्वभाव तो कल्पवृक्ष जैसा है, जो सामने होने पर कभी किसी के विरुद्ध नहीं होता।

दो०—जाय निकट पहिंचानि तरु, छाँह शमन सब सोच।
माँगत अभिमत पाव जग, राव रङ्क भल पोच॥

यदि कल्पवृक्ष को पहचान कर, कोई उसके पास जावे, तो उसकी छाया सारी चिन्ताओं को नष्ट कर देती है, और माँगने से राजा, रंक, भले, बुरे जो माँगते हैं, वही पाते हैं।

लखि सब विधिगुरस्वामिसनेहू। मिटेहु छोभ नहि मन संदेहू॥
अब करुणाकर कीजिय सोई। जन हित प्रभु चित छोभ न होई॥
जो सेवक साहिब संकोची। निज हित चहै तासु मति पोची॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ विहाई॥
स्वारथ नाथ फिरे सबही का। किये रजाइ कोटि विधि नीका॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकलसुकृतफलसुगति शृंगारू॥
देव एक विनती सुनि मेरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाज साजि सब आना। करिय सुफल प्रभु जो मन माना॥

सब प्रकार से गुरु और स्वामी का अपने ऊपर स्नेह देख, क्षोभ भी मिट गया और मन का सन्देह भी दूर हो गया। हे करुणाकर! अब वही कीजिये जिससे मुझ भक्तजन का भला हो और स्वामी के चित्त में दुःख न हो। क्योंकि जो दास अपने मालिक को लज्जित कर अपना भला चाहता है, वह नीच है। दास की भलाई तो इसीमें है कि सब प्रकार के सुखों और लालचों को छोड़, स्वामी की सेवा करे। हे नाथ! सब की स्वार्थसिद्धि तो आपके अयोध्या लौट

चलने में है तथा आपकी आज्ञापालन में असंख्य प्रकार की भलाई है। बस यही स्वार्थ और परमार्थ का सार है और सब पुण्यों का फल और सुन्दर सुगति का भूषण है। हे देव! मेरी एक विनय सुन लीजिये, फिर यदि उसे आप उचित समझें तो कीजियेगा, हे नाथ! मैं तिलक की सारी सामग्री सजा कर अपने साथ लाया हूँ, सो यदि आपके मन में आ जाय तो उसे सफल कीजिये।

दो०—सानुज पठइय मोहिं वन, कीजिय सबहिं सनाथ।
नातरु फेरिय बन्धु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ॥

हे नाथ! शत्रुघ्न सहित मुझे तो वन को जाने दीजिये और आप अयोध्या में जा कर सब को सनाथ कीजिये, यदि यह ठीक न जचे, तो लक्ष्मण और शत्रुघ्न को तो अयोध्या भेज दीजिये और मुझे अपने साथ लीजिये।

नतरु जाहिं वन तीनिउँ भाई। बहुरिय सीयसहित रघुराई॥
जेहिं विधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुणासागर कीजिय सोई॥
देव दीन्ह सब मो पर भारू। मोरे नीति न धर्म विचारू॥
कहौं वचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥
उतर देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवक लखि लाज लजाई॥
अस मैं अवगुण उदधि अगाधू। स्वामि सनेह सराहत साधू॥
अब कृपालु मोहिं सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाइ न पावा॥
प्रभुपद शपथ कहौं सति भाऊ। जग मङ्गल हित एक उपाऊ॥

हे श्रीरामजी! नहीं तो हम तीनों को वन में भेज कर आप जानकी सहित लौट जाइये। हे करुणासागर! इन बातों में से जो आपको ठीक लगे वही कीजिये। हे देव! आपने तो सारा बोझ मेरे ऊपर रख दिया है और मुझे न तो नीति आती है और न मुझको धर्म का विचार है। मैं जो कुछ कहता हूँ सो अपने स्वार्थ के लिये कहता हूँ: क्योंकि दुखी जन के मन मे विचार नहीं रहता। जो सेवक स्वामी की आज्ञा को सुन, उत्तर देता है उसे देख लज्जा भी लज्जित होती है। हा! मैं ऐसे ही अवगुणों का अथाह समुद्र हूँ, किन्तु स्वामी मेरे प्रेम एवं

साधुपने को सराहते हैं। हे दयालु! मुझे तो वही मत अच्छा लगता है, जिससे स्वामी के मन में संकोच उत्पन्न न हो, मुझे स्वामी के चरणों की शपथ है, मैं सत्य सत्य कहता हूँ कि जगत के मङ्गल का यह एक ही उपाय है।

दो०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि धरि करहिं सब, मिटिहि अनट अवरेव॥

प्रभु प्रसन्न हो और सङ्कोच छोड़ जो जिसको आज्ञा देंगे, वह उसे सीस पर चढ़ा करेगा, और इससे न सुलझने वाली उलझनें सुलझ जायँगी।

भरतवचन शुचि सुर हिय हर्षे। साधु सराहि सुमत सुर वर्षे॥
असमञ्जस वश अवधनिवासी। प्रमुदित मन तापस वनवासी॥
चुप रहिगे रघुनाथ सकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची॥
जनक-दूत तेहिं अवसर आवा। मुनि वसिष्ठ सुनि वेगि बुलावा॥
करि प्रणाम तिन राम निहारे। वेष देखि भे निपट दुखारे॥
दूतहिं मुनिवर पूछी बाता। कहहु विदेह भूप कुशलाता॥
सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरवर जोरे हाथा॥
बूझत राउर सादर साईं। कुशल हेतु सो भयउ गुसाईं॥

कपट शून्य भरतजी के वचन सुन देवता प्रसन्न हुए, तथा उनकी प्रशंसा कर उन्होंने फूलों की वर्षा की। अयोध्यावासी तो दुविधा में पड़े, किन्तु वनवासी बहुत प्रसन्न हुए। श्रीराम जी सङ्कोच वश चुप रह गये। तब तो सारी सभा विचारने लगी। इतने में जनक जी के दूत पहुँचे। सुनते ही वसिष्ठ जी ने उन्हें तुरन्त बुलाया। दूतों ने प्रणाम कर श्रीराम जी को देखा, वेष को देख वे बहुत दुखी हुए। वसिष्ठ जी ने उनसे जनक महाराज को कुशल क्षेम पूँछी। इस प्रश्न का उत्तर देते समय वे दूत सकुचाने और हाथ जोड़ भूमि पर माथा नवा कहने लगे, हे नाथ! आपका आदरपूर्वक कुशल पूँछना ही हमारे स्वामी के कुशलपूर्वक होने का कारण है।

दो०—नाहिंत कोशलनाथ के, साथ कुशल गइ नाथ।
मिथिला अवध विशेष तें, जग सब भयउ अनाथ॥

नहीं तो हे नाथ ! कुशल तो महाराज दशरथ के साथ गयी, क्योंकि उनके परलोकगत होने से सारा जगत ही अनाथ हो गया। जनकपुर और अयोध्या तो विशेषत: अनाथ हो गयीं।

कोशलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोग शोकवश बौरा॥
जेहि देखा तेहि समय विदेहू। नाम सत्य अस लागु न केहू॥
रानि कुचालि सुनत महिपालै। सूझ न कछु जस मणि बिनु व्यालै॥
भरत राज रघुवर वनवासू। भा मिथिलेशहिं हृदय हरासू॥
नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु विचारि उचित का आजू॥
समुझि अवध असमञ्जस दोऊ। चलियकि रहियन कहकछुकोऊ॥
नृपति धीर धरि हृदय विचारी। पठये अवध चतुर चर चारी॥
बूझि भरत गति भाउ कुभाऊ। आयहु वेगि न होइ लखाऊ॥

महाराज दशरथ की मृत्यु के संवाद को सुन, महाराज जनक के राज्य के लोग, शोकाकुल हो उन्मत्त जैसे हो रहे हैं। महाराज जनक तो सचमुच विदेह (अर्थात् देह रहित से) हो गये हैं अर्थात् दशरथ की मृत्यु को सुन जनक को अपने शरीर की सुध बुध नहीं रही। जैसे बिना मणि के सर्प को कुछ नहीं सूझता, वैसे ही कैकेयी की कुचाल को सुनते ही राजा को कुछ भी नहीं सूझता। भरत को राज्य की प्राप्ति और श्रीराम जी को वनवास का दिया जाना सुन जनक जी का मन बहुत हिराँसा हुआ। तब राजा ने पण्डितों और मंत्रियों से पूँछा कि विचार कर बतलाओ, अब क्या करना ठीक है? यह सुन किसी ने तो अयोध्या जाने की सम्मति दी, किसी ने अयोध्या न जाने की। अयोध्या जाने न जाने की दुविधा में सब पड़ गये, जाने या न जाने का ठीक निश्चय कोई भी न कर सका। तब महाराज ने स्वयं धीरज धर, और स्वयं विचार कर अयोध्या को चार चतुर दूत भेजे और उनसे समझा कर कहा कि भरतजी के मन का अच्छा अथवा बुरा भाव जान कर, तुम लोग शीघ्र लौट आना। किन्तु सावधान, यह भेद कोई जाने न पावे।

दो०—गये अवध चर भरत गति, बूझि देखि करतूति ।
चले चित्रकूटहिं भरत, चार चले तिरहूति ॥

दूत अयोध्या में पहुँच कर भरत के मन का भाव जान गये। जब भरत चित्रकूट की ओर चले तब दूत तिरहुति को गये।

दूतन आइ भरत की करणी। जनक-समाज यथामति वरणी ॥
सुनिगुरु पुरजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह विकल मति ॥
धरि धीरज करि भरत बड़ाई। लिये सुभट साहनी बुलाई ॥
घर पुर देश राखि रखवारे। हय गज रथ बहु यान सँवारे ॥
दुघड़ी साधि चले ततकाला। किय विश्राम न मगु महिपाला ॥
भोरहु आजु नहाइ प्रयागा। चले यमुन उतरन सब लागा ॥
खबरि लेन हम पठये नाथा। तिनकहि अस महि नायहु माथा॥
साथ किरात छ सातक दीन्हे। मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हे ॥

उन दूतों ने सभा में जा भरत की करतूत को यथामति वर्णन किया। उसे सुन, गुरु, पुरवासी, मंत्री, और राजा सोच और स्नेह के वश हो विकल हुए। फिर धैर्य धारण कर, और भरत की प्रशंसा कर, शूरसामन्त बुलाये। उनको घर और देश की रक्षा का भार सौंप, हाथी, घोड़े आदि सवारियों को तैयार करवाया। फिर दुघड़िया मुहूर्त्त साध कर महाराज तुरन्त चल दिये और रास्ते में विश्राम के लिये भी न ठहरे। आज सवेरे ही प्रयाग मे स्नान कर, उन्होंने यमुना पार की है और हमें सुध लेने के लिये भेजा है। इतना कह चुकने पर दूतों ने फिर प्रणाम किया। उनके साथ छः सात किरात कर वसिष्ठजी ने उन दूतों को बिदा किया।

दो०—सुनत जनक आगमन सब, हर्षेउ अवध समाज।
रघुनन्दनहिं सकोच बड़, सोच विवश सुरराज ॥

महाराज जनक का आगमन सुन अयोध्यावासी नरनारी सब प्रसन्न हुए, किन्तु श्रीरघुनाथ जी को बड़ा सङ्कोच हुआ, और इन्द्र बहुत चिन्तित हुए।

गरै गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहै केहि दूषण देई॥
अस मन आनि मुदित नर नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी॥
यहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लगे सब कोऊ॥
करि मज्जन पूजहिं नर नारी। गणपति गौरि पुरारि तमारी॥
रमा-रमण-पद बन्दि बहोरी। विनवहिं अञ्जलि अञ्चल जोरी॥
राजा राम जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी॥
सुबस बसै फिरि सहित समाजा। भरतहिं राम करहिं युवराजा॥
यहि सुख सुधा सींचि सब काहू। देव देहु जगजीवन लाहू॥

कैकेयी मारे ग्लानि के गलने लगी, वह कहै तो कहै क्या और दोष दे तो किसे? यह विचार सब नरनारी प्रसन्न हुए कि अब दो चार दिन हम सब यहाँ और भी रह सकेंगे। इसी प्रकार वह भी दिन बीता, सबेरे सब लोगों ने स्नान किये। स्त्री पुरुषों ने स्नानोपरान्त गणेश, पार्वती, शिव और सूर्य का पूजन किया। फिर वे भगवान् के चरणों में मत्था टेक और हाथ जोड़ कर, विनती करने लगे कि भगवान् की कृपा से श्रीरामचन्द्र जी तो राजा हों और जानकी जी रानी हों। और आनन्द की सीमा अयोध्या राजधानी हो। अयोध्या फिर अच्छी तरह बसै, भरत को श्रीराम जी युवराज बनावें। हे देव! इस सुखरूपी अमृत से सब को सींच कर, इस संसार में हमारा जन्म सफल करो।

दो०—गुरु समाज भाइन सहित, राम राज पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिय मागु सब कोउ॥

गुरुओं तथा भाइयों सहित श्रीरघुनाथ जी अयोध्यापुरी के राजा हों, और श्रीराम जी के सामने अयोध्या में हमारी मृत्यु हो, यही सब माँगने लगे।

सुनि सनेहमय पुरजनबानी। निन्दहिं योग विरति मुनि ज्ञानी॥
यहि विधि नित्यकर्म करि पुरजन। रामहिं करहि प्रणाम पुलकि तन॥
ऊँच नीच मध्यम नर नारी। लहैं दर्श निज निज अनुहारी॥
सावधान सब ही सन्मानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं॥

लरिकाईं ते रघुवर बानी। पालत प्रीति रीति पहिंचानी॥
शील सकोच सिन्धु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥
कहत राम गुण गण अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे॥
हम सम पुण्य पुञ्ज जग थोरे। जिनहिं राम जानत करि मोरे॥

पुरवासियों के इन स्नेहपूरित वचनों को सुन ज्ञानी मुनिगण, योग एवं वैराग्य की निन्दा करने लगे। इसी प्रकार पुरवासी नित्य कर्म कर और प्रसन्न हो श्रीराम जो को प्रणाम करते हैं। ऊँच, नीच, मध्यम नर और नारी अपने अपने पद के मर्यादानुसार भगवान् का दर्शन पाते हैं, सावधानतापूर्वक श्रीराम सब का सन्मान करते हैं और सब लोग कृपानिधान श्रीराम जी की प्रशंसा करते हैं। श्रीराम जी की यह बात बाल्यावस्था ही से है कि वे प्रीति की रीति पहचान कर उसका तदनुरूप पालन करते हैं। श्रीरामचन्द्र जी शील और सङ्कोच के समुद्र हैं और उनका सुन्दर मुख, सुन्दर नेत्र और सरल स्वभाव है। श्रीराम जी के गुणानुवाद गाते हुए सब लोग अपने अपने भाग्यों को सराहने लगे कि हम सरीखे इस जगत् में थोड़े ही पुण्यात्मा हैं, जिन्हें श्रीराम जी ने अपना कर के मान रखा है।

दो०—प्रेम मगन तेहिं समय सब, सुनि आवत मिथिलेश।
सहित सभा संभ्रम उठे, रवि-कुल-कमल-दिनेश॥

इतने में मिथिलेश की अवाई सुन सब प्रेम में मग्न हो गये और श्रीरामचन्द्र जी सभा समेत अभ्युत्थान देने को उठ खड़े हुए।

भाइ सचिव गुरु पुरजन साथा। आगे गमन कीन्ह रघुनाथा॥
गिरिवर दीख जनक नृप जबहीं। करि प्रणाम त्यागेउ रथ तबहीं॥
राम दरश लालसा उछाहू। पथश्रम लेश कलेश न काहू॥
मन तहँ जहँ रघुवर वैदेही। बिनु मन तन दुखसुखसुधिकेही॥
आवत जनक चले यहि भाँती। सहित समाज प्रेम मदमाती॥
आये निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परस्पर लागे॥

लगे जनक मुनिगण पद बन्दन। ऋषिन प्रणाम कीन्ह रघुनन्दन॥
भाइन सहित राम मिलि राजहिं। चले लिवाइ समेत समाजहिं॥

श्रीरामचन्द्र जी, भाई, मंत्री, गुरु और पुरवासियों को साथ ले सब के आगे स्वयं हो लिये। जब जनक जी ने चित्रकूट देखा, तब ही उसको प्रणाम कर वे रथ से उतर पड़े। श्रीराम जी के दर्शनों की लालसा और उछाह से किसी को रास्ते की थकावट और कष्ट न हुआ। मन तो वहीं था जहाँ श्रीराम जानकी थीं, फिर बिना मन के शरीर के सुख दुःखों की सुध लेता कौन? इस प्रकार जनक जी प्रेम के मद में समाज सहित चले आ रहे हैं। जब समीप पहुँचे तब प्रेमपूर्वक आपस में वे सब मिलने भेंटने लगे। जनक जी ने मुनियों को प्रणाम किया और श्रीरघुनाथ जी ने ऋषियों को। भाइयों सहित श्रीरामचन्द्र जी जनक जी से मिले और उन्हें उनके समाज सहित लिवा ले चले।

दो०—आश्रम सागर शान्त रस, पूरण पावन पाथ।
सैन मनहुँ करुणा सरित, लिये जात रघुनाथ॥

शान्त रस के पुनीत जल से पूर्ण श्रीराम जी का आश्रम है, उसमें जनक की सैन्यरूपी करुणा नदी को मिलने के लिये श्रीरामचन्द्र जी लिवाये लिये जाते हैं।

बोरति ज्ञान बिराग करारे। बचन सशोक मिलत नदिनारे॥
सोच उसाँस समीर तरङ्गा। धीरज तट तरुवर कर भङ्गा॥
विषम विषाद तुरावति धारा। भय भ्रम भँवरावर्त अपारा॥
केवट बुध विद्या बड़ि नावा। सकहि न खेइ एक नहिं आवा॥
बनचर कोल किरात बिचारे। थके विलोकि पथिक हिय हारे॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अम्बुधि अकुलाई॥
शोक विकल दोउ राजसमाजा। रहा न ज्ञान न धीरज लाजा॥
भूप रूप गुण शील सराहीं। सोचहिं शोक-सिन्धु अवगाहीं॥

यह करुणारूपी नदी ज्ञान और वैराग्य के दो किनारों को डुबोती और मिथिलावासी तथा अवधनिवासियों के शोक भरे वचनरूपी नदनारो के मिलने से

बढ़ती चली जाती है। चिन्ता से उसाँसों का लेना हो वायु के झोके हैं, अतः उस नदी के तटवर्ती जो धैर्यरूपी श्रेष्ठ वृक्ष हैं, उनको वे तोड़े डालते हैं। दशरथ के मरने, श्रीराम जी के वन जाने और भरत के द्वारा राज्य स्वीकृत न किये जाने के कारण उत्पन्न विषाद ही मानों नदी की तीव्र धार है। इसमें पड़ नाव टूट जाती है। श्रीराम जी के लौटने न लौटने के समय जो भय और भ्रम है वह अपार भ्रम का आवर्त है। वसिष्ठादि मुनि इस नदी के केवट हैं, उनकी विशालविद्या नाव है, परन्तु इस नाव को खेना एक को भी नहीं आता। बेचारे वनचर कोल किरात रूपी पथिक देख कर थक गये और मन में हार गये। जब यह नदी आश्रमरूपी सागर में जा मिली तब मानों समुद्र अकुलाया था। (अर्थात् वह शान्तरस पूर्ण आश्रम करुणा से पूर्ण हो गया) दोनों ओर वाले विकल हुए, उस समय ज्ञान, धैर्य और लज्जा कुछ भी न रही। महाराज, दशरथ के रूप, गुण और शील की सराहना करते हुए इस प्रकार चिन्तित हैं मानो शोकरूपी गहरे समुद्र में गोते खा रहे हैं।

छंद–अवगाहि शोक समुद्र सोचहिं नारी नर व्याकुल महा।
दै दोष सकल सरोष बोलहिं वाम विधि कीन्हो कहा॥
सुर सिद्ध तापस योगिजन मुनि दशा देखि विदेह की।
तुलसी न समरथ कोउ जो तरि सकइ सरित सनेह की

उस शोकरूपी समुद्र में स्नान कर और महा विकल हो नरनारी सोचते हैं और सारा दोष दे कर क्रुद्ध हो कहते हैं सि वाम विधना ने यह किया क्या? देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगीजन और मुनिप्रवर किसी में भी यह शक्ति न रही कि जनक की दशा देख, उस प्रेमरूपी नदी के पार जा सके।

सो०—किये अमित उपदेश, जहँ तहँ लोगन मुनिवरन।
धीरज धरिय नरेश, कहेउ वसिष्ठ विदेह सन॥

मुनिवर्य्यों ने जहाँ तहाँ लोगों को बहुत कुछ समझाया बुझाया और वसिष्ठ जी ने जनक से कहा, हे राजन्! धैर्य रखिये।

जासु ज्ञान रविभव निशि नासा। वचनकिरणमुनिकमलविकाशा ॥
तेहि कि मोह ममता नियराई। यह सिय-राम-सनेह बड़ाई ॥
विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग वेद बखाने ॥
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू ॥
सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञाना। कणधार बिनु जिमि जलयाना ॥
मुनि बहुविधि विदेह समुझाये। रामघाट सब लोग नहाये ॥
सकल शोक संकुल नर नारी। सो बासर बीतेउ बिनु बारी ॥
पशु खग मृगन न कीन्ह अहारा। प्रियपरिजन कर कवन विचारा ॥

जिसके ज्ञानरूपी दिवाकर से संसार की आवागमनरूपी रात्रि नष्ट होती थी, जिसकी वचनरूपी किरणों ने मुनिरूपी कमलों को खिला दिया था, उस जनक के पास, क्या मोह ममता आ सकते थे? परन्तु यह सीताराम के प्रेम की महिमा है। वेद में विषयी, साधक, और चतुर मुमुक्षु तीन प्रकार के जीव बतलाये गये हैं। किन्तु साधु समाज में सब से अधिक आदर उसीका है, जिसका मन श्रीराम जी के प्रेम में मग्न हो रहा है। श्रीराम जी के प्रेम के बिना ज्ञान का शोभा वैसे ही नहीं है जैसे बिना मल्लाह के नाव की। वसिष्ठ जी ने जनक को अनेक प्रकार से समझाया, फिर सब लोगों ने रामघाट पर स्नान किये। शोकाकुल सब नगरनारियों को वह दिन निराहार निर्जल ही बीता। पशु पक्षी और मृगों तक ने उस दिन कुछ भी न खाया, फिर निकट कुटुम्बियों और प्रिय जन का तो पूँछना ही क्या है?

दो०—दोउ समाज मिल राज रघु, राज नहाने प्राय।
बैठे सब वट विटप तर, मन मलीन कृश गात ॥

जनकराज और श्रीरघुनाथ जी के दोनों समाजों ने मिल कर, प्रातः काल ही स्नान किये और सब मन मलीन और तन छीन बड़ के पेड़ के नीचे जा बैठे।

जे महिसुर दशरथ पुरवासी। जे मिथिलापति नगर निवासी ॥
हंस वंस गुरु जनक पुरोधा। जिन जगमग परमारथ सोधा ॥

लगे कहन उपदेश अनेका। सहित धर्म नय विरति विवेका ॥
कौशिक कहि कहि कथा पुरानी। समझाई सब सभा सुबानी ॥
तब रघुनाथ कौशिकहि कहेऊ। नाथ कालिह बिनुजलसब रहेऊ ॥
मुनिकह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढ़ाई ॥
ऋषिरुख लखिकह तिरहुति राजू। यहाँ उचित नहिं अशन अनाजू ॥
कहा भूप भल सबहिं सोहाना। पाय रजायसु चले नहाना ॥

जो ब्राह्मण अयोध्यावासी थे और जो मिथिलापुरी के थे, वसिष्ठ जी, तथा जनक के पुरोहित शतानन्द, जिन्होंने इस जग में परमार्थ का मार्ग खोज लिया है वे दोनों धर्म, नीति, वैराग्य और ज्ञान के विविध उपदेश सुनाने लगे, विश्वामित्र जी ने एक पुरातन कथा कह कर कोमल वाणी से सब लोगों के समझाया। तब श्रीरघुनाथ जी ने विश्वामित्र जी से कहा, हे नाथ! कल सब कोई बिना जल रहे हैं, अब सब से भोजन करने के लिये कहिये। इस पर विश्वामित्र जी ने कहा, " श्रीरामचन्द्र जी का कहना ठीक है, आज भी तो अढ़ाई पहर दिन बीत चुका। " ऋषि की अनुमति जान, जनक जी कहने लगे, यहाँ अन्नाहार करना उचित नहीं। यह बात सब को भली लगी और आज्ञा पा सब स्नान करने गये।

दो०—तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार।
लै आये बनचर विपुल, भरि भरि काँवरि भार ॥

उसी समय अनेक प्रकार के फल फूल दल मूल, काँवरो में भर कर वनवासी कोल किरात ले आये।

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत विषादा ॥
सर सरिता वन भूमि विभागा। जनु उमँगत आनँद अनुरागा ॥
बेलि विटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अति अनुकूला ॥
तेहि अवसर वन अधिक उछाहू। त्रिविध समीर सुखद सब काहू ॥
जाय न वरणि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहुनाई ॥

तब सब लोग नहाइ नहाई । राम जनक मुनि आयसु पाई ॥
देखि देखि तरुवर अनुरागे । जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल फूल कन्द विधि नाना । पावन सुन्दर सुधासमाना ॥

श्रीराम जी के प्रताप से पर्वत कामनादायक हो गये, जो दर्शनमात्र से भी दुःख हरते हैं । तालाब, नदी, वनभूमि के भिन्न भिन्न विभागों से मानों अनुराग उमड़ता हुआ चला आता है क्या बेलें क्या वृक्ष सभी फल फूलों से लदे हुए हैं और पशु पक्षी भी अनुकूल हैं । उस समय वन में अधिक उछाह छा गया और शीतल मन्द सुगन्ध हवा चलने लगी । उस सौन्दर्य का वर्णन नहीं हो सकता, मानों वहाँ की भूमि जनक महाराज का आतिथ्य करती है । तब सब लोग स्नान करके और श्रीराम जी जनक जी तथा विश्वामित्र जी की आज्ञा पा कर वृक्षों के नीचे अपने अनुकूल स्थान देख बड़ी प्रीति के साथ जहाँ तहाँ उतरने लगे । अनेक प्रकार के पवित्र सुन्दर अमृत के तुल्य दल, फल, फूल, कन्द ।

दो०—सादर सब कहँ राम गुरु, पठये भरि भरि भार ।
पूजि पितर सुर अतिथि गुरु, लगे करन फलहार ॥

वसिष्ठ जी ने आदरपूर्वक सब के पास भेजे और सब लोग पितृ, देवता, गुरु, अतिथि का पूजन कर, फलाहार करने लगे ।

यहि विधि बासर बीते चारी । राम निरखि नर नारि सुखारि ॥
दुहुँ समाज अस रुचि मन माहीं । बिनु सिय-राम फिरब भल नाहीं ॥
सीता-राम संग वनवासू । कोटि अमर-पुर-सरिस सुपासू ॥
परिहरि लषण राम वैदेही । जेहिं घर भाव वाम विधि तेही ॥
दाहिन दैव होइ जब सबहीं । राम समीप बसिय वन तबहीं ॥
मन्दाकिनि मज्जन तिहुँ काला । राम दर्श मुदमङ्गल माला ॥
अटन राम गिरिवन तापस थल । अशन अमिय सम कन्द मूल फल ॥
सुख समेत संवत दुइ साता । पल सम होहिं न जानिय जाता ॥

इस प्रकार चार दिन बीत गये और श्रीराम जी को देख कर सब स्त्रियाँ और पुरुष प्रसन्न हुए। दोनों दलों के मन में यह इच्छा है कि श्रीरामचन्द्र और सीता के बिना लौटना अच्छा नहीं और श्रीरामचन्द्र सीता के साथ वन में रहने से असंख्य इन्द्रलोकों में रहने के समान सुख है। जिसे श्रीराम, लक्ष्मण, सीता को छोड़ वन अच्छा लगे विधना को उसके विरुद्ध समझो। जब सब श्रीराम जी के साथ वन में रहें तब ही ब्रह्मा सबके दहिने हों। त्रिकाल मन्दाकिनी का स्नान हो और सारे आनन्दों और मङ्गलों का देने वाला श्रीराम जी का दर्शन हो। चित्रकूट, वन और तपस्वियों के आश्रमों में विचरना और अमृतोपम कन्द-मूल फल का भोजन करना, सुख से चौदह वर्ष एक पल के समान बीत जाँयगे और कब बीत गये, यह भी कोई नहीं जान पावेगा।

दो०—यहि सुख योग न लोग सब, कहहिं कहाँ अस भाग।
सहज सुभाव समाज दुहुँ, रामचरण अनुराग॥

इस सुख के योग्य सब लोग नहीं हैं और कहते हैं कि हमारे ऐसे भाग्य कहाँ हैं। इस प्रकार से सहज स्वभाव से दोनों समाज का श्रीरघुनाथ जी के चरणों में अनुराग है।

यहि विधि सकल मनोरथ करहीं। वचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥
सीयमातु तेहिं समय पठाई। दासी देखि सुअवसर आई॥
सावकाश सुनि सब सियसासू। आईं जनक-राज-रनिवासू॥
कौशल्या सादर सनमानी। आसन दीन समय सम जानी॥
शील सनेह सरस दुहुँ ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिश कठोरा॥
पुलक शिथिलतनु वारि विलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन॥
सब सिय-राम प्रेम की मूरति। जनु करुणा बहु वेष बिसूरति॥
सीय मातु कह विधि बुधि बाँकी। जिमि पय फेनु फोर पबि टाँकी॥

इस प्रकार से सब मनोरथ करते हैं और प्रीतिपूर्वक वचन सुन कर मन में प्रसन्न होते हैं। सीता जी की माता ने उस समय एक दासी भेजी। उसने जा कर

कौशल्या आदि को केवल खाली बैठीं देखा। जानकी की सासों को खाली सुन, जनक का रनवास वहाँ गया। कौशल्या ने आदर सहित सत्कार किया और समय के अनुसार सब को आसन दिया। दोनों ओर से रस भरे शील और प्रेम को देख सुन कर कठिन वज्र भी पसीज उठता है। सब के शरीर पुलकित हो शिथिल हो गये, नेत्रों में जल भर गया और सब पृथिवी पर नखों से लिखने और सोचने लगीं। वे सब सीताराम के स्नेह की मूर्तियाँ हैं और ऐसा जान पड़ता है मानों करुणा रस ही अनेक रूप धारण कर मन मलीन बैठा है। सीता जी की माता बोलीं, ब्रह्मा की बुद्धि बड़ी टेढ़ी है कि उसने दूध के फेनों को वज्र की टाँकी से तोड़ा।

दो०—सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सुकृत मराल ॥

विधाता की सभी करतूतें अनोखी हैं। क्योंकि अमृत का तो नाम ही सुनाई पड़ता है किन्तु विष प्रत्यक्ष देखा जाता है। कौवे, बगले तो सर्वत्र दीख पड़ते हैं, किन्तु हंस केवल मानसरोवर पर ही सुने जाते हैं।

सुनि ससोच कह देवि सुमित्रा। विधिगतिअति विपरीतविचित्रा ॥
जो सृजि पालै हरै बहोरी। बाल केलि सम विधिमति भोरी ॥
कौशल्या कह दोष न काहू। कर्म विवश दुख सुख क्षति लाहू ॥
कठिन कर्म गति जान विधाता। जो शुभ अशुभ कर्म फलदाता ॥
ईश रजाय शीश सबही के। उत्पति थिति लय विषहु अमीके ॥
देवि मोहवश सोचिय वादी। विधि प्रपञ्च अस अचल अनादी ॥
भूपति जियब मरब उर आनी। सोचियसखिलखिनिजहितहानी ॥
सीयमातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी ॥

सुनयना की बातें सुन सुमित्रा ने दुखी हो कहा, हे रानी! सचमुच ब्रह्मा की चाल बड़ी टेढ़ी है और अनोखी है। वह नित्य ही भोले बालकों की तरह बनाता, पालता और बिगाड़ डालता है। कौशल्या ने कहा, दोष किसी का नहीं, सुख

दुःख, हानि और लाभ कर्माधीन हैं और कठिन कर्म की गति को विधाता जानता है और वही भले बुरे कर्म्मों के फल का देने वाला है उत्पत्ति, पालन, नाश तथा विष और अमृत इन सब के माथे ईश्वर की आज्ञा है अर्थात् ईश्वर की आज्ञा बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। हे रानी! अज्ञान के वश शोक करना व्यर्थ है क्योंकि ब्रह्मा का यह प्रपञ्च आज का नहीं, किन्तु अनादि काल से चला आता है। हे सखी! जिस समय महाराज के मरने जीने का स्मरण होता है उस समय अपनी हानि और लाभ का विचार दुःख अवश्य होता है (क्योंकि रोना अपने सुख दुःखों के लिये है।) इस पर सीता जी की माता ने कहा—रानी! तुम्हारा कहना बहुत सुन्दर और सच है। अयोध्याऽधिपति तो पुण्यों की मर्यादा थे।

दो०—लषण राम सिय जाहिं वन, भल परिणाम न पोच।
गहवरि हिय कह कौशला, मोहिं भरत कर सोच॥

कौशल्या ने घबरा कर कहा कि श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता वन को जावें तो इसका परिणाम भला ही है बुरा नहीं, किन्तु भरत की मुझे बड़ी चिन्ता है। अर्थात् श्रीराम जी का वियोग वे सम्हार सकेंगे कि नहीं।

ईश प्रसाद अशीश तुम्हारी। सुत सुतबधू देवसरि वारी॥
राम शपथ मैं कीन्ह न काऊ। सो करि सखी कहौं सति भाऊ॥
भरत शील गुण विनय बडाई। भायउ भक्ति भरोस भलाई॥
कहत शारदहु के मति हीचै। सागर सीप कि जाहिं उलीचै॥
जानौ सदा भरत कुल दीपा। बार बार मोहिं कहेउ महीपा॥
कसे कनक मणि पारिख पाये। पुरुष परखिये समय सुभाये॥
अनुचित आजु कहब अस मोरा। शोक सनेह सयानप थोरा॥
सुनि सुरसरि सम पावनि वानी। भई सनेह विकल सब रानी॥

ईश की कृपा से और तुम्हारे आशीर्वाद से पुत्र और पुत्रों की बहूयें गङ्गाजल के समान निर्मल हैं। हे सखी! श्रीराम जी की शपथ मैंने कभी नहीं खायी उसे खा कर मैं सत्य सत्य कहती हूँ कि भरत के शील, गुण, नम्रता, बड़ाई,

भ्रातृभाव, भक्ति, भरोसा और भलाई का वर्णन करते, सरस्वती की भी बुद्धि हिचकती है, भला कहीं समुद्र का जल भी सीप से उलीचा जा सकता है। महाराज मुझसे बार बार कहा करते थे कि भरत को सदा कुलदीपक समझना। कसौटी पर कसने से सुवर्ण की, मणि की जौहरी के हाथ में जाने से और समय पड़ने पर मनुष्य की परीक्षा होती है। आज मेरा ऐसा कहना भी अनुचित है, क्योंकि शोक और स्नेह के कारण चतुराई थोड़ी रह गयी है। गङ्गा के समान पवित्र वाणी सुन सब रानियाँ स्नेह से शिथिल हो गयीं। गङ्गा अनेक पापियों को तार देती है, और कौशल्या के गङ्गारूपी वचनों से मन्थरा आदि तर गयी।

दो०—कौशल्या कह धीर धरि, सुनहु देवि मिथिलेशि।
को विवेक निधि बल्लभहिं, तुमहिं सकै उपदेशि॥

कौशल्या ने धैर्य धर कहा, सुनो मिथिलेश की महारानी, तुम ज्ञान के समुद्र महाराज जनक की वल्लभा हो, भला तुम्हें कौन उपदेश दे सकता है।

रानि राव सन अवसर पाई। आपनि भाँति कहब समुझाई॥
राखहिं लषण भरत गवनहिं बन। जो यह मत मानै महीप मन॥
तौ भलि यत्न करहु सुविचारी। मोरे सोच भरत कर भारी॥
गूढ़ सनेह भरत मन माहीं। रहे नीक मोहिं लागत नाहीं॥
लखि स्वभाव सुनि सरल सुवानी। सब भइँ मगन करुणरस सानी॥
नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। शिथिल सनेह सिद्ध योगी मुनि॥
सब रनिवास थकित लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ॥
देवि दण्ड युग यामिनि बीती। राम मातु सुनि उठी सप्रीती॥

कौशल्या कहने लगी, महारानी जी राजा से अवसर पा कर अपनी ओर से समझा कर कहना कि यदि उनके मन में भावे तो वे लक्ष्मण को रख लें और भरत को श्रीरामचन्द्र जी के साथ वन में भेज दें। इसका उपाय विचार कर करें क्योंकि मुझे भरत जी की बड़ी भारी चिन्ता है। भरत के मन में श्रीराम जी का बड़ा स्नेह है, सो बिना श्रीराम जी के भरत का रहना, मुझे अच्छा नहीं लगता।

कौशल्या जी का स्वभाव देख और सीधी वाणी सुन, सब रानियाँ करुणरस में मग्न हो गयीं। आकाश से फूलों की वर्षा और धन्य धन्य की ध्वनि होने लगी, योगी सिद्ध मुनि स्नेह में मग्न हो गये। देवतागण कौशल्या के इस मानसिक भाव को जान प्रसन्न हुए कि उनको श्रीराम जी का वन जाना स्वीकृत है। यह देख सब रनवास चकित हुआ, तब धीरज धर सुमित्रा ने कहा, हे देवि! दो घड़ी रात बीत गयीं। यह सुन कौशल्या जी प्रीतिपूर्वक उठीं (कौशल्या के पहले उठने का कारण यह समझना चाहिये कि जनक की महिषी स्यापे में आयी थीं और स्यापे में पहले घर की किसी स्त्री का उठना उचित है।)

दो०—वेगि पायँ धारिय थलहिं, कह सनेह सति भाय।
हमरे तौ अब ईश गति, की मिथिलेश सहाय॥

कौशल्या ने बड़े स्नेह के साथ कहा, अब आप अपने स्थान को शीघ्र पधारें। हम लोगों के तो अब ईश या महाराज जनक सहायक हैं।

लखि सनेह सुनि वचन विनीता। जनक प्रिया गहि पाँव पुनीता॥
देवि उचित अस विनय तुम्हारी। दशरथ-घरनि राम-महतारी॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अग्नि धूम गिरि सिर तृण धरहीं॥
सेवक राव कर्म मन बानी। सदा सहाय महेश भवानी॥
रौरे अङ्ग योग्य जग को है। दीप सहाय कि दिनकर सोहै॥
राम जाय वन करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥
अमर नाग नर राम बाहुबल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥
यह सब याज्ञवल्क्य कहि राखा। देवि न होइ मृषा मुनि भाखा॥

महारानी कौशल्या का स्नेह देख और विनीत वचन सुन, महारानी सुनयना ने कौशल्या जी के चरण पकड़ कर कहा, हे देवि! तुम्हारा इस प्रकार विनय करना उचित ही है क्योंकि तुम महाराज दशरथ की पटरानी और श्रीरामजी की माता हो। प्रभु अपने नीच का भी आदर करते हैं। अग्नि धुवाँ को और पहाड़ तृण को सदा अपने सिर पर रखते हैं। महाराज (मिथिलेश) तो मनसा वाचा

कर्मणा सदा से सेवक हैं और शिवपार्वती सदा सहायक हैं। आपके समान भला जगत में दूसरा कौन है, भला कहीं दीपक की सहायता से कभी सूर्य ने भी शोभा पायी है। श्रीराम जी वन में जा और देवताओं का काम कर अयोध्या में अटल राज्य करेंगे। देवता, सर्प और मनुष्य. श्रीराम जी की भुजाओं के बल से अपने अपने स्थानों पर आनन्दपूर्वक रहेंगे। हे रानी! यह सब याज्ञवल्क्य मुनि ने कह रखा है उनका कथन झूठ नहीं हो सकता।

दो०—अस कहि पगु परि प्रेम अति, सिय हित विनय सुनाय।
सिय समेत सिय मातु तब, चलीं सुआयसु पाय॥

यह कह और कौशल्या के चरणों में गिर, सुनयना ने सीता जी को ले जाने की प्रार्थना की। तब आज्ञा पा सीता समेत सुनयना अपने डेरों को चलीं।

प्रिय परिजनहिं मिली वैदेही। जो जेहिं योग्य भाँति तस तेही॥
तापस वेष जानकिहिं देखी। भे सब विकल विषाद विशेखी॥
जनक राम गुरु आयसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई॥
लीन्ह लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावनि प्रेम प्रान की॥
उर उमँगेउ अम्बुधि अनुरागू। भयहु भूप मन मनहुँ प्रयागू॥
सिय सनेह वट बाढ़त जोहा। तापर राम प्रेम शिशु सोहा॥
चिरजीवि मुनि ज्ञान विकल जनु। बूड़त लहेउ बाल अवलम्बनु॥
मोह मगन मति नहिं विदेह की। महिमा सिय-रघुवर सनेह की॥

जो जिस योग्य था, सीता जी अपने कुटुम्बियों से उसी प्रकार मिलीं। सीता जी को तपस्विनी के वेष में देख, सब दुःख से विकल हुए। उधर वसिष्ठ जी की आज्ञा ले जनक जी ने अपने डेरे पर पहुंच कर, जानकी जी को देखा। सच्चे प्रेम और प्राणों की पाहुनी सीता को जनक ने हृदय से लगा लिया। राजा के मन में प्रेम का समुद्र उमड़ा, मानों राजा का मन प्रयाग हो गया। सीता जी के मनरूपी वटवृक्ष को बढ़ता देखा और उस पर बालक के समान श्रीराम जी का स्नेह शोभायमान हो रहा है। राजा के ज्ञानरूपी डूबते हुए

मार्कण्डेय मुनि ने बालक रूप भगवान का अवलम्ब लिया और महाराज जनक की मति मोह में मग्न न हो पाई। यह तो केवल सीताराम के प्रेम की महिमा है।

दो०—सिय पितु मातु सनेहवश, बिकल न सकी सँभारि।
धरणिसुता धीरज धरेउ, समय सुधर्म बिचारि॥

जानकी जी के पिता और उनकी माता स्नेहवश हो व्याकुलता को न सम्हाल सके, तब जानकी जी ने श्रेष्ठधर्म और अवसर विचार धैर्य धारण किया।

तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेम परितोष बिशेखी॥
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुयश धवल जग कह सब कोऊ॥
जिमि सुरसरि कीरति सरि तोरी। गमन कीन्ह बिधि अण्डक कोरी॥
गङ्ग अवनि थल तीनि बड़ेरे। यहि किय साधु समाज घनेरे॥
पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुचि मन माहँ समानी॥
पुनि पितु मातु लीन्ह उर लाइ। शिष आशिष हित दीन्ह सुहाइ॥
कहति न सीय सकुचि मन माहीं। यहाँ बसब रजनी भल नाहीं॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदय सराहत शील स्वभाऊ॥

जनक ने सीता जी को तपस्विनी के वेष में देखा, तब उनके मन में बड़ा प्रेम और सन्तोष हुआ, क्योंकि जानकी जी ने श्रीराम जी का साथ दे पातिव्रत धर्म को पाला है। फिर वे कहने लगे, हे पुत्री! तूने दोनों कुलों को पवित्र कर दिया। संसार में तेरे उज्ज्वल यश को सब कोई सुन्दर कहेंगे। गङ्गा जी की कीर्ति की तरह, तेरी कीर्ति रूपी नदी असंख्य ब्रह्माण्डों में गमन कर रही है। गङ्गा जी ने पृथिवी पर गंगोत्री, हरिद्वार और प्रयाग इन तीन स्थलों को बड़ा किया है और तेरी इस कीर्ति ने साधुओं के अनेक समाजों को बड़ा किया है। पिता की सत्य और प्रेममयी सुन्दर वाणी सुन सीता जी सकुचा गयीं। फिर माता पिता ने उन्हें गले से लगा लिया और हित की शिक्षा और सुन्दर आशीर्वाद दिये। सीता जी कुछ कह तो नहीं सकतीं, पर मन ही मन वे सकुचाती हैं कि

यहाँ रात को रहना अच्छा नहीं। तब उनका भाव जान सुनयना ने राजा को जता दिया। राजा जनक सीता जी के शील और स्वभाव की मन ही मन सराहना करने लगे।

दो०—बार बार मिलि भेंटि सिय, बिदा कीन्ह सनमानि।
कही समय सिर भरत गति, रानि सुबानि सयानि॥

बार बार सीता जी से मिल कर, आदरपूर्वक उनकी बिदा की। फिर चतुर रानी ने समय के अनुसार मधुर वाणी से कौशल्या की कही भरत जी की दशा राजा से कही।

सुनि भूपाल भरत व्यवहारू। स्वर्ण सुगन्ध सुधा शशि सारू॥
मूँदे सजल नयन पुलके तन। सुयश सराहन लगे मुदित मन॥
सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव-बन्ध-विमोचनि॥
धर्मराजनय ब्रह्म विचारू। यहाँ यथामति मोर प्रचारू॥
सो मति मोरि भरत महिं माहीं। कहौं काह छल छुअति न छाहीं॥
विधिगणपतिअहिपतिशिवशारद। कवि कोविद बुध बुद्धिविशारद॥
भरत चरित कीरति करतूती। धर्मशील गुण विमल विभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। शुचिसुरसरिरुचिनिदरिसुधाहू॥

भरत जी के व्यवहार को सुन, राजा ने उसे सोना और सुगन्ध, तथा चन्द्रमा के साररूप अमृत के समान जाना। उन्होंने जल भरे नैन मूँद लिये और उनका शरीर पुलकायमान हो गया, और प्रसन्न मन से वे उनकी सुन्दर कीर्ति सराहने लगे। हे सुमुखी! हे सुलोचनी! सावधान हो कर सुन, भरत का चरित संसार के बन्धनों को काटने वाला है। धर्म्मशास्त्र, राजनीति और ब्रह्म के विचार में मेरी बुद्धि की अच्छी गम्य है, किन्तु वही मेरी बुद्धि, (भरत की महिमा का वर्णन करना तो दूर रहा) छलपूर्वक उसकी छाईं को भी नहीं छू सकती। ब्रह्मा, शेष महेश, सरस्वती, कवि, पण्डित, बुद्धिमान, और चतुर समझदार भरत के चरित, यश, करतूत, धर्म, स्वभाव, गुण और निर्मल विभूति

को वर्णन नहीं कर सकते। उनकी धर्मशीलता, तथा उज्वल विभूति सुनने और समझने में सब को सुख देने वाली और इसकी पवित्रता गङ्गा जी की तरह और रुचि अमृत की भी निन्दा करने वाली है।

दो०—निरवधि गुण निरुपम पुरुष, भरत भरत सम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेर सम, कविकुल मति सकुचानि॥

महाराज जनक अपनी रानी से कहते हैं हे देवि! तुम भरत को भरत के समान जानो, उनके गुण असीम हैं, वे स्वयं उपमा रहित पुरुष हैं। जैसे कवि उपमा न पा कर सुमेरु के सुमेरु ही को समान बतलाते हैं, वैसे ही भरत की उपमा भरत स्वयं हैं।

अगम सबहिं बरणत वर बरणी। जिमि जल हीन मीनगण धरणी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी॥
बरणि सप्रेम भरत सत भाऊ। तिय जियकी रुचिलखिकहराऊ॥
बहुरहिं लषण भरत वन जाहीं। सब कर भल सब के मन माहीं॥
देवि परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥
भरत सनेह अवधि ममता के। यद्यपि राम-सींब समता के॥
परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥
साधन सिद्धि रामपद नेहू। मोहि लखि परत भरत मत येहू॥

हे मनोहारिणी! भरत जी की कीर्ति और गुणों का कथन, गणेश शारदादि को भी ऐसा अगम्य है, जैसे जलहीन भूमि पर मछली का चलना। हे रानी! भरत जी की महिमा अपार है। उसको श्रीराम जी भी जानते हैं, पर कह नहीं सकते हैं। इस प्रकार स्वभाव और प्रेम से भरत जी का सद्भाव कह कर रानी की रुचि जान जनक कहने लगे, लक्ष्मण लौट जाँय और भरत श्रीराम जी के साथ जाँय, इसे सब चाहते हैं और सब को यह पसन्द है। परन्तु हे देवि! श्रीराम जी की प्रीति और उनकी प्रतीति में कोई तर्क वितर्क नहीं कर सकता। यद्यपि भरत प्रेम और ममता की सीमा हैं, तथापि भरत जी ने तो परमार्थ, और

स्वार्थ के सम्पूर्ण सुख स्वप्न में भी नहीं देखे। रामचरण में प्रीति करने से सारे काम सिद्ध होते हैं, भरत का भी यही मत मुझे जान पड़ता है।

दो०—भोरेहु भरत न पेलिहहिं, मनसहुँ राम रजाइ।
करिय न सोच सनेहवश, कहेउ भूप बिलखाइ॥

फिर राजा ने दुखी होकर कहा, हे रानी! प्रेम में विह्वल हो दुखी मत हो, भरत भूल कर भी मन से श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा को नहीं टालेंगे।

राम भरत गुण कहत सप्रीती। निशि दम्पतिहिं पलक सम बीती॥
राज समाज प्रात युग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥
गे नहाइ गुरु पहँ रघुराई। बन्दि चरण बोले रुख पाई॥
नाथ भरत पुरजन महतारी। सोक विकल वनवास दुखारी॥
सहित समाज राव मिथिलेशू। बहुत दिवस भे सहत कलेशू॥
उचित होय सो कीजिय नाथा। हित सब ही कर रौरे हाथा॥
अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि शील स्वभाऊ॥
तुम बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहुँ राज समाजा॥

श्रीरघुनाथ जी और भरत जी के गुण प्रेमपूर्वक कहते सुनते, दोनों स्त्री पुरुष को वह रात पल के समान बीती। दोनों राजाओं के दल वाले सबेरा होते जब जागे तब स्नान कर वे देवताओं का पूजन करने लगे। स्नान कर श्रीराम जी गुरू के पास गये और उनको प्रणाम कर तथा उनका रुख पा कर कहने लगे। हे गुरुदेव! भरत, अयोध्यावासी और मेरी सब माताएँ मेरी चिन्ता कर और वनोवास के कारण दुखी हैं। अपनी मण्डली सहित मिथिलेश को भी यहाँ रह कर दुःख झेलते कई दिन हो चुके। हे नाथ! अब जो उचित हो वही कीजिये। क्योंकि सब का हित आपके ही हाथ है। यह कह श्रीरघुनाथ जी बहुत सकुचाये, और वसिष्ठ जी उनका शील स्वभाव देख कर, प्रसन्न हुए, और कहने लगे हे राम! तुम्हारे बिना दोनों समाज नरक के समान हैं। इससे घर को कैसे जायँ?

दो०—प्राण प्राण के जीव के, जिय सुख के सुख राम।
तुम तजि तात सोहात गृह, जिनहिं तिनहिं विधि वाम॥

प्राणों के प्राण, जीव के जीव, और सुख के सुख, तुम श्रीराम को छोड़, जिनको घर अच्छा लगता है वे बड़े अभागे हैं।

सो सुख कर्म धर्म करि जाऊ। जहँ न राम-पद-पङ्कज भाऊ॥
योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू। जहाँ न राम प्रेम परधानू॥
तुम बिनु दुखी सुखी तुम तेही। तुम जानहु जिय जो जेहि केही॥
राउर आयसु सिर सब ही के। विदित कृपालहि गति सब नीके॥
आपु आश्रमहिं धारिय पाऊ। भये सनेह शिथिल मुनि राऊ॥
करि प्रणाम तब राम सिधाये। ऋषि धरि धीर जनक पहँ आये॥
राम वचन गुरु नृपहिं सुनाये। शील सनेह सुभाय सुहाये॥
महाराज अब कीजिय सोई। सब कर धर्म सहित हित होई॥

भले ही वह सुख, कर्म, धर्म जल जाय जिनके द्वारा श्रीराम जी के चरण कमलों में प्रीति न हो। वह योग तो कुयोग है और वह ज्ञान तो अज्ञान है, जिसमें श्रीराम जी की भक्ति मुख्य न हो। सब लोग तुम्हारे बिना दुखी हैं और तुम्हीं से सुखी हैं, तुम जिसके जी में जो है वह जानते ही हो। आपकी आज्ञा सब को शिरोधार्य है, और आप सब का हाल जानते हैं। आप आश्रम में पधारिये यह कह वसिष्ठ जी स्नेह से शिथिल हो गये। श्रीरामचन्द्र जी तो अपने आश्रम में गये और वसिष्ठ जी धीरज धर जनक के पास गये। वहां उन्होंने श्रीराम जी का सन्देसा जनक को सुनाया जो शील, प्रेम और स्वभाव ही से सुहावना था। फिर वसिष्ठ जी ने कहा, हे महाराज! अब वही कीजिये जिसमें धर्म सहित सब का भला हो।

दो०—ज्ञान निधान सुजान शुचि, धर्म धीर नरपाल।
तुम बिनु असमञ्जस शमन, को समर्थ यहि काल॥

हे राजन्! आप ज्ञाननिधान, परम सुजान, पवित्र, धर्मज्ञ, और धैर्यधुरीण हैं। श्रीराम जी के लौटने या न लौटने के असमञ्जस को दूर करने में आपको छोड़ दूसरा कौन समर्थ है?

सुनि मुनिवचन जनक अनुरागे । लखि गति ज्ञान विराग विरागे ॥
शिथिल सनेह गुणत मन माहीं । आये यहाँ कीन्ह भल नाहीं ॥
रामहिं राव कहेउ वन जाना । कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रमाना ॥
हम अब वन तें वनहिं पठाई । प्रमुदित फिरब विवेक बढ़ाई ॥
तापस मुनि महिसुर गति देखी । भये प्रेमवश विकल विशेखी ॥
समय समुझि धरि धीरज राजा । चले भरत पहँ सहित समाजा ॥
भरत आय आगे ह्वै लीन्हा । अवसर सरिस सुआसन दीन्हा ॥
तात भरत कह तिरहुति राऊ । तुमहिं विदित रघुबीर स्वभाऊ ॥

वसिष्ठ जी की बातें सुन, जनक प्रेम में मग्न हो गये और उनकी दशा को देख, ज्ञान और वैराग्य भी विरागी हुये। राजा जनक प्रेम में शिथिल हो मन ही मन सोचते हैं कि यहाँ आ कर हमने अच्छा नहीं किया। दशरथ जी ने श्रीराम जी से वन जाने को कह अपने प्यारे प्रेम को निभाया (अर्थात् अपने प्राण त्यागे) अब हम श्रीराम जी को वन से वन में भेज प्रसन्न होते हुए विवेक को बढ़ा कर लौटेंगे। तपस्वी, मुनि और ब्राह्मण, (जनक जी की) दशा देख, और स्नेह के वश हो बहुत दुखी हुए। फिर जनक जी समय विचार और धीरज रख, अपनी मण्डली को साथ ले, भरत के पास गये। भरत जी ने उठ कर उनका स्वागत किया और वहाँ के योग्य उनको आसन दिये। तदनन्तर जनक जी बोले, हे भरत! तुम श्रीरघुनाथ जी का स्वभाव जानते हो।

दो०—राम सत्यव्रत धर्मरत, सब कर शील सनेहु ।
संकट सहत सकोचवश, कहिय जो आयसु देहु ॥

सत्य प्रतिज्ञ एवं धर्मप्रिय श्रीराम जी सब के शील और स्नेह के वश हो, सङ्कोच से कष्ट सहते हैं। अब आप जो आज्ञा दें वही कहें।

सुनि तनु पुलकि नयन भरि वारी । बोले भरत धीर धरि भारी ॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू । कुल-गुरु सम हित माय न बापू ॥
कौशिकादि मुनि सचिव समाजू । ज्ञान अम्बुनिधि आपु न आजू ॥

शिशु सेवक आयसु अनुगामी । जानि मोहिं सिख देइय स्वामी ॥
यहि समाज थल बूझब राउर । मन मलीन मैं बोलब बाउर ॥
छोटे बदन कहौं बड़ि बाता । छमब तात लखि बाम विधाता ॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । सेवक धर्म कठिन जग जाना ॥
स्वामि धर्म स्वारथहिं विरोधू । बधिर अन्ध प्रेमहिं न प्रबोधू ॥

यह बात सुन, भरत जी का शरीर पुलकित हो गया। वे धैर्य धारण कर कहने लगे, श्रीराम जी हमारे प्यारे और पूज्य हैं। आप पिता के समान हैं और कुलगुरु वसिष्ठ जी हैं कि जिनके बराबर हितैषी हमारे पिता माता भी नहीं हैं। अपनी मण्डली सहित विश्वामित्रादि मुनि और आज दिन आप ज्ञान के साक्षात् समुद्र हैं। यह आज्ञाकारी सेवक बालक तो आपका अनुगामी है। यह समझ मुझे आप सीख दीजिये। इस मण्डली में यदि आप पूँछते हैं तो मैं दुखी मन से पागल जैसा कहता हूं हे महाराज! मैं छोटे मुँह बड़ी बात कहता हूँ, सो उसे आप मेरे ऊपर विधाता को वाम समझ क्षमा करना। वेद, शास्त्र और पुराणों में यह प्रसिद्ध है और संसार भी जानता है कि सेवाधर्म बड़ा कठिन है। स्वामी के धर्म और अपने स्वार्थ में विरोध है। जिस प्रकार अन्धे अथवा बहरे को प्रेम का ज्ञान नहीं हो सकता, उसी प्रकार स्वार्थ से स्वामिधर्म और स्वामिधर्म के सामने स्वार्थ नहीं सध सकता।

दो०—राखि राम रुख धर्मव्रत, पराधीन मोहिं जानि ।
सब के सम्मत सर्वहित, करिय प्रेम पहिचानि ॥

श्रीराम के धर्मव्रत का रुख रख कर, और मुझे पराधीन समझ कर, सब की जो सम्मति हो और जिससे सब का भला हो, वह स्नेह पहचान कर कीजिये।

भरतवचन सुनि देखि सुभाऊ । सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मञ्जु कठोरा । अर्थ अमित अति आखर थोरा ॥
जो मुख मुकुर मुकुर निज पाणी । गहि न जाय अस अद्भुत वाणी ॥
भूप भरत मुनि साधु समाजू । गे जहँ विबुध कुमुद द्विजराजू ॥

सुनिसुधि सोच विकल सब लोगा। मनहुँ मीनगण नव जल योगा॥
देव प्रथम कुल-गुरु गति देखी। निरखि विदेह सनेह विशेखी॥
राम भक्तिमय भरत निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे॥
सब कहँ राम प्रेममय पेखा। भये अलेख सोचवश लेखा॥

भरत की बातें सुन और उनके स्वभाव का परिचय पा कर जनक ने और उनके साथियों ने भरत जी की प्रशंसा की और कहा भरत जी के वचन सुनने में सुगम, और अर्थ में कठिन, तथा मीठे, कोमल और कठोर हैं। उनमें अर्थ बहुत अक्षर थोड़े हैं। जैसे मुख दर्पण में और दर्पण हाथ में होता है, परन्तु मुख पकड़ा नहीं जाता, वैसे ही इनके अद्भुत वचन हैं जिनका अर्थ समझना महा कठिन है। यह कह राजा जनक, भरत, मुनीश्वर और साधु समाज सहित वहाँ गये जहाँ श्रीरामचन्द्र जी थे। इसकी सुध पा सब लोग ऐसे दुखी हैं जैसे मछलियाँ नये जल के मिलने से होती हैं। देवताओं ने वसिष्ठ जी की दशा देख फिर जनक जी के अधिक प्रेम को देखा। भरत जी को श्रीरामचन्द्र जी की भक्ति में लवलीन देख, स्वार्थी देवता घबड़ा कर, मन में हार मान बैठे। फिर सब को श्रीराम जी के प्रेम में मग्न देख, सब देवता ऐसे चिन्तित हुए कि उसका वर्णन नहीं हो सकता।

दो०—राम सनेह सकोचवश, कह ससोच सुरराज।
रचहु प्रपञ्चहिं पञ्च मिलि, नाहिंत भयउ अकाज॥

इन्द्र ने विचार कर कहा, श्रीराम जी तो प्रेम और सङ्कोच के वश हैं, अतः पञ्च मिल कर प्रपंच रचो नहीं तो बना बनाया काम बिगड़ जायगा।

सुरन सुमिरि शारदा सराही। देवि देव शरणागत पाही॥
फेरु भरत मति करि निज माया। पाल विबुध कुल करि छल छाया॥
विबुध विनय सुनि देवि सयानी। बोली सुर स्वारथि जड़ जानी॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥
विधि हरिहर माया बड़ि भारी। सो न भरत मति सकै निहारी॥

सो मति मोहिं कहत करु भोरी। चन्द्रनि करै कि चन्द्र कि चोरी॥
भरत हृदय सिय राम निवासू। कहँ कि तिमिर जहँ तरणि प्रकासू॥
अस कहि शारद गइ विधि लोका। विबुध विकलनिशिमानहुँकोका॥

देवताओं ने सरस्वती की स्तुति कर उनको स्मरण किया, और कहा हे देवि! शरण आये हुए देवताओं की रक्षा करो। अपनी माया से भरत जी की बुद्धि को फेर दो, और कपट का परदा डाल कर, देवताओं का पालन करो। चतुर देवी ने देवताओं की स्तुति सुन और उनको स्वार्थ में लिप्त देख इन्द्र से कहा, तुम मुझसे भरत की बुद्धि फेर देने को कहते हो, सो तुम्हारे हज़ार नेत्र होने पर भी तुम्हें सुमेरु पर्वत भी नहीं दीख पड़ता। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव की बड़ी भारी माया भी भरत की बुद्धि को नहीं फेर सकती। उसी को भूल में डालने के लिये तुम मुझसे कहते हो! भला कहीं चाँदनी भी चन्द्रमा को चुरा सकती है? भरत के मन में सीताराम का निवास है, सो जहाँ सूर्य का प्रकाश हो, वहाँ क्या अंधेरा रह सकता है? यह कह कर सरस्वती तो ब्रह्मलोक को गयी और देवता ऐसे दुःखी हुए जैसे चकवा रात में दुःखी होता है।

दो०—सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमन्त्र कुठाट।
रचि प्रपञ्च माया प्रबल, भय भ्रम अरत उचाट॥

उन देवताओं ने जो स्वार्थी और कपटी थे कुमंत्रणा कर उपद्रव खड़ा किया। उन्होंने संसार की प्रबल माया के वशवर्ती हो, वहाँ भय, भ्रम, दुःख और उच्चाटन रच दिये।

करि कुचाल सोचत सुरराजू। भरत हाथ सब काज अकाजू॥
गये जनक रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रघुकुल दीपा॥
समय समाज धर्म अविरोधा। बोले तब रघुवंश पुरोधा॥
जनक भरत संवाद सुनाई। भरत कहावति कही सुहाई॥
तात राम जस आयसु देहू। सो सब करैं मोर मत येहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि युग पाणी। बोले सत्य सरल मृदुवाणी॥

विद्यमान आपुन मिथिलेशू। मोर कहा सब भाँति भदेशू॥
राउर राव रजायसु होई। राउरि शपथ सही सिर सोई॥

इस बुरी चाल को चल कर इन्द्र मन ही मन सोचते हैं कि अब भलाई बुराई, सब भरत जी के हाथ है। जब जनक जी श्रीरामचन्द्र जी के पास गये तब उन्होंने उनका बड़ा सन्मान किया। समय, समाज और धर्म के अनुरोध से रघुवंश के पुरोहित वसिष्ठ जी ने कहा। जनक और जनक का संवाद सुना कर भरत की कही हुई सुन्दर बातें कहीं। फिर वे कहने लगे, हे श्रीरामचन्द्र! मेरी भी यह सम्मति है कि तुम जो कुछ कहो, भरत वैसा ही करें। यह सुन श्रीरामजी ने हाथ जोड़ कर सत्य, सरल और कोमल ये वचन कहे--आपके और महाराज जनक के सामने मेरा कुछ भी कहना अनुचित है। आपको और महाराज की जो आज्ञा होगी, मैं शपथपूर्वक कहता हूं, मैं उसे सिर पर रख कर पालन करूंगा।

दो०—रामशपथ सुनि मुनि जनक, सकुचे सभा समेत।
सकल विलोकहिं भरत मुख, बनै न उत्तर देत॥

श्रीराम जी की शपथ सुन कर, सभा सहित वसिष्ठ और जनक सकुचे और सब लोग भरत के मुख की ओर निहारने लगे, पर उत्तर किसी से भी न बन पड़ा।

सभा सकुचवश भरत निहारी। राम-बन्धु धरि धीरज भारी॥
कुसमय देखि सनेह सँभारा। बढ़त विन्ध्य जिमि घटज निवारा॥
शोक कनक लोचन मति छोनी। हरी विमल गुण गण जग योनी॥
भरत विवेक वराह बिशाला। अनायास उधरे तेहिं काला॥
करि प्रणाम सब कहँ कर जोरी। राम राव गुरु साधु निहोरी॥
क्षमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ वदन मृदुवचन कठोरा॥
हिय सुमिरी शारदा सुहाई। मानस ते मुखपङ्कज आई॥
विनय विवेक धर्म नय शाली। भरत भारती मञ्जु मराली॥

भरत ने सारी सभा को सकुचवश देख स्वयं बड़ा धैर्य धारण किया

और कुसमय देख प्रेम को ऐसा सम्हाला जैसे बढ़ते हुए विन्ध्यगिरि को अगस्त्य भगवान ने छोटा कर दिया था। जब शोकरूपी हिरण्याक्ष बुद्धिरूपी पृथिवी को हर ले गया तब निर्मल गुणों के समूह ब्रह्मा जी से भरत के ज्ञानरूपी विशाल वाराह ने उत्पन्न हो कर उसी क्षण सहसा ही पृथिवी का उद्धार किया। प्रणाम कर एवं सब के हाथ जोड़ कर, तथा श्रीराम, जनक गुरु एवं साधुओं को निहोर कर भरत कहने लगे, आज मेरे अति अनुचित वाक्यों के लिये मुझे आप सब क्षमा कीजियेगा। क्योंकि मेरे मुख से आज कठोर वचन निकलेंगे! ज्यों ही भरत ने सरस्वती जी का स्मरण किया, त्यों ही वे हृदयरूपी मानसरोवर को छोड़ मुखरूपी कमल पर आ विराजीं। विनय, विवेक, धर्म, और नीति माने (मोतियों की) खेती है और भरत जी की वाणी मानों सुन्दर मराली अर्थात् हंसिनी है।

दो०—निरखि विवेक विलोचनहिं, शिथिल सनेह समाज।
करि प्रणाम बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराज॥

ज्ञानरूपी नेत्रों से सभासदों को स्नेह में विह्वल देख, भरत ने सीताराम को स्मरण कर और सब को प्रणाम कर कहा :—

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी। पूज्य परमहित अन्तर्यामी॥
सरल सुसाहिब शीलनिधानू। प्रणत पाल सर्वज्ञ सुजानू॥
समरथ शरणागत हितकारी। गुण-ग्राहक अवगुण अघहारी॥
स्वामि गुसाइँहि सदृश गुसाँई। मोहिं समान मैं स्वामि दोहाई॥
प्रभु पितुवचन मोहवश पेली। आयउँ यहाँ समाज सकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिय अमरपद माहुर मीचू॥
राम रजाइ मेटि मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं॥
सो मैं सब विधि कीन्ह ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥

हे प्रभो! मेरे तो आप ही माता पिता, मित्र, गुरु, स्वामी, पूज्य और अत्यन्त हितैषी हैं। मैं यह बात सत्य कहता हूं अथवा असत्य इसे आप स्वयं जान सकते हैं, क्योंकि आप घट घट में बसने वाले हैं। आप तो सरल, सुन्दर

स्वामी, शीलनिधान, भक्तों के रक्षक, सर्वज्ञ और सुजान हैं। आप समर्थ हैं, शरणागतों की भलाई करने वाले हैं, गुणग्राही तथा अवगुण और पापों के नाश करने वाले हैं, हे प्रभो! आपकी उपमा तो आप स्वयं ही हैं, और नीचता की उपमा मैं स्वयं हूँ। क्योंकि अज्ञानवश स्वामी और पिता की आज्ञा के विरुद्ध मैं सब समाज को साथ ले यहाँ आया हूँ। इस संसार में अच्छे बुरे, ऊँच नीच, सब प्रकार के लोग हैं, जिस प्रकार अमृत अमरत्व का और विष मृत्यु का देने वाला है। मैंने अपने मन में बहुत ढूँढ़ा पर श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा को टालने वाला (मुझे छोड़ और) कोई न दीख पड़ा। सो मैंने सब प्रकार से धृष्टता की, पर हे प्रभो! आपने उस ढिठाई को भी प्रेमवश सेवा ही समझी।

दो०—कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषण भे भूषण सरिस, सुयश चारु चहुँ ओर॥

हे नाथ! आपने अपनी दया और भलाई से मेरा भला ही किया। मेरे सारे दूषण भूषण सरीखे हो गये, और विमल यश चारों ओर फैल गया।

राउर नीति सुबाणि बड़ाई। जगत विदित निगमागम गाई॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलङ्की। नीच निशील निरीश निशङ्की॥
तेउ सुनि शरण सामुहे आये। सकृत प्रणाम किये अपनाये॥
देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुण साधु समाज बखाने॥
को साहब सेवकहिं नेवाजी। आपु समान साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिय सपने। सेवक सकुच सोच उर अपने॥
सो गुसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाय कहौं प्रण रोपी॥
पशु नाचत शुक पाठ प्रवीना। गुण गति नट पाठक आधीना॥

आपकी नीति और आपके सुन्दर वचनों की सारे संसार में बड़ाई हो रही है और वेद शास्त्र भी उसका गान कर रहे हैं। जो मनुष्य क्रूर, कुटिल, दुष्ट, कुबुद्धि, कलङ्की, नीच, शीलरहित, गुणरहित और निर्भय हैं, वे भी यदि आपका सुयश सुन आपके सामने आवें तो प्रणाम करते ही आप उन्हें अपना लेते हैं। उनके

दोषों का भी विचार नहीं करते और उनके गुणों को सब में प्रकट करते हैं। सेवक को निबाहने वाला ऐसा और कौन स्वामी है? जो अपने समान ही अपने सेवक की सब प्रकार से प्रतिष्ठा बढ़ावे। तथा जो अपनी करनी की ओर तो स्वप्न में भी ध्यान न दे और सेवक की सकुच को अपने मन में सोचा करे। मैं हाथ उठा कर दावे के साथ कहता हूँ कि ऐसा स्वामी दूसरा कोई नहीं है। बन्दर आदि पशु नाचने में तथा तोता आदि पक्षी पढ़ने में होते तो चतुर हैं, किन्तु उनकी यह चतुरता उनके मदारी और पालने वालों के हाथ में होती है।

दो०—सो सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर।
को कृपालु बिनु पालि है, बिरदावलि बरजोर॥

आपने भी अपने भक्तों को सुधार कर तथा उनकी प्रतिष्ठा बढ़ा कर, उनको साधुओं का सिरमौर बनाया है। आपको छोड़ ऐसा और कौन कृपानिधान है जो अपने भक्तों को बरजोरी यश प्रदान करे।

शोक सनेह कि बाल सुभाये। आयउँ लाइ रजायसु बाँये॥
तबहुँ कृपालु हेरि निज ओरा। सबहिं भाँति भल मानेहु मोरा॥
देखेउँ पायँ सुमङ्गल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला॥
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू॥
कृपा अनुग्रह अङ्ग अघाई। कीन्ह कृपानिधि सब अधिकाई॥
राखा मोर दुलार गुसाँई। अपने शील सुभाव भलाई॥
नाथ निपट मैं कीन्ह ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई॥
अविनय विनय यथा रुचि बानी। छमिय देव अति आरत जानी॥

शोक से, प्रेम से या लड़कबुद्धि से कहिये मैं आज्ञा को उल्लंघन कर चला आया हूँ। तब भी दया करने वाले आपने अपनी ओर निहार सब प्रकार मेरा भला ही किया है। सुमङ्गलों की जड़ आपके चरणों के दर्शन कर स्वामी को स्वभाव ही से अनुकूल पाया। बड़े भाग्य से इस समाज को देखा कि मेरी बड़ी चूक पर भी स्वामी का प्रेम है। आपकी कृपा और अनुग्रह से मैं अपने शरीर में फूले

अङ्क नहीं समाता। आपने जो कुछ किया वह बहुत अधिक है। स्वामिन्! आपने अपने शील, स्वभाव और भलाई से मेरे ऊपर प्रेम रखा। आपके सामने सङ्कोच छोड़ मैंने बड़ी ढिठाई की है। विनयरहित होकर, अथवा नम्रतापूर्वक मैंने मनमानी बातें कही हैं, सो हे स्वामिन्! मुझे अति दीन जान कर आप क्षमा कीजिये।

दो०—सुहृद सुजान सुसाहिबहिं, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइय देव अब, सबै सुधारिय मोरि॥

हितैषी, चतुर और अच्छे मालिक से बहुत कहना बड़ा दोष है, इसलिये हे देव! अब आज्ञा दीजिये और मेरी सब भूलों को सुधारिये।

प्रभु-पद-पद्म पराग दुहाई। सत्य सुकृत सुख सींव सुहाई॥
सो करि कहौं हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥
सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसाद जन पावै देवा॥
अस कहि प्रेम विवश भे भारी। पुलक शरीर विलोचन बारी॥
प्रभु-पद-कमल गहे अकुलाई। समय सनेह न सो कहि जाई॥
कृपासिन्धु सन्मानि सुबाणी। बैठाये समीप गहि पाणी॥
भरत विनय सुनि देखि स्वभाऊ। शिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥

आपके जो चरणकमल सत्य पुण्य और सुख की सीमा हैं, उनकी शपथ खा कर मैं अपने मन की बात कहता हूँ कि जागते, सोते और स्वप्न में मेरी यही इच्छा बनी रहती है कि स्वार्थ, कपट तथा अर्थ धर्म काम मोक्ष की अभिलाषा छोड़, सहज स्नेह से स्वामी की सेवा करूं। स्वामी की आज्ञा पालने से बढ़ कर कोई दूसरी सेवा नहीं है, उसी का यह दास प्रार्थी है। यह कह भरत जी प्रेम विवश हो गये और उनका शरीर पुलकित हो गया तथा नेत्रों में आँसू भर आये। फिर विकल हो उन्होंने श्रीराम जी के पैर पकड़ लिये। उस समय का वह अनुराग वर्णन नहीं किया जा सकता। कृपालु श्रीरामचन्द्र जी ने अच्छे वचनों द्वारा आदर कर, और हाथ पकड़ कर, भरत जी को अपने पास बिठाया। भरत की

प्रार्थना सुन, और उनके स्वभाव को देख सभा सहित श्रीरामचन्द्र जी प्रेम से शिथिल हो गये।

छं०--रघुराउ शिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी।
मन महँ सराहत भरत भायप भक्ति की महिमा घनी॥
भरतहिं प्रशंसत विबुध बरसत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी विकल सब लोग सुनि सकुचे निशागम नलिन से॥

श्रीरामचन्द्र, साधुमण्डली, मुनि, और मिथिलेश प्रेम में शिथिल हो गये और मन ही मन भरत के भ्रातापने की, उनके अनुराग की तथा उनकी महिमा की सराहना करने लगे। मलिन मन देवता भी भरत की बड़ाई करते और पुष्पों की वर्षा करते। अन्य लोग तो सुन कर ऐसे विकल हो गये जैसे रात होने पर कमल सकुचा जाते हैं।

सो०—देखि दुखारी दीन, दुहुँ समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन, मुये मारि मङ्गल चहत॥

अवधवासी और जनकपुरवासी स्त्री पुरुषों को दीन दुखी देख कर भी इन्द्र ऐसा नीच है कि मरे हुओं को मार कर भी मङ्गल चाहता है।

कपट कुचालि सींव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाक-रिपु-रीती। छली मलीन न कतहुँ प्रतीती॥
प्रथम कुमति करि कपट सकेला। सो उचाट सब के सिर मेला॥
सुरमाया सब लोग विमोहे। राम प्रेम अतिशय न विछोहे॥
भए उचाट वश मन थिर नाहीं। छण बन रुचि छण सदन सुहाहीं॥
द्विविध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिन्धु संगम जिमि वारी॥
द्विचित कतहुँ परितोष न लहहीं। एक एकसन मर्म न कहहीं॥
लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू। सरिस श्वान मघवा निज बानू॥

इन्द्र से बढ़ कर छली और कुचाली कोई नहीं है। क्योंकि उसे दूसरे का बुरा करना और अपना काम बनाना बड़ा प्रिय है। इन्द्र की चाल कौवे जैसी है

जो बड़ा कपटी और मलिन होता है तथा उसे किसी पर विश्वास नहीं होता। पहले तो उसने कपट को एकत्र किया फिर उसे उठा कर सब के सिर मढ़ दिया। देवताओं की माया ने सब को मोहित कर लिया है, तो भी वे श्रीराम जी के प्रेम में बिछोह नहीं चाहते। उनका मन उच्चाट होने के कारण स्थिर नहीं रहा। क्षण में घर और क्षण में वन अच्छा लगने लगा। मन में दुविधा उत्पन्न हो जाने के कारण प्रजा का मन ऐसा दुःखी है जैसे समुद्र और नदी के सङ्गम से जल लहरा जाता है। दुचित्ते जनों को कहीं भी सन्तोष नहीं होता और न वे परस्पर अपना भेद कहते हैं। यह दशा देख श्रीराम जी ने मन ही मन हँस कर कहा कि इन्द्र की प्रकृति कुत्ते जैसी है।

दो०—भरत जनक मुनिगण सचिव, साधु सचेत विहाय।
लगी देवमाया सबहिं, यथायोग्य जन पाय॥

भरत, जनक, मुनिगण, मन्त्री तथा अन्य समस्त साधु महात्माओं को छोड़, अन्य सब जनों को देवताओं की माया यथायोग्य व्याप्त हुई।

कृपासिन्धु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुरपति छल भारे॥
सभा राव गुरु महिसुर मन्त्री। भरत-भक्ति सब की मति यन्त्री॥
रामहिं चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत वचन सिखे से॥
भरत प्रीति नित विनय बड़ाई। सुनत सुखद बरणत कठिनाई॥
जासु विलोकि भक्ति लव लेशू। प्रेम मगन मुनिगण मिथिलेशू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भक्ति प्रभावसुमतिहिय हुलसी॥
आपु छोट महिमा बड़ि जानी। कवि-कुलकानिमानिसकुचानी॥
कहि न सकत गुण रुचि अधिकाई। मति गति बाल वचन की नाई॥

दयालु श्रीरामचन्द्र जी ने अपने प्रेम के कारण और इन्द्र के कपट से लोगों को दुखी देखा। सभा, राजा, गुरु, ब्राह्मण और मन्त्रिगण, इन सब की मति को भरत की भक्ति ने अपने वश में कर लिया। वे चित्र लिखे जैसे श्रीराम जी को निहारने लगे और सिखाये के समान सकुच कर वचन बोलने लगे। भरत

की नित्य की प्रीति, नम्रता और बड़ाई सुनने में सुखदायी और वर्णन करने में सहज नहीं है। जिनकी भक्ति के लवलेश के देखने से मुनीश्वर लोग तथा महाराज जनक स्नेह मग्न हो गये, उनकी बड़ाई को तुलसीदास कैसे कह सकते हैं। उन्हीं की भक्ति की महिमा ही से तो हृदय में अच्छी बुद्धि उत्पन्न हुई सो वह बुद्धि अपने को लघु और महिमा को बड़ी जान कर और कवियों के कुल से डर कर, सङ्कोच करती है। इच्छा तो बहुत है, पर गुणों को कह नहीं सकती और बुद्धि की गति बालक के वचन जैसी हो गयी है।

दो०—भरत विमल यश विमल विधु, सुमति चकोर कुमारि।
उदित विमल जन हृदय नभ, यकटक रही निहारि॥

भरत का विमल यशरूपी उज्ज्वल पूर्णचन्द्र, कवियों के शुद्धान्तःकरण में उदय हुआ है। उसे सुन्दर बुद्धिरूपी चकोर जो कुमारी के समान है, टकटकी बाँध कर देख रही है।

भरत स्वभाव न सुगम निगमहू। लघु मति चापलता कवि छमहू॥
कहत सुनत सतिभाव भरत को। सीय-राम-पद होइ न रत को॥
सुमिरत भरतहिं प्रेम राम को। जेहिं न सुगम तेहिं सरिस बाम को॥
देखि दयालु दशा सब ही की। राम सुजान जानि जनजी की॥
धर्मधुरीण धीर नयनागर। सत्य सनेह शील सुखसागर॥
देश-काल लखि समय समाजू। नीति प्रीति-पालक रघुराजू॥
बोले वचन बाणि सरबस से। हितपरिणाम सुनत शशिरस से॥
तात भरत तुम धर्मधुरीणा। लोक वेद विधि परम प्रवीणा॥

तुलसीदास जी कहते हैं, जब वेदों के लिये भी भरत का स्वभाव सहज नहीं है तब कविजन मेरी छोटी बुद्धि और चपलता को क्षमा कर दें। भरत जी के सत्भाव को कहते सुनते किसकी प्रीति सीताराम जी के चरणों में न होगी। भरत जी को याद करने से श्रीरामचन्द्र जी जिस पर स्नेह न करें, उसके समान अभागा इस संसार में और कौन है। दयालु तथा परम सुजान श्रीराम जी ने सब

की दशा देखो और भक्तों के हृदय की दशा जानो। धर्मधुरन्धर, धीर, नीति निपुण, सत्य, प्रेम, शील, एवं सुख के समुद्र, नीति तथा प्रीति के पालन करने वाले श्रीराम जी ने देश, काल, और समाज को देख, सरस्वती के सर्वस्व जैसे वचन कहे। वे वचन अन्त में हितकर, और सुनने में अमृतोपम हैं। वे बोले, हे भरत! तुम धर्मधुरीण लोक और वेद की रीति में बड़े चतुर हो।

दो०—कर्म वचन मानस विमल, तुम समान तुम तात।
गुरु समाज लघु बन्धु गुण, कुसमय किमि कहिजात॥

हे प्यारे! मनसा वाचा कर्मणा निर्मल अपने समान तुम स्वयं ही हो। बड़ों के सामने छोटे भाई के गुण, कुसमय में कैसे कहे जाँय?

जानहु तात तरणि कुल रीती। सत्य-सन्ध पितु कीरति प्रीती॥
समय समाज लाज गुरुजन की। उदासीन हितअनहित मनकी॥
तुमहि विदित सब ही कर मर्मू। आपन मोर परम हित धर्मू॥
मोहिं सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहौं अवसर अनुसारा॥
तात तात बिनु बात हमारी। केवल कुल-गुरु-कृपा सम्हारी॥
नतरु प्रजा पुरजन परिवारू। हमहिंसहित सबहोत दुखारू॥
जो बिनु अवसर अथव दिनेशू। जग केहिं कहौ न होइ कलेशू॥
तस उत्पात तात विधि कीन्हा। मुनिमिथिलेशराखिसबलीन्हा॥

हे तात! तुम सूर्यवंश की रीति को जानते हो और सत्यसन्ध पिता की कीर्त्ति और प्रीति को भी जानते हो। साथ ही समय समाज, बड़े लोगों की लाज तथा उदासीन, मित्र और शत्रु के मन का हाल भी जानते हो। तुम सब का भेद जानते हो और अपना और मेरा धर्म भी जानते हो। यद्यपि मुझे तुम्हारे ऊपर सब प्रकार से भरोसा है तो भी अवसर के अनुसार कहता हूँ। हे तात! पिता के बिना हमारी बात केवल वसिष्ठ जी की कृपा से बनी। नहीं तो क्या प्रजा, क्या कुटुम्बी, क्या नगरनिवासी और क्या हम सब को दुःखी होना पड़ता। यदि असमय में सूर्यास्त हो तो संसार को क्लेश क्यों न हो। हे तात! वैसा ही

उपद्रव ब्रह्मा ने किया, किन्तु वशिष्ठ जी और महाराज जनक ने सब बात सम्हाल ली।

दो०—राज काज सब लाज पति, धर्म धरणि धन धाम।
गुरु प्रभाव पालिहि सबहिं, भल होइहिं परिणाम॥

राजकाज, सारी लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथिवी, धन और धाम—सब को गुरु का प्रताप पालेगा, और अन्त में भला होगा।

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरुप्रसाद रखवारा॥
मातु पिता गुरु स्वामि निदेशू। सकल धर्म धरणी धर शेशू॥
सो तुम करहु करावहु मोहू। तात तरणि-कुल-पालक होहू॥
साधन एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी॥
सो विचारि सहि संकट भारी। करहु प्रजा परिवार सुखारी॥
बाँटि विपति सब ही मिलि भाई। तुमहिं अवधि भरि अति कठिनाई॥
जानि तुमहिं मृदु कहौं कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा॥
होहिं कुठाँव सुबन्धु सुहाये। ओड़ि हाथ अशनि के घाये॥

समाज सहित हमारा तुम्हारा रखवाला, क्या घर और क्या बन में गुरु-प्रसाद ही है। माता पिता के उपदेश पर चलने वाला, सारे धर्मों को वैसे ही उठा सकता है जैसे शेषनाग पृथिवी को धारण किये हुए हैं। सो तुम भी वही करो और मुझसे भी वही कराओ और इस प्रकार सूर्यवंश के पालक बनो। यह एक साधन सब सिद्धियों का देनेवाला है। जिस प्रकार त्रिवेणी के सेवन से साधक को यश, मुक्ति और सम्पति मिलती है—वैसे ही माता पिता की आज्ञा पालन करने से तुमको भी मिलेगी। अत: यह सोच कर भले ही भारी क्लेश क्यों न सहना पड़े, तुम प्रजा और परिवार को प्रसन्न करो। यद्यपि इस विपत्ति को सब ने मिल कर बाँट लिया है तो भी चौदह वर्ष की अवधि तक तुमको बड़ी कठिनता है। हे तात! तुमको कोमल जानता हुआ भी कठोर वचन कहता हूँ। पर करूँ क्या, यह समय ही बुरा है, इसलिये मेरा कहना अनुचित नहीं है। जब बुरा समय

आता है तब भाई ही काम आते हैं। जैसे तलवार के वार को हाथ ही से रोकते हैं।

दो०—सेवक कर पद नयन से, मुख से साहिब होइ।
तुलसी प्रीतिकि रीति सुनि, सुकवि सराहहिं सोइ॥

सेवक तो, हाथ पैर और नेत्र के समान हो और प्रभु मुख के समान हो। तुलसीदास का कहना है कि ऐसी प्रीति की रीति को सुन कविजन प्रशंसा करते हैं।

सभा सकल मुनि रघुवर बानी। प्रेम पयोधि अमिय जनु सानी॥
शिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दशा चुप शारद साधी॥
भरतहिं भयउ परम संतोषू। सन्मुख स्वामि विमुख दुख दोषू॥
मुख प्रसन्न मन मिटा विषादू। भा जनु गूँगहिं गिरा प्रसादू॥
कीन्ह सप्रेम प्रणाम बहोरी। बोले पाणि पङ्करुह जोरी॥
नाथ भयो सुख साथ गये को। लहेउँ लाभ जग जन्म भये को॥
अब कृपालु जस आयसु होई। करौं शीश धरि सादर सोई॥
सो अवलम्ब देव मोहिं देवा। अवधि पार पायउँ जेहिं सेवा॥

श्रीराम जी की प्रेमरूपी समुद्र से निकली और अमृत से मानों सनी वाणी सुन सारी सभा ऐसे शिथिल हो गयी, मानों सब ने स्नेह की समाधि लगा ली हो। उस दशा को देख सरस्वती ने भी मौन धारण कर लिया। भरत, श्रीरामचन्द्र जी को सम्मुख और दुःख दोषों को विमुख देख बड़े सन्तुष्ट हुए। उनका मुख प्रसन्न हो गया और मानसिक ताप दूर हो गया। मानो किसी गूँगे पर सरस्वती प्रसन्न हो गयी हों। तदनन्तर भरत जी ने हाथ जोड़ और प्रणाम कर कहा, हे नाथ! साथ जाने का अब मुझे सुख मिला, और इस संसार में जन्म लेना सफल हुआ। हे दयानिधान! अब आप जो आज्ञा दें वह सब आदर सहित शिरोधार्य कर, करने को उद्यत हूँ। हे देव! अब मुझे ऐसा कोई सहारा दीजिये जिससे मैं १४ वर्ष की अवधि का पार पाऊँ।

दो०—देव देव अभिषेक हित, गुरु अनुशासन पाइ।
आनेउँ सब तीरथसलिल, तेहिं कहँ काह रजाइ॥

हे देव! गुरु के आज्ञानुसार आपके राज्याभिषेक के लिये मैं अपने साथ सब तीर्थों का जल लाया हूँ, उसके लिये क्या आज्ञा है?

एक मनोरथ बड़ मन माहीं। समय सकोच जात कहि नाहीं॥
कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बाणि सनेह सुहाई॥
चित्रकूट मुनि थल तीरथ वन। खगमृगसरसरि निर्झरगिरिगन॥
प्रभु-पद अङ्कित अवनि विशेखी। आयसु होय तो आवों देखी॥
अवशि अत्रि आयसु सिरधरहू। तात विगत भय कानन चरहू॥
मुनि प्रसाद वन मङ्गलदाता। पावन परम सुहावन भ्राता॥
ऋषि नायक जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथ जल थल तेहीं॥
सुनि प्रभुवचन भरत सुख पावा। मुनि-पद-कमलमुदित सिरनावा॥

मेरे मन में एक बड़ी अभिलाषा है, किन्तु सङ्कोचवश कही नहीं जाती। (इस पर श्रीरामचन्द्र जी ने कहा) हे तात! कहो। तब उनकी आज्ञा पाकर वे सुहावनी और प्रेम भरी वाणी बोले। नाथ! वैसे तो इस चित्रकूट में अनेक मुनियों के आश्रम, तीर्थ, वन, पक्षी, हिरन, नदी, सरोवर, झरने, पहाड़ आदि अनेक देखने की वस्तुएँ हैं। किन्तु यदि आज्ञा पाऊँ तो आपके चरणों से अङ्कित भूमि जा कर देख आऊँ। श्रीराम जी ने कहा, "महर्षि अत्रि से आज्ञा ले तुम निर्भय हो वन में अवश्य घूम फिर आओ, हे भाई! मुनि (अत्रि) की कृपा से यह वन मङ्गलदायक, परम पावन और सुन्दर सुहावना हो रहा है और अत्रि जी महाराज जहां बतलावें वहीं सब तीर्थों के जल को रख आना। श्रीराम जी के यह वचन सुन भरत जी प्रसन्न हुए और अत्रि मुनि को प्रणाम किया।

दो०—भरत-राम-संवाद सुनि, सकल सुमङ्गल-मूल।
सुर स्वारथी सराहिं कुल, हर्षित वर्षहिं फूल॥

सब सुमङ्गलों के मूल इस श्रीराम और भरत के संवाद को सुन स्वार्थी देवता सूर्यकुल की सराहना करने और प्रसन्न हो फूल बरसाने लगे।

धन्य भरत जय राम गुसाँई। कहत देव हर्षत बरिआई॥
मुनि मिथिलेश सभा सब काहू। भरतवचन सुनि भयउ उछाहू॥
भरत राम-गुण-ग्राम-सनेहू। पुलकि प्रशंसत राव विदेहू॥
सेवक स्वामि सुभाव सुहावन। नेम प्रेम अति पावन पावन॥
मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद अति अनुरागे॥
सुनि सुनि राम-भरत-संबादू। दुहुँ समाज हिय हर्ष विषादू॥
राम मातु दुख सुख सम जानी। कहि गुण दोष प्रबोधी रानी॥
एक करहिं रघुवीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई॥

देवता प्रसन्न हो बारम्बार कहते हैं, कि धन्य हैं भरत, श्रीरामचन्द्र जी की जै हो। भरत के वचन सुन वसिष्ठ और महाराज जनक तथा अन्य सब सभासदों को बड़ा हर्ष हुआ। पुलकित वदन हो महाराज जनक भरत और श्रीरामचन्द्र जी के गुणों की तथा प्रेम की प्रशंसा करने लगे। (वे बोले) सेवक और स्वामी का भाव बड़ा सुन्दर है, और इनका नेम और प्रेम पवित्र से भी बढ़ कर अति पवित्र है। मन्त्री और सभासद भी प्रसन्न हो अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार सराहना करने लगे। श्रीराम और भरत की बातचीत सुन अयोध्यावासी और जनकपुरवासी प्रसन्न हुए और साथ ही दुःखी भी हुए। कौशल्या जी ने सुख दुख को समान समझ तथा गुण दोषों को बतला अन्य रानियों को समझाया। तब कोई तो श्रीराम जी की प्रशंसा करने लगीं और कोई भरत की भलाई की सराहना करने लगीं।

दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन, शैल समीप सुकूप।
राखिय तीरथ तोय तहँ, पावन अमल अनूप॥

अत्रि ने भरत जी से कहा कि तुम पर्वत के पास वाले सुन्दर कूप में अनूप पवित्र और विमल तीर्थों के जल को पधरा दो।

भरत अत्रि अनुशासन पाई । जल भाजन सब दिये चलाई ॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू । सहित गये जहँ कूप अगाधू ॥
पावन पाथ पुण्य थल राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ॥
तात अनादि सिद्धि थल येहू । लोपेउ काल विदित नहिं केहू ॥
तब सेवकन्ह सरस थल देखा । कीन्ह सुजल हित कूप विशेखा ॥
विधिवश भयउ विश्व उपकारू । सुगम अगम अति धर्म विचारू ॥
भरत कूप अब कहिहहिं लोगा । अति पावन तीरथ जल योगा ॥
प्रेम सनेम निमज्जहिं प्राणी । होइहिं विमल कर्म मन वाणी ॥

अत्रि की आज्ञा पाकर भरत जी ने सारे जल के पात्र भिजवा दिये । तदनन्तर शत्रुघ्न भरत और साधुओं सहित अत्रि मुनि वहाँ गये जहाँ वह गहरा कूप था । जब वह पवित्र जल इस कूप में पधरा दिया गया तब स्नेह में मग्न हो अत्रि कहने लगे, हे तात ! यह स्थान सदा से सिद्धस्थान रहा है, किन्तु बीच में समय पा कर लुप्त हो गया था, अतः इसे कोई नहीं जानता था । उस स्थान को सरस देख सेवकों ने सुन्दर जल के लिये उसे विशेषरूप से साफ़ कर डाला । दैवयोग से संसार का उपकार हुआ और अति कठिन धर्म का विचार सहज हो गया । अत्यन्त पवित्र तीर्थों के जल इस कूप में पड़ जाने से यह परम पवित्र हो गया और अब से यह कूप भरत जी का कूप कहला कर प्रसिद्ध होगा । इस कूप के जल से जो प्राणधारी स्नान करेंगे, वे मन वचन कर्म से पवित्र हो जायँगे ।

दो०—कहत कूप महिमा सकल, गये जहाँ रघुराव ।
अत्रि सुनायहु रघुवरहिं, तीरथ-पुण्य-प्रभाव ॥

उस कूप की प्रशंसा करते हुए सब जन लौट कर श्रीरामचन्द्र जी के पास गये और अत्रि ने श्रीराम जी को तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया ।

कहत धर्म इतिहास सप्रीती । भयउ भोर निशि सो सुख बीती ॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई । राम अत्रि-गुरु-आयसु पाई ॥

सहित समाज साज सब सादे। चले राम वन अटन पयादे॥
कोमलचरण चलत बिनु पनहीं। भै मृदुभूमि सकुचि मन मनहीं॥
कुश कण्टक कांकरी कुराई। कटुक कठोर कुवस्तु दुराई॥
महि मञ्जुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिविध सुख लीन्हे॥
सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। विटप फूल फल तृण मृदु लाहीं॥
मृग बिलोकि खग बोलिसुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी॥

बड़ी प्रीति से धर्म की कथा कहते सुनते वह रात आनन्दपूर्वक पूरी हुई और सबेरा हो गया। नित्यकर्म करके भरत और शत्रुघ्न, समाज सहित श्रीराम और अत्रि की अनुमति ले, साधारण साज से श्रीराम जी के वन में घूमने गये। भरत जी के कोमल चरणों को बिना जूते देख, पृथिवी मन में सकुची और कोमल हो गयी। कुश, काँटे और कंकड़ों को अलग कर तथा कठिन कठोर और बुरी वस्तुओं को छिपा कर, पृथिवी ने साफ़ सुथरा मार्ग कर दिया और सुखपूर्वक शीतल मन्द, सुगन्ध पवन चलने लगा। बादलों ने छाया की, देवताओं ने फूल बरसाये। वृक्ष फूलने फलने लगे और घास कोमल हो गयी। हिरने देखने लगे और पक्षी मधुर कलरव करने लगे। उन सब को श्रीराम जी के प्यारे समझ उनकी सब सेवा करने लगे।

दो०—सुलभ सिद्धिसब प्राकृतहुँ, राम कहत जमुहात।
राम प्राण प्रिय भरतकहुँ, यह न होइ बड़ि बात॥

ऐसा होना कोई बड़ी बात नहीं क्योंकि जब जमुहाई लेते समय रामनाम कहने वाले को सारी सिद्धियाँ सुगम हो जाती हैं, तब भरत को तो श्रीराम जी प्राणों से भी बढ़ कर प्यारे हैं।

यहिविधि भरतफिरत वन माहीं। नेम प्रेम लखि मुनि सकुचाहीं॥
पुण्य जलाशय भूमि विभागा। खगमृग तरुतृण गिरिवनबागा॥
चारु विचित्र पवित्र विशेखी। बूझत भरत दिव्य थल देखी॥
सुनि मन मुदित कहत ऋषिराऊ। हेतु नाम गुण पुण्य प्रभाऊ॥

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रणामा। कतहुँ विलोकत वन अभिरामा॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥
देखि स्वभाव सनेह सुसेवा। देहि अशीश मुदित वन-देवा॥
फिरहिं गये दिन पहर अढ़ाई। प्रभु-पद-कमल विलोकहि आई॥

भरत इस प्रकार उस वन में घूम रहे हैं कि उन्हें देख मुनिजन भी सकुचाते हैं। पवित्र सरोवर, भूमिखण्ड, खग, मृग, वृक्ष, घास, पर्वत, वन और बाग, सुन्दर विचित्र तथा अति पवित्र सुन्दर स्थानों को देख, भरत जी पूँछते हैं और ऋषिराज सुन कर, मन में प्रसन्न होते हैं और उनके होने का कारण, उनका नाम, उनका गुण और उनके पुण्य का प्रभाव वर्णन करते हैं। कहीं तो वे उस वन में स्नान करते और कहीं प्रणाम करते हैं और कहीं की वे सुन्दरता निहारते हैं और कहीं मुनि की अनुमति के अनुसार बैठ कर सीताराम का स्मरण करते हैं। भरत जी के स्वभाव, प्रेम और उनकी सुन्दर सेवा को देख वनदेवता प्रसन्न हो उन्हें आशीर्वाद देते हैं। अढ़ाई पहर दिन बीतने पर, वे लौटते हैं और आकर भगवान् के कमल समान चरणों के दर्शन करते हैं।

दो०—देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनतहरिहर सुयश, गयउ दिवस भइ साँझ॥

पाँच दिन में भरत जी ने वहाँ के सारे तीर्थ और आश्रम देख डाले। विष्णु और महादेव के सुन्दर यश को कहते सुनते दिन बीत गया और सन्ध्या हो गयी।

भोर न्हाइ सब जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुति राजू॥
भल दिन आजु जानि मन माहीं। राम कृपालु कहत सकुचाहीं॥
गुरु नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचिरामफिरिअवनिविलोकी॥
शील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न रामसम स्वामि सकोची॥
भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर विशेखी॥
करि दण्डवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी॥

मोहिं लगि सबहिं सहेउ संतापू। बहुत भाँति दुख पावा आपू॥
अब गोसाइँ मोहिं देहु रजाई। सेवौं अवध अवधि लगि जाई॥

सवेरा होते ही सारा समाज फिर एकत्र हुआ। उस समाज में महाराज जनक और ऋषि भी थे। दयालु श्रीराम जी जानते हैं कि आज का दिन अच्छा है, किन्तु यह कहते सकुचाते हैं। श्रीराम जी ने गुरु, भरत, जनक और सभा की ओर देख और सकुच कर पृथिवी की ओर देखा। उस समय सारी सभा ने उनके शील की प्रशंसा कर सोचा कि श्रीराम जी के समान सकुचाने वाला प्रभु कहीं कोई नहीं है। श्रीराम जी का रुख देख और बहुत धैर्य धारण कर चतुर भरत उठे और प्रणाम कर, हाथ जोड़ बोले, हे स्वामी! आपने मेरी सब अभिलाषाएँ पूरी कीं। आपने मेरे अर्थ सब प्रकार के सन्ताप सहे, और अनेक प्रकार के दुःख उठाये। अतः हे नाथ! अब मुझे आज्ञा दो कि मैं जा कर १४ वर्ष तक अयोध्यापुरी का सेवन करूँ।

दो०—जेहिं उपाय पुनि पाँय जन, देखै दीनदयालु।
सो शिष देइय अवधि लगि, कोशलपालकृपालु॥

हे दयानिधान! हे अयोध्या के पालन करने वाले! दीनदयाल! वह शिक्षा मुझे दीजिये, जिससे यह दास अवधि तक अयोध्या में रह कर फिर आपके चरणों के दर्शन करे।

पुरजन परिजन प्रजा गुसाँई। सब शुचि सरस सनेह लगाई॥
राउर बदि भल भव दुखदाहू। प्रभु बिनु बादि परमपद लाहू॥
स्वामि सुजान जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥
प्रणतपाल पालहिं सब काहू। देव दुहूँ दिशि ओर निबाहू॥
असमोहिं सबविधि भूरिभरोसो। किये विचार न सोच खरोसो॥
आरति मोरि नाथ कर छोहू। दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू॥
यह बड़ दोष दूरि करि स्वामी। तजि सकोच सिखइय अनुगामी॥
भरत विनय सुनि सबहिं प्रशंसा। क्षीर नीर विवरण गति हंसा॥

हे नाथ ! नगर के जनों का, कुटुम्बियों का और प्रजा का आपके प्रति सत्य सरस प्रेम और सम्बन्ध है। आपके अर्थ संसार का दुःखदाह भी भला है किन्तु स्वामी के विना मोक्ष भी मिले तो वह भी वृथा है। हे नाथ ! आप चतुर हैं, तथा अपने सब भक्तों के मन की रुचि, लालसा और रहन जानते हैं। हे दीनदयालु ! आप सब को पालते हैं और हे देव ! आप घर और वन, दोनों ओर को निबाहिये। मुझे सब प्रकार से इस बात का पूरा भरोसा है कि विचार करने से कुछ भी चिन्ता नहीं। मुझे तो मेरे दुःख और स्वामी की दया ने हठ से ढीठ कर दिया है। अतः हे स्वामी ! इस बड़े दोष को दूर करके और सङ्कोच छोड़ कर, सेवक को शिक्षा दीजिये। जल और दूध को अलग करने की गति में हंस जैसे भरत की विनती सुन सब ने उनकी प्रशंसा की।

दो०—दीनबन्धु सुनि बन्धु के, वचन दीन छल हीन।
देश काल अवसर सरिस, बोले राम प्रवीन॥

भाई के कपटहीन और दीन वचन सुन, दीनबन्धु श्रीराम जी ने, देशकाल और अवसर के अनुसार कहा।

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिन्ता गुरुहिं नृपहिं घर वन की॥
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेशू। हमहिं तुमहिं सपनेहु न कलेशू॥
मोर तुम्हार परम पुरुषारथ। स्वारथ सुयश धर्म परमारथ॥
पितु आयसु पालिय दुहुँ भाई। लोक वेद भल भूप भलाई॥
गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले। चलत सुभग पग परत न खाले॥
अस विचारि सब सोच विहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥
देश कोश पुरजन परिवारू। गुरु-पद रजहिं लाग छरु भारू॥
तुममुनि मातु सचिव सिख मानी। पालहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥

हे तात ! तुम्हारी, हमारी, कुटुम्ब की घर की और वन की चिन्ता महाराज जनक जी ही को है। गुरु वसिष्ठ, और महाराज जनक हमारे ऊपर हैं। अतः हमें और तुम्हें स्वप्न में भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं है। हमारा तुम्हारा बड़ा

भारी पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुन्दर यश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि दोनों भाई पिता की आज्ञा पर चलें। ऐसा करने से हम दोनों लोक और वेद में भले कहावेंगे, और राजा की भी भलाई होगी। गुरु, पिता, माता और स्वामी की आज्ञा का पालन करना मानों सुन्दर मार्ग पर चलना है, जिससे खाली पैर नहीं पड़ता। यह विचार और सारी चिन्ताओं को त्याग कर तुम जा कर चौदह वर्ष तक अयोध्या का पालन करो। देश, खजाना, नगर के लोग और कुटुम्बी आदि सब का रक्षण और पालन भार गुरु के चरणों की रज के आसरे रहेगा। तुम वसिष्ठ मुनि, माता और मन्त्री की शिक्षा के अनुसार, प्रजा पृथिवी तथा राजधानी का पालन करो।

दो०—मुखिया मुख सों चाहिये, खान पान को एक।
पालै पोषै सकल अँग, तुलसी सहित विवेक॥

तुलसीदास कहते हैं कि मुख के समान मुखिया को होना चाहिये। मुख खाने पीने को तो अकेला एक है किन्तु वह बहुत सोच विचार कर शरीर के समस्त अङ्गों का पालन पोषण करता है।

राजधर्म सरबस इतनोई। जिमि मन माहिं मनोरथ गोई॥
बन्धु प्रबोध कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोष न शाँती॥
भरत शील गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह विवश रघुराजू॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत शीश धरि लीन्ही॥
चरण पीठि करुणानिधान के। जनु युग यामिक प्रजा प्रान के॥
सम्पुट भरत सनेह रतन के। आखर युग जनु जीव जतन के॥
कुल कपाट कर कुशल करम के। विमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलम्ब लहे ते। अस सुख जस सिय-राम रहे ते॥

राजनीति का सर्वस्व यह है कि, जिस प्रकार मन में मनोरथ छिपा कर रक्खे जाते हैं उसी प्रकार राजा अपने विचारों को गुप्त रक्खे। इस तरह भाई को बहुत समझाया, किन्तु बिना किसी आधार के भरत का मन

सन्तुष्ट और शान्त न हुआ। भरत के शील, और गुरु एवं मंत्रियों के सङ्कोच से श्रीरामचन्द्र जी प्रेम के बश हो गये। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने कृपा कर पैर के खड़ाऊँ दे दिये, जिन्हें भरत ने बड़े सम्मान के साथ अपने माथे पर रखे। करुणानिधान की चरणपादुका मानों प्रजा के प्राणों के दो रखवालों की तरह हैं। भरत के स्नेह को रखने के लिये संपुट और जीवों का उद्धार करने के लिये ये दोनों अक्षर (अर्थात् रकार और मकार) हैं। रघुवंश की कुल परम्परा को भली प्रकार रक्षा करने के लिये ये दोनों अक्षर किवाड़े हैं और श्रेष्ठ कर्म हाथ हैं तथा सेवा एवं सुन्दर धर्म के विमल ज्योति सम्पन्न नेत्र हैं। इस अवलम्ब को पा कर भरत जी ऐसे प्रसन्न हुए जैसे वे सीताराम के रहने से प्रसन्न होते थे।

दो०—माँगेउ बिदा प्रणाम करि, राम लिये उर लाय।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसर पाय॥

जब श्रीभरत जी ने प्रणाम कर, बिदा माँगी, तब श्रीराम जी ने उनको छाती से लगा लिया। इतने में कुटिल इन्द्र ने कुसमय पा लोगों के चित्त का उच्चाटन कर दिया।

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आश सब जीवन जीकी॥
नतरु लषण-सिय-राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा॥
राम कृपा अवरेब सुधारी। बिबुध धार भइ गुणद गुहारी॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रस कहि न परत सो॥
तन मन वचन उमँगि अनुरागा। धीर-धुरन्धर धीरज त्यागा॥
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दशा सुर सभा दुखारी॥
मुनिगण गुरुजन धीर जनक से। ज्ञान अनल मन कसे कनक से॥
जे बिरञ्चि निर्लेप उपाये। पद्म-पत्र जिमि जग जल जाये॥

यह कुचाल सब को अच्छी लगी और चौदह वर्ष की अवधि तक सब को जीवित रहने की आशा बँधी। नहीं तो सीताराम और लक्ष्मण के वियोगरूपी कुरोग

से सब लोग मर मिट जाते। श्रीरामजी की दया से टेढ़ी चाल भी सीधी होगयी। देवताओं की कुचाल भी लाभदायी और साहाय्यप्रद हुई। भाई भरत का भुजा भर श्रीराम जी से मिलने का आनन्द वर्णन नहीं हो सकता। तन, मन, वचन से ऐसा अनुराग उमड़ा कि धर्मधुरीण धीर श्रीराम जी का धीरज छूट गया। उनके नेत्रकमलों से अश्रु प्रवाहित होते देख. देव सभा भी दुखित हुई। मुनियों के समूह, वसिष्ठ और जनक सरीखे धीरजवान, जिन्होंने अपने सुवर्ण जैसे मन को ज्ञानाग्नि में तपा रखा है और जो इस संसार के प्रपञ्च से इस प्रकार अलग हैं जैसे कमल पत्र जल में रह कर भी जल से अलग रहता है।

दो०—तेउ विलोकि रघुवर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भये मगन तन मन वचन, सहित विराग विचार॥

वे भी भरत और श्रीराम जी की अनूप और अपार प्रीति को निहार और विचार कर, वैराग्य सहित मनसा वाचा कर्मणा प्रेम में मग्न हो गये।

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृति प्रीति कहत बड़ि खोरी॥
वर्णत रघुवर भरत वियोगू। सुनि कठोर कवि जानहिं लोगू॥
सो सकोचवश अकथ सुवानी। समय सनेह सुमिरि सकुचानी॥
भेंटि भरत रघुवर समुझाये। पुनि रिपुदमन हर्षि हिय लाये॥
सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥
सुनि दारुण दुख दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥
प्रभु-पद-पद्म बन्दि दोउ भाई। चले शीश धरि राम रजाई॥
मुनि तापस वन देव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥

जहाँ जनक और गुरु की मति की गति चक्कर में पड़ जाती है उसको साँसारिक प्रीति कहना बड़ी बुरी बात है। श्रीरामचन्द्र जी और भरत के विछोह को वर्णन करते हुए, सुनने वाले मुझे कठोर कहेंगे। इसी सङ्कोच से मेरी वाणी भी काम नहीं देती। क्योंकि उस समय के प्रेम का स्मरण कर वह भी सकुच गयी है। भरत से मिल और उन्हें समझा, श्रीराम जी ने प्रसन्न हो शत्रुघ्न को गले

लगाया। सेवक और मन्त्री भरत का रुख पा कर अपने अपने कामों में जा लगे। श्रीराम जी की आज्ञा सुन दोनों ओर के लोगों को बड़ा दुःख हुआ और वे वहाँ से रवाना होने की तैयारियाँ करने लगे। दोनों भाई श्रीराम जी के चरणकमलों को प्रणाम कर, और उनकी आज्ञा को शिरोधार्य कर चल दिये। उन्होंने मुनियों और वनदेवियों की प्रार्थना कर, बारम्बार सब का सम्मान किया।

दो०—लषणहिं भेंटि प्रणाम करि, सिर धरि सिय-पद धूरि।
चले सप्रेम अशीष सुनि, सकल सुमङ्गल मूरि॥

फिर लक्ष्मण से मिल और प्रणाम कर तथा सीता जी के चरणों की रज को माथे पर लगा तथा सब आनन्दों के देने वाले आशीर्वाद को पाकर वे बड़े प्रेम से चले।

सानुज राम नृपहिं सिर नाई। कीन्हो बहु विधि विनय बड़ाई॥
देव दया वश बड़ दुख पायहु। सहित समाज काननहिं आयहु॥
पुर पगु धारिय देइ अशीशा। कीन्ह धीर धरि गमन महीशा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किये हरि हर सम जाने॥
सासु समीप गये दोउ भाई। फिरे बन्दि पद आशिष पाई॥
कौशिक वामदेव जावाली। परिजन पुरजन सचिव सुचाली॥
यथायोग्य करि विनय प्रणामा। बिदा किये सब सानुज रामा॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सन्मानि कृपानिधि फेरे॥

लक्ष्मण सहित श्रीराम जी ने महाराज को प्रणाम कर, और उनकी बड़ाई कर यह प्रार्थना की, हे देव! आपने दयावश हो बड़ा क्लेश पाया, क्योंकि आप अपने समाज सहित वन में आये, अब आप हमें आशीर्वाद दे अपने नगर को पधारिये। फिर राजा ने धीरज धारण कर अपनी राजधानी को गमन किया। मुनि, ब्राह्मण, साधुओं का सत्कार कर और उन्हें विष्णु एवं महादेव स्वरूप समझ बिदा किया। दोनों भाई सास के पास गये और प्रणाम कर आशीर्वाद पा कर चल दिये। फिर विश्वामित्र, वामदेव, जावालि, कुटुम्बी तथा नगर के लोग और सच्चरित्र

अन्य मन्त्रियों की यथायोग्य विनती कर और प्रणाम कर लक्ष्मण सहित श्रीराम जी ने उनको बिदा किया। दयालु श्रीराम जी ने छोटे बड़े बराबर वालों का यथायोग्य सत्कार कर सब को बिदा किया।

दो०—भरत मातु पद बन्दि प्रभु, शुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच सोच सब मेंटि॥

श्रीराम जी ने कैकेयी के चरणों पर मस्तक रख और सच्चे प्रेम से उससे मिल कर तथा पालकी में सवार कर और सङ्कोच तथा शोक त्याग, बिदा किया।

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्राण-प्रिय-प्रेम-पुनीता॥
करि प्रणाम भेंटीं सब सासू। प्रीति कहत कवि हिय न हुलासू॥
सुनि सिष अभिमत आशिष पाई। रही सीय दुहुँ प्रीति समाई॥
रघुपति पट पालकी मँगाई। करि प्रबोध सब मातु चढ़ाई॥
बारहिं बार मिले दोउ भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना॥
हृदय राम-सिय-लषण समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥
बसह बाजि गज पशु हिय हारे। चले जाहिं परवश मन मारे॥

सीताजी माता पिता और कुटुम्बियों से मिल प्राणप्रिय श्रीरामजी के प्रेम से लौटीं। उन्होंने प्रणाम कर सासों से मिला भेंटी की उस समय की प्रीति के कहने में कवि के मन में आनन्द उत्पन्न नहीं होता। शिक्षा सुन और इच्छित आशीर्वाद पा कर सीता जी सास और माता के स्नेहरूपी सागर में डूब गयीं। श्रीरामजी ने परदादार या बन्द पालकी मँगा और सब माताओं को समझा बुझा कर, उनमें सवार कराया। बार बार हिल मिल कर दोनों भाइयों ने समान प्रेम से माताओं को बिदा किया। अनेक हाथी घोड़े और अनेक सवारियों को सजा कर महाराज जनक और भरत ने अपनी अपनी सेनाओं सहित प्रस्थान किया। सब लोग हृदय में सीताराम और लक्ष्मण को धारण कर बेसुध हो चले। घोड़े, खच्चर, हाथी तथा अन्य पशु मनमारे पराये वश चले जाते हैं।

दो०—गुरु गुरुतिय पदि बन्दि प्रभु, सीता-लषण समेत ।
फिरे हर्ष विस्मय सहित, आये पर्णनिकेत ॥

भगवान् श्रीरामचन्द्र जी गुरु और गुरुपत्नी को प्रणाम कर और सीता एवं लक्ष्मण को साथ ले आनन्द और चिन्ता सहित अपनी कुटी को लौट गये ।

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू । चलेउ हृदय बड़ विरह विषादू ॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी । फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥
प्रभु-सिय-लषण बैठि बट छाहीं । प्रिय परिजन वियोग बिलखाहीं ॥
भरत सनेह सुभाव सुबानी । प्रिया अनुज सन कहत बखानी ॥
प्रीति प्रतीति वचन मन करणी । श्रीमुख राम प्रेमवश बरणी ॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना । चित्रकूट चर अचर मलीना ॥
विबुध विलोकि दशा रघुवर की । बर्षि सुमन कहिगति घरघर की ॥
प्रभु प्रणाम करि दीन्ह भरोसो । चले मुदित मन डर न खरोसो ॥

श्रीराम जी ने गुह को भी सत्कारपूर्वक बिदा किया । और वह इस विछोह के लिये मन ही मन विषाद करता हुआ चला । फिर कोल किरात, भील और वन के रहने वालों को लौटाया । वे प्रणाम करके लौटे । सीताराम और लक्ष्मण वट की छाया में बैठ प्यारे परिवार वालों के लिये दुखी होने लगे । श्रीराम, भरत के प्रेम, स्वभाव और उनकी सुन्दर वाणी का बखान कर सीता तथा लक्ष्मण को सम्बोधन कर कहने लगे । भरत की प्रीति प्रतीति और करनी को मन वच कर्म से श्रीराम जी ने स्नेह के वश हो अपने मुख से वर्णन किया । उस समय चित्रकूट के पक्षी, हिरन, मनुष्य, मछली, चर और अचर सब दुखी हुए । देवताओं ने श्रीराम जी की दशा देख फूलों की वर्षा कर घर घर का हाल कहा । भगवान् ने प्रणाम कर उनको भरोसा बँधाया । तब वे प्रसन्न होते हुए अपने अपने घरों को निःशङ्क और निडर हो कर गये ।

दो०—सानुज सीय समेत प्रभु, राजत पर्णकुटीर ।
भक्ति ज्ञान वैराग्य जनु, सोहत धरे शरीर ॥

छोटे भाई और सीता जी सहित श्रीरामचन्द्र जी अपनी कुटी में ऐसे बिराजते हैं मानों भक्ति ज्ञान और वैराग्य शरीर धारण किये शोभायमान हों।

सुनि महिसुर गुरु भरत भुआलू। राम विरह सब साज बिहालू॥
प्रभु गुण ग्राम गुणत मन माहीं। सब चुपचाप चले मगु जाहीं॥
यमुना उतरि पार सब भयऊ। सो बासर बिनु भोजन गयऊ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। राम-सखा सब कीन्ह सुपासू॥
सई उतरि गोमती नहाये। चौथे दिवस अवधपुर आये॥
जनक रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी॥
सौंपि सचिव गुरु भरतहिं राजू। तिरहुति चले साजि सब साजू॥
नगर नारि नर गुरु सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी॥

क्या मुनि, क्या ब्राह्मण, क्या भरत और क्या महाराज जनक, सब ही श्रीराम जी के वियोग में दुखी हैं, और रास्ते भर मन ही मन उनके गुणों के स्मरण करते हुए मार्ग में चुपचाप चले जाते हैं। सब लोग यमुना जी उतर कर उस पार पहुँचे और वह दिन बिना भोजन किये ही बीता। गङ्गा जी पार करने पर अगले दिन श्रीराम जी के मित्र गुह ने सब का सत्कार किया। सई पार हो लोगों ने गोमती नदी के जल में स्नान किये और वे चौथे दिन अयोध्या में पहुँच गये। जनक जी अयोध्या में चार दिन तक रहे और राजकाज का सारा सुप्रबन्ध कर तथा मन्त्री, वसिष्ठ और भरत को राज सौंप अपने लावलश्कर सहित राजधानी को लौट गये। उधर नगर के रहने वाले स्त्री पुरुष, वसिष्ठ जी की शिक्षा मान आनन्दपूर्वक श्रीरामचन्द्र जी की राजधानी अयोध्यापुरी में रहने लगे।

दो०—राम दरस हित लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषण भोग सुख, जियत अवधि की आस॥

अयोध्यावासी श्रीराम जी के दर्शनों के लिये नियम और व्रतोपवास करते

हैं और भोग एवं अलङ्कारों को त्याग कर १४ वर्ष की समाप्ति की आशा से प्राण धारण किये हुए हैं।

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख सोधे॥
पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई॥
भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रणाम वर विनय निहोरे॥
ऊँच नीच कारज भल पोचू। आयसु देव न करब सकोचू॥
परिजन पुरजन प्रजा बुलाये। समाधान करि सुवश बसाये॥
सानुज गे गुरु गेह बहोरी। करि दण्डवत कहत कर जोरी॥
आयसु होय तो रहौं सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सप्रेमा॥
समुझब कहब करब तुम सोई। धर्मसार जग होइहिं जोई॥

भरत ने मन्त्री तथा हितैषी सच्चे राजकर्मचारियों को समझाया और वे उचित शिक्षा पा कर, अपने अपने कामों में लगे। तदनन्तर शत्रुघ्न को बुला कर शिक्षा दी और उनको सब माताओं की सेवा का काम सौंपा। भरत ने ब्राह्मणों को बुला उनके हाथ जोड़े और उनसे विनय की और कहा कि ऊँच नीच अच्छे बुरे काम की आज्ञा देने में सङ्कोच मत करना। फिर कुटुम्बी, नगरनिवासी और प्रजा के लोगों को बुला और उनका यथोचित समाधान कर सब को भलीभाँति बसाया। फिर शत्रुघ्न को ले वसिष्ठ जी के घर गये और उनको प्रणाम कर तथा हाथ जोड़ कर कहने लगे, यदि आज्ञा पाऊँ तो नियमपूर्वक रहूँ? यह सुन वसिष्ठ जी पुलकायमान हो प्रेम सहित कहने लगे कि तुम तो जो कहोगे सो समझ कर ही कहोगे और वही करोगे जो संसार में धर्म का सार होगा।

दो०—मुनि सिख पाइ अशीष बड़ि, गणक बोलि दिन साधि।
सिंहासन प्रभुपादुका, बैठारी निरुपाधि॥

वसिष्ठ जी का आदेश पा और आशीर्वाद प्राप्त कर भरत जी ने ज्योतिषियों को बुलाया और शुभ दिन साध श्रीराम जी की खड़ाउवों को अच्छी तरह राज-सिंहासन पर स्थापित किया।

राममातु गुरु-पद सिर नाई। प्रभु-पद पीठि रजायसु पाई॥
नन्दिग्राम करि पर्णकुटीरा। कीन्ह निवास धर्मधुर धीरा॥
ाटा जूट सिर मुनि पट धारी। महि खनि कुश साथरी सँवारी॥
ाशन बसन आसन दृढ़ नेमा। करत कठिन व्रत धर्म सप्रेमा॥
ाण बसन भोग सुख भूरी। मन तनु वचन तजे तृण तूरी॥
ाधराज सुरराज सिहाहीं। दशरथ धन लखि धन द्ल जाहीं॥
ा पुर बसत भरत बिनु रागा। चञ्चरीक जिमि चम्पक बागा॥
ाविलास रामअनुरागी। तजत बमन इव नर बड़ भागी॥

कौशल्या और वसिष्ठ जी के चरणों को प्रणाम कर और भगवान् की ापादुका की आज्ञा पा, धर्मधुरन्धर धीर भरत ने नन्दिग्राम में पर्णकुटी बनायी र वे उसी में रहने लगे। उनके सिर पर जटाजूट का भार और शरीर पर ानियों के वस्त्र शोभायमान हुए। सोने के लिये भरत ने पृथिवी खोद कुशों का ाछौना बनाया। भोजन, वस्त्र, आसन, दृढ़ नियम और कठिन व्रत तथा धर्म का ाक्तिपूर्वक अनुष्ठान करना आरम्भ किया। भरत ने तन मन वचन से भूषण ासन तथा अनेक सुख भोग तिनके के समान छोड़ दिये। अवधराज को देख इन्द्र ाहाता है और दशरथ के धन को देख कुबेर भी लज्जित होते हैं। किसी विषय में अनुराग न रखते हुए भरत जी उसी तरह रहते हैं जिस प्रकार चम्पा के बाग़ में भ्रमर। श्रीराम जी से जो अनुराग रखते हैं वे बड़े भाग्यवान हैं और वे लक्ष्मी ादि को वमन की तरह त्यागते हैं।

१०—राम प्रेम भाजन भरत, बड़ी न यह करतूति।
चातक हंस सराहियत, टेक विवेक विभूति॥

ात तो श्रीराम जी के प्रेमभाजन हैं। उनकी यह करतूत कुछ बड़ी नहीं ाकि चातक और हंस अपनी टेक और विवेक की सम्पत्ति ही से प्रशंसा के ते हैं। (चातक की टेक है कि स्वाँती का जल मिले तो पिये, नहीं तो ही रहे। हँस का विवेक यह है कि वह दूध और जल को अलग कर ।)

देह दिनहिं दिन दूबरि होई। घट न तेज बल मुख छबि सोई॥
नित नव राम प्रेम प्रण पीना। बढ़त धर्म दल मन न मलीना॥
जिमि जल निघटत शरद् प्रकाशे। विलसत बेत सुवनज विकाशे॥
शम दम संयम नेम उपासा। नखत भरत हिय विमल अकासा॥
ध्रुव विश्वास अवधि राकासी। स्वामि सुरति सुरबीथि विकासी॥
राम-प्रेम-बिधु अचल अदोखा। सहित समाज सोह नित चोखा॥
भरत रहनि समुझनि करतूती। भक्तिविरति गुण विमल विभूती॥
बरणत सकल सुकविसकुचाहीं। शेष-गणेश-गिरा-गम नाहीं॥

भरत का शरीर दिन दिन दुबला होता जाता है। किन्तु तेज और बल बढ़ता है और मुख की कान्ति ज्यों की त्यों बनी हुई है। उनका श्रीराम जी के प्रति अनुराग और प्रण दिनों दिन नवीन होता जाता है और इस प्रकार धर्म का दल बढ़ता जाता है। मन में मैल नहीं है। जिस प्रकार शरद ऋतु के प्रकाश से जल घटता है, बेत फैलता है और सुहावने कमल के फूल खिलते हैं, उसी प्रकार भरत के हृदयरूपी विमल आकाश में शान्ति, इन्द्रियों का रोकना, संयम, नियम और व्रतरूपी नक्षत्र चमकते हैं। श्रीराम जी के लौटने का विश्वास ध्रुव तारा है, चौदह वर्ष की अवधि, पूर्णमासी है और श्रीराम जी का स्मरण ही आकाशगङ्गा (तारों का समूह विशेष, जो शरद् ऋतु में दीख पड़ता है) की तरह सुशोभित है। श्रीराम जी का स्नेह ही मानों कलङ्करहित स्थिर चन्द्र है जो अपने समाज सहित अर्थात् तारों सहित शोभायमान है। भरतजी की रहन सहन, करतूत, भक्ति विराग, गुण और विमल ऐश्वर्य का वर्णन करने में सब कवि सकुचाते हैं। क्योंकि वहाँ गणेश, शेष और शारदा की भी बुद्धि काम नहीं देती।

दो०—नित पूजत प्रभुपाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
मांगि मांगि आयसु करत, राजकाज बहु भाँति॥

भरत जी श्रीराम जी की खड़ाउवों को नित्य पूजन करते हैं। उनकी प्रीति हृदय में नहीं समाती और उन्हीं की आज्ञा से वे राजकाज करते हैं।

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जपु लोचन नीरू॥
लषण राम सिय कानन बसहीं। भरत भवन बसि तपतनु कसहीं॥
दुहुँ दिशिसमुझि कहतसबलोगू। सब विधि भरत सराहन योगू॥
सुनि व्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दशा मुनिराज लजाहीं॥
परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मञ्जु मृदु मङ्गल करनू॥
हरण कठिन कलिकलुष कलेशू। महामोह निशि दलन दिनेशू॥
पाप पुञ्ज कुञ्जर मृगराजू। शमन सकल सन्ताप समाजू॥
जन रञ्जन भञ्जन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू॥

पुलकायमान हो और हृदय में सीताराम को धारण कर, जिह्वा से उनका नाम लेते हुए, भरत के नेत्रों में जल भर आता है। श्रीराम, लक्ष्मण, सीता तो वन में रहते हैं किन्तु भरत घर रह कर भी कठिन तप से शरीर को कष्ट देते हैं। दोनों ओर देख, लोग कहते हैं कि भरत सब प्रकार से प्रशंसा के पात्र हैं। उनके व्रतोपवास का हाल सुन साधु सकुचाते हैं और उनकी दशा को निहार मुनिराज भी लजाते हैं। भरत जी का आचरण अति पवित्र, मधुर और सुन्दर है। साथ ही आनन्द देने वाला है। वह कलियुग के कठिन पाप और क्लेशों का हरने वाला तथा अज्ञानरूपी बड़ी रात के अन्धकार को सूर्य के समान नाश करने वाला है। पापरूपी हाथियों के लिये सिंह और समस्त दुःखों को नाश करने वाला है। भक्तजनों को आनन्दप्रद और संसार के बोझों को नाश करने वाला और श्रीराम जी के प्रेमरूपी चन्द्रमा का सार अर्थात् अमृत है।

छं०—सिय-राम प्रेम पियूष पूरण होत जन्म न भरत को।
मुनि मन अगम यम नियम शम दम विषम व्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दम्भ दूषण सुयश मिसु अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से शठहिं हठि राम सन्मुख करत को॥

यदि सीताराम के स्नेहरूपी अमृत से भरे पूरे भरत का जन्म न होता, तो मुनियों में भी कठिन यम, नियम, शम, दम का पालन कोई कर सकता—इसमें

संन्देह है। दुःख, दरिद्र, पाखण्ड दोषों को सुयश के बह[illegible]ता है ? तुलसीदास का कहना है कि कलियुग में मुझ जैसे शठ को श्रीराम जी के सम्मुख भरत को छोड़ और कौन करता ?

सो०—भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीय-राम-पद प्रेम, अवशि होइ भवरस विरति॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि जो मनुष्य आदरपूर्वक नियम बाँध कर भ के चरित्रों को सुनेंगे, वे संसार की विषयवासना से छूट कर, सीताराम के चर के स्नेह की सीमा समझे जायँगे।

॥ इति ॥

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahaba